डा० लोहिया का समाजवादी दर्शन

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की शोध प्रबन्ध प्रकाशन अनुदान योजना
के अन्तर्गत अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा के सौजन्य से प्रकाशित

डा० लोहिया का समाजवादी दर्शन

(अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा द्वारा स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

डा० ताराचन्द दीक्षित

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

लोकभारती प्रकाशन
१५ ए महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित

●

प्रथम संस्करण
१९७६

मूल्य :

●

आमुख

प्रत्येक देश-काल की अपनी समस्याएँ होती हैं। तत्कालीन राजनैतिक विचारधाराएँ जहाँ एक ओर उनसे प्रभावित होती हैं वहाँ दूसरी ओर उन समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत करती हैं। समाजवाद भी एक ऐसी ही विचारधारा है। वैज्ञानिक आविष्कार, औद्योगिक क्रांति और व्यक्तिवाद के अतिक्रमण के कारण उन्नीसवीं शताब्दी में पूंजीवादी व्यवस्था ने अपने पर फैलाए। श्रमिक वर्ग शोषण से उत्पीडित हो उठा। प्रतिक्रिया स्वरूप समाज मे पूंजीवाद के विरुद्ध विद्रोह की भावना भडक उठी। इस विद्रोह की अभिव्यक्ति मे पूंजीवाद के विकल्प के रूप में समाजवाद का उद्भव हुआ। यद्यपि समाजवाद' आज बहु प्रचलित एव बहु चर्चित शब्द हो गया है, तथापि समग्र रूप मे समाजवाद का स्वरूप अब भी निश्चित नही है। इस विचारधारा की निरंतर निकलती उपधाराएँ अपने उद्देश्यो तथा प्रणालियों मे इतनी भिन्न हैं कि उनके मूल रूप का समझना दुर्लभ हो गया है। अपनी अनेक रूपता, अस्पष्टता, जटिलता, प्रगतिशीलता आदि के कारण यह विचारधारा अनेक विचारकों के अनुसार अनिश्चित तथा भ्रमात्मक हो गई है।

समाजवाद की इस अनेकामुखी प्रवृत्ति के कारण ही प्रबुद्ध भारतीय विचारकों के समक्ष यह प्रश्न एक पहेली ही बना हुआ है कि आखिर समाजवाद है क्या ? भारत मे समाजवाद के रूप और सिद्धांत को लेकर सब अपनी अपनी ढपली लिए अपना-अपना राग अलाप रहे हैं। भारतीय राजनीति के पाँच महान उद्देश्यों—समानता, जनतंत्र, विकेन्द्रीकरण, अहिंसा और समाजवाद का अब भी कोई ठोस रूप निश्चित नहीं है। ऐसी स्थिति मे डॉ० लोहिया के समाजवादी दर्शन का अध्ययन एक निश्चित दिशा दे सकता है। उपर्युक्त उद्देश्यों की व्यापक व्याख्या करने के साथ डॉ० लोहिया ने देश-काल के अनुरूप उनके ठोस और साकार रूप भी प्रस्तुत किये हैं।

प्रस्तुत शोध-ग्रंथ मे डॉ० लोहिया के समाजवादी दर्शन के अध्ययन का प्रयास किया गया है। इस ग्रंथ में न तो डॉ० लोहिया की अंध विश्वास के साथ प्रशंसा की गई है और न ही किसी पूर्वाग्रह के साथ आलोचना। जहाँ उनकी प्रशंसा अपेक्षित है वहाँ प्रशंसा की गई है और जहाँ आलोचना आवश्यक है वहाँ आलोचना। इस प्रकार इस दृष्टि को सामने रखकर डॉ० लोहिया के

सम्बन्ध मे सम्यक विचार प्रस्तुत किये गये हैं। मैंने इस विचारक के दर्शन को बोधगम्य बनाने का पूरा प्रयत्न किया है। मुझे विश्वास है कि इससे लोहिया दर्शन के जिज्ञासुओं को संतोष प्राप्त होगा।

डॉ० लोहिया का समाजवादी चिन्तन देश प्रेम एवं जन कल्याण की भावनाओं से ओत प्रोत है। उनका दर्शन नितान्त मौलिक है जहाँ वे मार्क्स या गांधी से असहमत हैं, उन्होंने अत्यन्त निर्भीकता एवं ईमानदारी से अपनी असहमति व्यक्त की है। उन्होंने समाजवाद पर अत्यन्त गहराई से सोचा समझा है। उनके समर्थकों का दावा है कि समाजवाद का अस्थिपंजर तो बहुत पहले से तैयार हो गया था, डॉ० लोहिया ने इसमें 'फ्लेश एण्ड ब्लड' डाल कर इसको एक नया जीवन दिया है। उनका समाजवादी दर्शन मानवतावाद की पूर्ण अभिव्यक्ति है। उनके सिद्धान्त और कर्म वे आधार हैं जिन पर एक नवीन विश्व व्यवस्था, नवीन संस्कृति और नवीन सभ्यता के कल्याणकारी भवन निर्मित हो सकते हैं और उनमें सम्पूर्ण मानवता जाति, धर्म, वर्ण, लिंग, संस्कृति, सम्पत्ति आदि की भिन्नता (कटुता) से मुक्त हो निवास कर सकती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि लोहिया जी भारत में ही नहीं अपितु विश्व के मौलिक राजनैतिक विचारकों में प्रतिष्ठित स्थान रखते हैं।

प्रस्तुत शोध-ग्रंथ १० अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में डॉ० लोहिया के कृतित्व और व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है। द्वितीय अध्याय समाजवाद के स्वरूप से सम्बन्धित है। इसमें समाजवाद के अर्थ, परिभाषा और लक्ष्यों का स्पष्ट करते हुए उसके विभिन्न रूपों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है तथा भारतीय समाजवाद की विशिष्टताओं को देते हुए डॉ० लोहिया द्वारा चलाये गये समाजवादी आन्दोलन का भी उल्लेख किया गया है। तृतीय अध्याय मे डॉ० लोहिया की सामाजिक साधना प्रस्तुत की गई है। इस अध्याय के अन्तर्गत डॉ० लोहिया के इस विश्वास को व्यक्त किया गया है कि सामाजिक समता के बिना समाजवाद का आगमन सम्भव नहीं। इस दृष्टि से समाज मे व्याप्त जाति प्रथा, नर नारी असमानता, साम्प्रदायिकता, अस्पृश्यता और रंग भेद नीति पर उन्होंने जो सशक्त प्रहार किये हैं उन सबका तुलनात्मक विवेचन किया गया है। चतुर्थ अध्याय में समाजवादी धरातल पर डॉ० लोहिया का आर्थिक चिन्तन प्रस्तुत किया गया है। इस शीर्षक के अन्तर्गत वर्ग उन्मूलन, आय और मूल्य नीति, अन्न एवं भू-सेना भूमि के पुनर्वितरण, आर्थिक विकेन्द्रीकरण, राष्ट्रीयकरण तथा व्यय पर प्रतिबन्ध सम्बन्धी उनके

विचारो का अध्ययन किया गया है। पाँचव अध्याय मे डा० लोहिया के समाज वादी राज्य का स्वरूप एव उसके प्रशासनिक ढाँचे का तुलनात्मक ढग से उल्लेख किया गया है। इस अध्याय के प्रतिपाद्य हैं डॉ० लोहिया द्वारा की गई राजनतिक इतिहास की मौलिक व्याख्या, धम और राजनीति पर उनका स्वर्णिम मध्यम मार्गीय दृष्टिकोण सविनय अवज्ञा और नागरी स्वतन्त्रता तथा शस्त्र नियन्त्रण म उनकी अडिग आस्था जन शक्ति के प्रति उनकी भक्ति, उनकी चौखम्बा योजना, व्यक्ति और समाज सम्बन्धी उनका सामजस्यपूण दृष्टिकोण।

छठवाँ अध्याय डॉ० लोहिया के भाषा विषयक विचारो का सोपान है। इस अध्याय मे हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओ के प्रति डॉ० लोहिया की अगाध आस्था को व्यक्त किया गया है। विदेशी भाषा अंग्रेजी के तत्काल निष्कासन और लोक भाषाओ के प्रतिष्ठापन के लिए उन्होने क्या क्या किया और भाषा के मामले को उन्होन किस प्रकार समाजवाद से जोड़ा आदि प्रश्नो पर भी प्रकाश डाला गया है। सातवें अध्याय म डॉ० लोहिया की मौलिक अधिकार सम्बन्धी धारणा का विश्लेषण किया गया है। इसमे मौलिक अधि कारो के लिए उनके द्वारा किए गय सतत सघष का विचारात्मक विवरण भी प्रस्तुत किया गया है। आठवा अध्याय विश्व की समाजवादी विचारधारा को डॉ० लोहिया की देन से सम्बन्धित है। विश्व-समाजवाद का नव दशन, सयुक्त राष्ट्र सघ का पुनगठन विश्व सरकार विश्व विकास-समिति, अन्तर्राष्ट्रीय जाति प्रथा—उन्मूलन, साक्षात्कार का सिद्धान्त, नि शस्त्रीकरण आदि विषयो से सम्बन्धित उनकी विचारधाराय इस अध्याय के अन्तगत स्पष्ट की गई हैं। नवम अध्याय म मार्क्स, गाँधी और डा० लोहिया के समाजवादी दशनो का तुलनात्मक विवेचन कर यह स्पष्ट करन का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार मार्क्स और गाधी—दर्शनो का सशोधन एव समन्वय कर डॉ० लोहिया ने उन्हे पूण किया और एक नया सन्तुलन और सम्मिलन का दशन जन मानस को दिया। दशम अध्याय विषय के मूल्याकन का है। इसम डा० लोहिया के दर्शन की यथासम्भव आलोचनाओ के साथ विशिष्टताएँ स्पष्ट करते हुए सम्यक विचार प्रस्तुत किये गये हैं।

विषय-प्रवेश के उपसहार म यह कहना चाहूँगा कि इस शोध शीर्षक की गुरुता गम्भीरता मे अवगाहन करान का श्रेय मेरे स्वय के परिश्रम को नही गुरुजन, बन्धुजन एव सहयोगी-जन के आशीर्वाद मात्र का है। राजनीतिक-

शास्त्र विषय के प्राध्यापक डॉ० रामप्रकाश पांडे, प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, टीकमगढ़ (म० प्र०) ने ही मुझे इस विषय का स्वप्न दिया और फिर उन्होंने अपने कुशल निर्देशन में मुझसे यह कार्य करा कर उस स्वप्न को साकार किया। उनके इस उपकार को मैं किन शब्दों में अभिव्यक्त करूँ, निश्चित नहीं कर पाता। पत्र पुष्प-फल-तोय के रूप में केवल भावना का उपहार ही उन्हें दे सकता हूँ।

मेरे इस विषय के परिष्करण, परिवर्धन एवं परिवर्तन में मेरे सहयोगी बन्धुओं ने मुझे हर प्रकार का सहयोग दिया। मैं उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। लोहियावादी विचारधारा में आस्था रखने वाले अनेक विद्वानों ने मुझे इस विषय की सामग्री प्रदान करने में विशेष योगदान दिया है। श्री कर्पूरी ठाकुर, श्री मधु लिमये, श्री लाडली मोहन निगम, श्री जगदीश चन्द्र जोशी जैसे प्रभृत समाजवादी विचारकों को मैं धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने मुझे लोहिया के समाजवादी रूप को पहचानने में पर्याप्त योग दिया।

ताराचन्द्र दीक्षित
दिनांक १५-३-७२ व्याख्याता—राजनीति शास्त्र, छत्रसाल शासकीय
महाविद्यालय, पन्ना (म० प्र०)

विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ

— ० —

अध्याय १

डॉ० लोहिया . जीवन और व्यक्तित्व

विश्लेषण

डॉ० लोहिया का व्यक्तित्व बहुप्रशंसित, बहुचर्चित बहु-आलोचित एव अत्यन्त विवादास्पद रहा है। उनकी मृत्यु हुए अभी अधिक समय नही हुआ है। इसलिए उनकी स्मृति भी अभी धूमिल नही हुई है। एक ओर उनके प्रशसक उन्हे भगवान की श्रेणी मे रख देते है तो दूसरी ओर उनके आलोचक उनकी बहुत आलोचनाएँ भी करते हैं। यदि उनके प्रशसको ने उन्हे धर्म रक्षक, युग-प्रवर्तक, सन्यासी, वैरागी, निर्भीक, स्थितप्रज्ञ आदि अलकारो से अलकृत किया है तो उनके आलोचको ने उन्हें व्यर्थ मे टाँग अडाने वाले हर विषय पर नोक झोक करने वाले अशिष्ट-भाषी, अक्खड, अव्यावहारिक दुस्साहसी मूर्तिभजक आदि कह कर उनका उपहास भी उडाया है। जो कुछ भी हो इतना तो सत्य है कि पीडित मानवता के इस पुजारी ने भाग्य की विडम्बना, कुत्सित उपेक्षा, लोक उपहास और अनेक विषम परिस्थितियो के बीच जिस पौरुष, अविचलित उत्साह धैर्य निष्ठा, तपस्या एव त्याग का आदर्श उपस्थित किया है, वह मानव के लिए प्रेरणा-सूत्र के रूप म स्मरणीय रहेगा।

प्रारम्भिक जीवन, शिक्षा और क्रान्तिकारी जीवन का सूत्रपात

दलितो के प्रवक्ता डा० राम मनोहर लोहिया का जन्म २३ मार्च सन् १९१० ई० को तमसा नदी के किनारे स्थित कस्बा अकबरपुर जिला फैजाबाद में हुआ। उनके पिता हीरालाल एक उद्भट देशभक्त और गाधीवादी थे। पुत्र पर अपने पिता का प्रभाव पडा और आगे चलकर उन्ही ने लोहिया को गाधी जी का आशीर्वाद प्रदान करवाया। उनकी माता चन्दा चनपटिया ग्राम (मिथिला प्रदेश) की थी। लोहिया ढाई वर्ष मे मातृहीन हो गए थे।

डॉ० लोहिया का प्रारम्भिक शैक्षणिक अध्ययन अकबरपुर में हुआ और वे इन कक्षाओं म प्रथम श्रेणी म उत्तीर्ण होते रहे। अत उन पर अध्यापकों का विशेष स्नेह होना स्वाभाविक ही है। सन् १९२५ ई० मे उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा बम्बई के मारवाडी विद्यालय से प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण की। उन्होंने

सन् १९२७ ई० में इंटर की परीक्षा हिंदू विश्वविद्यालय बनारस से उत्तीर्ण की। कलकत्ता की एक शिक्षण संस्था विद्यासागर महाविद्यालय से सन १९२९ ई० में उन्होंने बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसी समय लोहिया ने 'अखिल बंग विद्यार्थी सम्मेलन' की अध्यक्षता की। उन्होंने बर्लिन विश्वविद्यालय से सन १९३२ ई० में 'नमक और सत्याग्रह' विषय पर 'डॉक्टरेट' की उपाधि प्राप्त की और सन १९३३ में जर्मनी से वे अपना विद्यार्थी जीवन समाप्त कर स्वदेश लौट आए।

इतिहास में डॉ० लोहिया की अधिक रुचि थी किन्तु गलत इतिहास में उन्हें कोई आस्था नहीं थी। त्रुटिपूर्ण इतिहास का अध्ययन बन्द करने और पुनः शुद्ध व सच्चा इतिहास लिखे जाने के लिए उनकी आलोचक बुद्धि विद्रोह कर उठी। उदाहरणार्थ इंटर के इतिहास के पाठ्यक्रम में 'राइज ऑफ क्रिश्चियन पावर' नामक पुस्तक निर्धारित थी, जिसमें शिवाजी को लुटेरा सरदार' कहा गया था। लोहिया ने इसको झूठा सिद्ध किया। उनके अध्ययन का क्षेत्र व्यापक था। राजनीति शास्त्र, दर्शन, इतिहास, अर्थशास्त्र, महाभारत, स्थापत्य कला, प्राचीन इतिहास और नक्षत्र मण्डल आदि में उनकी गहरी रुचि थी। उनमें विद्वत्ता, विवेक और क्रान्ति का अद्भुत सम्मिश्रण था। राजसी खेल क्रिकेट की भर्त्सना, गिल्ली डण्डा, अलगोजा का शौक, त्रुटिपूर्ण इतिहास की आलोचना, राष्ट्रीय विद्यालयों में अध्ययन, साम्राज्यवादी ब्रिटेन में नहीं, अपितु राष्ट्रप्रेमी जर्मनी में अध्ययन, स्वतन्त्रता संग्राम के लिए विद्यार्थियों का नेतृत्व आदि उनके ऐसे कृत्य हैं जिनसे उनके प्रारम्भिक जीवन के मेधावी और क्रान्तिदर्शी व्यक्तित्व की झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

डॉ० लोहिया की राजनैतिक चेतना

डॉ० राम मनोहर लोहिया के राजनैतिक जीवन को अध्ययन की सुविधा के लिए हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं (१) स्वातन्त्र्यपूर्व राजनैतिक आन्दोलन और डॉ० लोहिया (२) स्वातन्त्र्योत्तर राजनैतिक चेतना और डॉ० लोहिया का यथार्थवादी चिन्तन।

(१) स्वातन्त्र्यपूर्व राजनैतिक आन्दोलन और डॉ० लोहिया —डॉ० लोहिया का राजनैतिक जीवन विद्यार्थी जीवन से प्रारम्भ होता है।[1] अगस्त १९२० को लोकमान्य बाल गंगाधर की मृत्यु को उन्होंने महामृत्यु माना और

* * * * *

1—हिन्दी विश्वकोश खण्ड 10 पृष्ठ 365 (नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी)

बम्बई के मारवाडी विद्यालय के अपने छात्र साथियो को हडताल का सकेत कर उनका नेतृत्व किया। इसी समय गाधी जी के असहयोग आन्दोलन से प्रभावित होकर उन्होने विद्यालय का त्याग कर दिया और अपने को स्वतन्त्रता सग्राम की महाग्नि म झाक दिया। यही से उनका सघर्ष का जीवन प्रारम्भ होता है। उन्होंने विदेशी वस्त्रो के जलाने, ट्राम गाडियो के तार काटने और विदेशी वस्त्रो की होली जलाने मे उग्र दल का नेतृत्व किया।

असहयोग आन्दोलन के समय ही गाधी जी बम्बई गए। उनके पिता हीरालाल, डॉ० लोहिया को लेकर गाधी जी से मिलने गए। वही अपनी आदत के विपरीत उन्होने गाधी जी के चरण स्पर्श किए और गाधी ने उनकी पीठ थपथपाई। सन १९२४ई० मे लोहिया एक प्रतिनिधि के रूप मे गया मे हुए काग्रेस अधिवेशन म सम्मिलित हुए। खद्दर पहनना और उसी का प्रचार करना उनका प्रमुख उद्देश्य था। १९२८ मे 'साइमन वापस जाओ' के लिए कलकत्ता म लोहिया ने विद्यार्थियों को कमीशन के इस बहिष्कार के लिए तयार किया और उनका नेतृत्व किया। जर्मनी के भारतीय विद्यार्थियो द्वारा निर्मित 'मध्य यूरोप हिन्दुस्तानी सघ' नामक सस्था के लोहिया मत्री बने। इस सस्था ने भारत के बाहर भारतीय राष्ट्रीयता का प्रचार-काय किया।

भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस से प्रतिबद्धता —सन १९३४ ई० मे जब 'काग्रेस सोशलिस्ट पार्टी' का निर्माण हुआ था तभी 'काग्रेस सोशलिस्ट' नामक साप्ताहिक मुखपत्र प्रारम्भ हुआ जिसके डॉ० लोहिया सम्पादक बने। सन १९३५ ई० में पण्डित नेहरू की अध्यक्षता म हुए काग्रेस अधिवेशन म काग्रेस ने अपनी अखिल भारतीय समिति के अन्तगत एक पर राष्ट्र विभाग खोला और लोहिया उस पर राष्ट्र विभाग के मत्री हुए।[1] सन् १९३८ ई० मे परराष्ट्र विभाग के मत्री पद से त्यागपत्र दिया किन्तु इस काय-काल मे लोहिया का व्यक्तित्व भारतीय राजनीति मे एक प्रतिभावान विचारक और परराष्ट्र-नीति के विशेष प्रवक्ता में रूप मे सवमान्य हो चुका था।

द्वितीय महायुद्ध और राजनतिक उथल-पुथल —सन १९३९ म द्वितीय विश्वयुद्ध के समय डॉ० लोहिया न भारत के स्वतत्रता-सग्राम को नया एव शक्तिशाली मोड दिया और निम्नलिखित चार सूत्री कायक्रम तयार किया। (१) युद्ध भरती का विरोध (२) देशी रियासतों मे आन्दोलन (३) ब्रिटिश माल-जहाजो से माल उतारने व लादने से इन्कार करने वाले मजदूरो का

* * * * *

1—हिन्दी विश्व-कोश खण्ड 10 पृष्ठ 366 (नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी)

इस प्रकार डॉ० लोहिया का विचार था कि युद्ध में किसी भी पक्ष में भारतीयों का नहीं जुड़ना चाहिए। इस प्रकार के प्रचार से वे २४ मई १६३६ को गिरफ्तार किए गए और १४ अगस्त १६३६ को मुक्त किए गए। शोषण और दासता की नींव पर आधारित अंग्रेजी साम्राज्य के विशाल भवन को धराशायी करने के लिए लोहिया तुरन्त सत्याग्रह छेड़ने के पक्ष में थे। लोहिया ने गांधी जी के पत्र 'हरिजन' के १ जून के अंक में 'सत्याग्रह तुरन्त' नामक लेख लिखा। ११ मई १६४० को दोस्तपुर में दिए गए भाषण के संदर्भ में वे ७ जून १६४० को कैद किए गए और मुकदमे के परिणाम स्वरूप १ जुलाई १६४० को दो वर्ष की सख्त कैद की सजा उन्हें दी गई। वे बरेली जेल में भेजे गए जहाँ उनको अनेक यातनाएँ और अंग्रेजों के दुर्व्यवहार को सहन करना पड़ा। गांधी जी लोहिया को जेल से छुड़ाने के लिए बहुत प्रयत्नशील रहे। गांधी जी ने कांग्रेस कमेटी की एक सभा में बम्बई में स्पष्ट कहा था, 'जब तक डॉ० राम मनोहर लोहिया जेल में हैं तब तक मैं खामोश नहीं बैठ सकता। उनसे ज्यादा बहादुर और सरल आदमी मुझे मालूम नहीं। उन्होंने हिंसा का प्रचार नहीं किया। जो कुछ किया है उससे उनका सम्मान और अधिक बढ़ता है।'[1] ४ दिसम्बर १६४१ को लोहिया रिहा किए गए।

'भारत छोड़ो' आन्दोलन में सक्रियता —डॉ० लोहिया ने प्रचार द्वारा तथा विश्वासघाती जापान या आत्म सन्तुष्ट ब्रिटेन' नामक लेख लिखकर जनमत और गांधी जी को भारत छोड़ो' आन्दोलन के लिए तैयार किया। इस हेतु 'अलमोड़ा जिला राजनीतिक सम्मेलन' की डॉ० लोहिया ने अध्यक्षता की। उन्होंने युद्ध के दौरान 'बिना पुलिस या फौज के शहर' की योजना दी जिसके बारे में गांधी जी ने वायसराय को पत्र लिखा था 'अहिंसात्मक सोशलिस्ट डॉ० लोहिया ने भारतीय शहरों को बिना पुलिस या फौज के शहर घोषित करने की कल्पना निकाली है।'[2] इसी समय उन्होंने गांधी जी के समक्ष दूसरी योजना रक्खी जिसकी नींव के चार तत्त्व थे। (१) एक देश की दूसरे देश में जो पूंजी लगी है उसे जब्त करना (२) सभी लोगों को संसार में

* * * * *

1—इन्दुमति केलकर लोहिया सिद्धान्त और कर्म पृष्ठ 74
2—ओंकार शरद लोहिया पृष्ठ 112

कही आन जान और बसने का अधिकार (३) दुनियाँ के सभी राष्ट्रो को राजनीतिक आजादी (४) विश्व-नागरिकता ।[1]

९ अगस्त सन् १९४२ को सुबह 'भारत छोडो' आन्दोलन पर एक भाषण के कारण गाधी जी गिरफ्तार किए गए । उस समय नेतृत्वहीन जनता के मार्ग दर्शन के लिए 'केन्द्रीय सचालन मण्डल' बनाया गया जिसमे नीति निर्धारण करके विचार देने का काम डॉ० लोहिया पर सौंपा गया । लोहिया ने भूमिगत आन्दोलन किया । तार यन्त्र तोडना, हथियार ढोने वाली फौजी रेलगाडियाँ बारूद से उडाना, यातायात को बेकार करना, सरकारी कारोबार के मौके की जगहो पर कब्जा करना या उन्हे नष्ट करना भूमिगत आन्दोलन के प्रमुख अग थे । अगस्त १९४२ की रात से २० मई १९४४ तक भूमिगत रहते हुए लोहिया न विद्रोहियों की प्रेरणा के लिए कई बुलेटिनें और छोटी-छोटी पुस्तक लिखीं जिनमे से 'जग जू आगे बढे', 'क्रान्ति की तयारी करो', 'आजाद राज कसे बन' मुख्य थी । गुप्त रेडियो-केन्द्रो की स्थापना कर लोहिया न अपने भाषणो द्वारा आन्दोलन को जीवित रक्खा । नाम, पोशाक और भाषा मे बदले हुए लोहिया को अंग्रेज पहचानने म असमर्थ रहे । कलकत्ता मे लोहिया जी उन दिनो बाँठिया जी के नाम से ही जाने जाते थे । अन्त म सतत प्रयत्नो के बाद अंग्रेजो ने २० मई १९४४ को बम्बई मे लोहिया को गिरफ्तार कर लिया । अब उन्हे यातनाओ के लिए प्रसिद्ध या बदनाम लाहौर किले की एक अँधेरी कोठरी मे बन्द कर अनकानेक शारीरिक एव मानसिक यातनाएँ दी गईं । ११ अप्रल १९४६ को इन्हें मुक्ति मिली ।

गोवा मुक्ति आन्दोलन की दिशा—१० जून १९४६ को अपने गोवा-वासी मित्र जूलियो मनेजिस के निमन्त्रण पर लोहिया गोवा पहुँचे । वहाँ भी उन्होने गोवा वासियो की स्वतन्त्रता के लिए पुर्तगालियों के विरुद्ध विद्रोह की आग सुलगाई । १८ जून १९४६ को गोवा के मडगाव स्थान पर उन्होने अपने भाषण की प्रतियाँ बँटवाईं क्योकि पुलिस कमिश्नर ने भाषण के लिए खडे विशाल जनसमूह म डॉ० लोहिया को गिरफ्तार कर लिया । उनका यह निम्न लिखित भाषण भारत के सभी अखबारो में छपा, " गोवा की जनता का दिल दर्द से भरा है । उनकी आँखे हिन्दुस्तान की ओर लगी है । यहाँ की पुर्तगाली सत्ता की चिन्ता मुझे नही है । क्योंकि पुर्तगालियों के बडे भाई अंग्रेज की सत्ता खतम होने के बाद पुर्तगाली सत्ता भी अवश्य नष्ट होगी ।

* * * * *

1—इन्दुमति केलकर लोहिया—सिद्धान्त और कर्म, पृष्ठ 95

गोमान्तकीय राष्ट्रीय जीवन के पुनरुत्थान के लिए नागरिक स्वातंत्र्य का अपहरण करने वाले बदनाम काले कानूना का हटाया जाना पहला कदम होगा।

यदि गोमान्तकीय मेरे पास न आते तो भी मैं खामोश न बैठा रहता।'

१६ जून को लोहिया अचानक रिहा कर दिये गये।

लोहिया-आन्दोलन के परिणाम स्वरूप वहाँ की जनता को बिना सरकारी आदेश के सभा और भाषण की स्वतंत्रता प्राप्त हुई। वे भारत लौट आये। गाधी जी ने गोवा के गवर्नर को १४ अगस्त १९४६ के 'हरिजन' में एक पत्र लिखा जिसमें लोहिया की प्रशंसा करते हुए लिखा, ' आप और गोवा के नागरिक दोनों को ही डॉ० लोहिया को बधाई देनी चाहिये कि उन्होंने यह मशाल जलायी। २९ सितम्बर १९४६ को लोहिया गोवा के लिए पुनः चल दिये परन्तु कोलिम स्टेशन पर ही उन्हें गिरफ्तार कर अगवाद के किले में बन्द कर दिया गया। गाधी जी के प्रयासों से ९ अक्टूबर १९४६ को उन्हें रिहा कर भारतीय सीमा पर छोड़ दिया गया। लोहिया ने गोवा आन्दोलन के लिए धन संग्रह किया, किन्तु आन्दोलनकारियों की आपसी फूट के कारण गोवा का मामला ठडा कर दिया गया। डॉ० लोहिया की इस कृति को इतिहास कभी नही भुला सकेगा। गोवा की स्त्रियों ने अपने लोक गीतों में लोहिया का नाम जोड़ा। "पहली माझी आवी, पहले माझ फूल, भक्ती ने अर्पित लोहिया ना।'

देश विभाजन की छटपटाहट—संविधान सभा, देश विभाजन आदि प्रश्नों पर नेताओं में आपसी मत मुटाव पनपा। परिणाम स्वरूप कानपुर में २६, २७, २८ फरवरी १९४७ को कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का सम्मेलन डा० राम मनोहर लोहिया की अध्यक्षता में हुआ जिसमें देश के सभी सोशलिस्ट सम्मिलित हुए और जिसके निर्णय द्वारा कांग्रेस शब्द हटाकर दल का नाम केवल 'सोशलिस्ट पार्टी' रखा गया। इसी फरवरी ४७ को ब्रिटिश प्रधान मंत्री एटली ने घोषणा की कि वे जून ४७ में देश छोड़ कर चले जाएँगे। पद-लोलुप नेतागण भारत पाक दो राष्ट्रों के लिए इस समय अधीर हो रहे थे। लोहिया ने हिन्दू मुस्लिम एका का महत्वपूर्ण कार्य तन मन धन से करने का असफल प्रयास किया। गाधी नेहरू पटेल आदि के साथ वार्ता में उन्होंने कहा भी था, ' देश की एकता के लिए क्या लिंकन को युद्ध नही करना पडा था ? अमरीका के गृह-युद्ध में दोनों पक्षों को मिलाकर तीन-चार लाख लोग मारे गए थे लेकिन उनका भाई चारा तो बना रहा। हिन्दू मुसलमान जानवर की तरह एक दूसरे को मार सकते हैं पर वे भाई भाई ही रहेंगे। भाई भाई अपने निजी झगड़े में एक-दूसरे को मारते नहीं क्या ? [ओंकार शरद लोहिया, पृष्ठ, १७६]

स्वातन्त्र्योत्तर राजनीतिक चेतना और लोहिया का यथार्थवादी चिन्तन

स्वतत्रता क पूव और पश्चात दानो समयो मे डॉ० लाहिया का जीवन विद्रोही रहा। यदि एक म विदेशी सत्ता के प्रति कडी खिलाफत रही तो दूसरे म देशी सत्ता के प्रति न्याय के लिए प्रबल और सतत विराध। विश्व के इतिहास म सम्भवत कही भी दो विरोधी नाम इस तरह नही जुडे जिस तरह नहरू व लाहिया के नाम जुडे हैं। वे सघर्षात्मक एव विराध पक्षीय राजनीति के पदा मे थे। लोकप्रियता क लिए लेन देन, सौदबाजी और बनावट उन्हे आती ही न थी। अपन सिद्धात और कम क द्वारा उन्होंने बहुमुखी जन-जागरण किया और अनकानक कष्ट सहन किए। उनके सिद्धान्त और कम निष्ठा का इससे अधिक प्रमाण भला क्या मिलेगा कि साधनहीन एव सत्ताहीन हाकर भी वे हिन्दुस्तान क जन-जन तक पहुँच सके। डॉ० लाहिया हिन्द-पाक महासघ का निर्माण चाहते थे। उन्होंने कहा था, मैं नकली और बनावटी विभाजन को मिटाना चाहता हूँ। मरी राय मे भारत और पाकिस्तान की जनता मे एक हो जाने की इच्छा पदा करना ही शान्ति का अकेला रास्ता है।' [आवार शरद लोहिया, पृष्ठ २४] वे अंग्रेजी भाषा का निरन्तर विरोध करते रहे। साशलिस्ट पार्टी न माच १९४८ के नासिक सम्मलन मे कांग्रेस से अलग होन का निश्चय किया। डॉ० लोहिया की प्रेरणा से इसी सम्मेलन म एक प्रस्ताव स्वीकृत किया गया, जिसम भारत की ६८० रियासता की हस्ती को देश की स्वतत्रता के लिए हानिकारक बताया गया।

भारत के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक उन्नयन की दिशा मे क्रियाशीलता

डॉ० लाहिया न तिब्बत पर चीन के आक्रमण को शिशु हत्या बताया और सरकार का हिमालय प्रदेशा की सुरक्षा के लिए चेतावनी देते हुए 'हिमालय नीति प्रस्तुत की, जिसम उन्होंन उत्तरी सीमा पर लगन वाले पडोसी राष्ट्रो म जनतत्र की स्थापना पर बल दिया था।[1] वे पार्टी के परराष्ट्र विभाग समिति के अध्यक्ष थे। उन्होंने परराष्ट्र नीति के अन्तगत गत महायुद्ध के समय विश्व-राष्ट्रा क दो गुटो म विभक्त होन का विरोध किया तथा एक तीसरी शक्ति की कल्पना की थी—तीसरा खेमा। डॉ० लोहिया ने कश्मीर समस्या को पडित नेहरू द्वारा सयुक्त राष्ट्र सघ म ले जाना एक महान् भूल माना। माच १९४९

* * * * *

1—डॉ० लोहिया भारत चीन और उत्तरी सीमाएँ, पृष्ठ 5

मे सोशलिस्ट पार्टी का दूसरा राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ, जिसमे डॉ० लोहिया ने 'आगे बढ़ा' के रूप म एक क्रान्तिकारी विचार दिया। इसी समय उन्होंने चौखम्भा राज की योजना प्रस्तुत की। इन्ही दिनो उत्तर प्रदेश के किसानों की बहुत-सी मांग जस गन्ने का कम मूल्य तथा दस गुना लगान की जबरदस्ती वसूली आदि को लेकर लोहिया के नेतृत्व मे एक विशाल जन प्रदर्शन का आयोजन किया गया। पटना म हिन्द किसान पचायत की स्थापना हुई, जिसके अध्यक्ष डॉ० लोहिया चुने गये।

२६ फरवरी १९५० को रीवा म हिन्द किसान पचायत का पहला राष्ट्रीय सम्मेलन डा० लोहिया की अध्यक्षता म हुआ जिसमे उन्होंने देश के सम्मुख कृषकों की मांग रक्खीं और 'गरीबी मिटाओ' नामक प्रसिद्ध कार्यक्रम रक्खा। मई १९५० म 'चम्पारन जांच समिति' के अध्यक्ष के रूप मे डॉ० लोहिया न चम्पारन का दौरा किया। उन्होने २० अप्रल से १७ मई तक रचनात्मक कार्य क्रम चलाया। उनके इस रचनात्मक कार्यक्रम का आधार फावडा था, गाधी का चर्खा नही। इस कार्यक्रम का उद्देश्य छोटे तालाब, नहर, सडक और कुए निर्मित करना था। इसके अन्तर्गत उन्होने बुलन्दशहर की तीन सौ एकड भूमि मे नाली खोदने के कार्य का उद्घाटन किया। पथरेढी ग्राम के किसानो न पनियारी नदी पर दो पहाडो के बीच 'लोहिया सागर बाँध' बनाया।[1] इस प्रकार उन्होंने ऐच्छिक और सामुदायिक श्रम की आवश्यकता पर बल दिया। उनका कहना था कि रचनात्मक कार्यक्रम के बिना सत्याग्रह एक क्रिया रहित वाक्य के समान है।[2] इससे स्पष्ट होता है कि उनकी राजनीति जितनी ध्वंसात्मक थी उतना ही रचनात्मक। यह कहने की कोई आवश्यकता नही कि रचनात्मक कार्यक्रम से भी अधिक उन्हें गरीबो की रोजी, रोटी और कपडे का ध्यान था। इस हेतु उनकी अध्यक्षता म दिल्ली मे ३ जून १९५१ को 'जनवाणी दिवस' मनाया गया। १३ १४ मई १९५४ से जून ५४ तक लोहिया तथा उनके अनुयायियो न उत्तरप्रदेश के तेरह जिलो मे नहर रेट-वृद्धि के विरोध मे सविनय अवज्ञा की और जेल भोगी।

समाजवादी दलो का सगठन और दिशा निर्देश

पददलिता के उत्थान के लिए डॉ० लोहिया ने समाजवादी दलो को सगठित करने और उन्हें कुशल मार्ग-दर्शन प्रदान करने का आजीवन प्रयास

* * * * *

1—ओंकार शरद लोहिया पृष्ठ 222

2—Dr Lohia Marx Gandhi and Socialism p 386

किया। उनके प्रयासो के परिणाम स्वरूप ही सन् १९५३ मे 'किसान मजदूर प्रजा पार्टी' और 'सोशलिस्ट पार्टी' मिलकर एक 'प्रजा सोशलिस्ट पार्टी' के रूप मे सगठित हो गई। सगठन हुए बहुत दिन नही हुए थे कि दल का बिखरना प्रारम्भ हो गया। केरल के प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के मन्त्रिमडल ने सन् ५४ मे निहत्थी भीड पर गोली चलवायी। अहिंसात्मक और मानवीय राजनीति के नाते डॉ० लोहिया ने पार्टी के महामन्त्री की हैसियत से मुख्य मन्त्री श्री पट्टम थाणु पिल्ले से पद त्याग की माँग की।[1] पार्टी ने उनकी माग ठुकरायी। इधर आवाडी काग्रेस अधिवेशन (१९५४) की 'समाजवादी समाज की रचना' की नीति का अशोक मेहता आदि प्रजा समाजवादियो ने स्वागत करना आरम्भ किया। दल मे फूट पडी और लोहिया को ३१ दिसम्बर ५५ एव १ जनवरी ५६ के अधिवेशनो मे समाजवादी दल का निर्माण करना पडा। २९ जनवरी १९६५ को पुन समाजवादी दल और प्रजा समाजवादी दल एक होकर सयुक्त समाजवादी दल के रूप मे सगठित हुए। अशत व्यक्तिक और अशत सैद्धान्तिक मतभेद के कारण सयुक्त समाजवादी दल से प्रजा समाजवादी दल पृथक हो गया। इस प्रकार डा० लोहिया को समाजवादी एकता के काय मे केवल आशिक और अस्थायी सफलताए ही प्राप्त हुईं। उनकी इस असफलता का कारण उनकी सिद्धान्त निष्ठ राजनीति थी।

हाँ, दिशा निर्देशन के काय मे डा० लोहिया काफी हद तक सफल हुए। उन्होंने पाश्चात्य एव पूर्व की समाजवादी विचार धारा का विश्लेषण किया और अपने समाजवादी आन्दोलन को व्यवहार एव सिद्धान्त मिश्रित मौलिक चिन्तन से आभूषित किया। इतना सब होते हुए भी उन्हें बार-बार पराजय का मुह देखना पडा क्योकि उनके दल के अधिकाश कार्यकर्ता कमठ, सिद्धान्त निष्ठ और त्यागी नही थे। कुशल कार्यकर्ताओ के अभाव मे और काग्रेस के सगठन के प्रभाव मे डा० लोहिया के सिद्धान्तो को शक्ति हासिल नही हुई। उनके सिद्धान्त कमजोर सत्य बन कर रह गये। यदि लोहिया के विचार वास्तव मे सत्य हैं, तो उन्हें कभी न कभी शक्ति प्राप्त होगी, क्योकि सत्य की ही तो विजय होती है।

अपने सिद्धान्तो को सत्य निरूपित करने के लिए ही वे सगठन और शक्ति चाहते थे। यही कारण है कि उन्होंने केवल देश के ही समाजवादी आन्दोलन को नही अपितु देश के परे समाजवादी दलो को भी एकत्रित करने का प्रयास

* * * * *

1—मार्च १९६८ जन, पृष्ठ 33

किया । इस हतु ३ जुलाई १६५१ से प्रारम्भ होने वाले विश्व समाजवादियो क अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन मे भाग लेने के लिए वे जमनी गये । वहाँ पर उन्होन अपने भाषण म तीसरे खेमे की आवश्यकता और स्थापना पर बल दिया । डा० लाहिया के प्रयत्नो के फलस्वरूप ही २५ माच १६५२ का रगून मे एशियायी सोशलिस्ट कान्फ्रेन्स की नीव पडी ।

आम चुनाव, आन्दोलन और डा० लोहिया —अपन जिन समाजवादी सिद्धान्तो के लिए वे तीसरे खेमे का निर्माण चाहते थे, उन्ही का दश मे प्रतिष्ठित करन के लिए वे आन्दोलनो और चुनावा म सफलता के आकाक्षी थे। सन १६५७ के आम चुनाव म डॉ० लोहिया उत्तर प्रदेश के चकिया-चंदौली चुनाव क्षेत्र से लोक सभा की सदस्यता के लिए खडे हुए, लेकिन असफल हुए। तब उन्होने ससद के बाहर की राजनीति तीव्र की और 'अग्रेजी हटाओ", "दाम बाधो', 'जाति तोडो हिमालय बचाओ आदि आन्दोलनो को लेकर सविनय अवज्ञा करने म लग गये। विशेषाधिकारो का विरोध उन्होने विशेष रूप से किया। देश क हर डाक बगले और सकिट हाउस मे वे सामान्य जन को भी ठहरने का अधिकार दिलाना चाहते थ । उनकी मान्यता थी कि वे सरकारी धमशालाय हैं। १७ अप्रल १६६० का कानपुर क सकिट हाउस मे ठहरने के कारण उन्हे १०० रु० का जुर्माना भी देना पडा था। ऐसी कुत्सित उपेक्षाएँ सहते हुए भी वे जनता के हिताय और शासन के विरोधाथ निरन्तर सघषरत रह। अवसर आने पर वे इसी उद्देश्य के लिए चुनाव भी लडे। सन् १६६२ के तीसरे आम चुनाव मे फूलपुर चुनाव क्षेत्र स लाहिया नेहरू के विरुद्ध लोक सभा के लिए खडे हुए। चुनाव परिणाम उनके विपक्ष मे गया।

ससदीय जीवन मे विस्फोटक लोहिया :—हलचल और लाहिया का पृथककरण नही किया जा सकता। अमरोहा निर्वाचन क्षेत्र के उपचुनाव मे विजयी होकर १६६३ म डा० लोहिया लाक सभा क सदस्य बन। उनके आते ही लाक सभा भी हलचल की केन्द्र बन गई। उनक विद्रोही व्यक्तित्व न लोक सभा मे खलबली मचा दी। उन्होने लोक सभा का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा कि दश के लगभग १८ कराड व्यक्तियो मे स प्रत्येक तीन आने प्रतिदिन पर अपना जीवन निर्वाह करता है। उनका यह कथन एसा था जिसकी कल्पना तक शायद किसी न न की होगी परन्तु उन्होन इसको प्रमाणित करने का प्रयास किया था। भले ही उनका यह कथन विवादास्पद हो, किन्तु उनका यह विवादास्पद कथन

दलितो के प्रति उनकी सहृदयता को निर्विवाद रूप से प्रकट करता है। विश्व-नागरिक डा० लोहिया भारत मे स्वेबलाना को शरण देने के पक्ष मे थे। आपका एक अन्य महत्वपूर्ण प्रस्ताव 'खर्च पर सीमा' था। यहाँ यह कहने की कोई आवश्यकता नही कि उनके किसी भी प्रस्ताव पर उस समय की सरकार ने ध्यान नही दिया।

अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ के प्रति दृष्टिकोण और विश्व भ्रमण

जितने क्रान्तिकारी डॉ० लोहिया सम्नीय राजनीति में थे उतने ही संसद के बाहर की राजनीति मे और उतने ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति म। हर क्षेत्र मे वे अन्दर और बाहर की एकता के प्रतीक थे। वे राष्ट्रीय समस्याओ के प्रति जागरूक थे, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ के प्रति भी कम नही। अन्तर्राष्टीय जाति प्रथा, अन्तर्राष्ट्रीय जमीदारी, अन्तर्राष्टीय आर्थिक असमानता, साम्राज्य-वाद आदि का उन्होने आजीवन विरोध किया। वे संयुक्त राष्ट्र संघ का पुनर्गठन विश्व विकास समिति और विश्व-सरकार की स्थापना चाहते थे। सन १९४९ ई० मे विश्व-सरकार के समर्थकों का स्टाकहोम मे एक सम्मेलन हुआ जिसमे भाग लेने के लिए विश्व शान्ति प्रेमी डा० लोहिया वहाँ पहुँचे थे। उन्होन १५ अप्रल १९६४ स विश्व भ्रमण करना पुन प्रारम्भ किया। पूर्वी देशो म होते हुए वे मई मे अमरीका पहुँचे जहाँ उन्होंने रंगभेद नीति का विरोध किया। उन्होंने वहाँ के नीग्रो को रंगभेद के विरुद्ध सत्याग्रह करने के लिए प्रोत्साहित किया।[1]

अन्तिम राजनीति और संविद् की कल्पना—अमरीका से वापिस आने के पश्चात जून सन १९६५ म डॉ० लोहिया ने जर्मनी रूस, अफगानिस्तान आदि देशो की यात्रा की। विदेश यात्रा से लौटने पर पुन शासन के विरोध और कष्टों के निरोध मे लग गये। सन ६६ को ११ जुलाई को महँगाई भ्रष्टाचार और जनता के कष्टो के प्रति शासन को सचेत करने के लिए उन्होंने उत्तर प्रदेश बंद का आयोजन किया। ११ जुलाई को आगरा स्टेशन पर लोहिया को गिरफ्तार किया गया। मुकदमे के परिणाम स्वरूप उन्हें मुक्ति मिली। १९६७ के आम चुनाव मे उन्होंने कांग्रेस हटाओ और देश बचाओ का नारा लगाया। डॉ० लोहिया कन्नौज निर्वाचन क्षेत्र मे लोक सभा की सदस्यता के लिए चुन गए। कई राज्यो मे उनकी कल्पना के अनुसार संविद

* * * * *

1—Harris Wofford Jr Lohia and America Meet p 26

मे डॉ० लोहिया की पौरुष-ग्रन्थि का आपरेशन हुआ और उसी के परिणाम स्वरूप गरीबो का मसीहा १२ अक्टूबर ६७ को १ बजकर ५ मिनट पर इस धरा से उठ गया।

डॉ० लोहिया राजनीतिक प्रभविष्णुता

डॉ० लोहिया के सम्पूर्ण जीवन से स्पष्ट होता है कि उनके चरित्र मे कुछ ऐसी विशेषताएँ है जो सामान्यत एक राजनीतिज्ञ के जीवन मे नही होती। उनके जीवन की निम्नलिखित विशिष्टताएँ उनके समाजवादी दर्शन का भी पर्याप्त रूपेण आभास कराती हैं।

(१) गरीबों का मसीहा —वे गरीबो के मसीहा और दुखिया के पैगम्बर थे। अपनी अन्तिम साँस तक वे गरीबो की रोटी रोजी कपडा के लिए सतत संघर्ष करते रहे। उनको गरीबो के पेट के भी पहले उनके मन और जबान का अधिक ध्यान था। उनको गरीबो के प्रति स्वाभाविक रूप से श्रद्धा थी। अपने जीवन के अन्तिम क्षणो मे भी उनके शब्द थे लाखो का क्या होगा? किसानो का क्या होगा? लगान का क्या होगा? हिन्दी का क्या होगा? और 'मेरे अकेले के लिए इतने डाक्टर। करोडो तो एक डाक्टर का चेहरा भी नही देख पाते।[1] डा० लोहिया रात रात भर कलकत्ते मे चक्कर लगाकर देखते थे कि कितने गरीब सडक पर सोते हैं।[2] संसद के बाहर और अन्दर की उनकी कृति भी इसका प्रमाण है। इनकी मृत्यु पर सभी महान और उनके विरोधी नेताओ की श्रद्धाजलिया भी इस तथ्य को स्वीकार करती है। उदाहरणार्थ यशवन्त राव चह्वाण ने ही कहा था, डा० लोहिया पद-दलितो के प्रवक्ता थे।"[3] एक बार लोहिया के चाचा रामकुमार लोहिया ने उनकी पसन्द का धंधा पूछा। उन्होने तुरन्त उत्तर दिया दल बनाकर करोडो समाप्त करना है।[4] वास्तव मे डॉ० लोहिया शासको, सत्ताधारियो के लिए आतंक, गरीबों के लिए हौसला, गिरे हुओ के लिए प्रेरणा, बेजुबानो की वाणी और शक्तिहीनो की शक्ति थे।

* * * * *

1—दिनमान 22 अक्टूबर, 67 पृष्ठ 9
2—जन मार्च 1968 पृष्ठ 32
3—दिनमान 22 अक्टूबर 1967 पृष्ठ 24
4—ओंकार शरद—लोहिया पृष्ठ 79

(२) **लौह पुरुष** —डा० लोहिया एक लौह-पुरुष थे। विषम से विषम स्थिति मे भी वे हमेशा दृढ-प्रतिज्ञ रहे। यो तो उनकी इस विशेषता को स्पष्ट करने के लिए उनका समग्र जीवन ही एक उदाहरण है, परन्तु सक्षेप मे सन १९४२ के 'भारत छोडो' आन्दोलन के प्रणेता डॉ० लोहिया न अगस्त १९४२ की रात्रि मे २० मई १९४४ तक भूमिगत आन्दोलन किया। इस आन्दोलन की खानाबदोशी, अनिश्चितता नकाबपोशी, शारीरिक मुसीबतें कठिनाइयाँ और अन्य यातनाएँ लोहिया को लोहिया बना देती हैं। लाहौर किले की जेल मे गोरे आफिसर द्वारा उनको सिफलाया जाना, भारी भरकम हथकडी पहिनाया जाना, जमीन के खुरदरे फर्श पर उन्हे चक्करदार गोलाई मे घसीटा जाना कुर्सी पर बठाये रखना और जबरन आँख खुली रखने को विवश करना ६ ६ दिनों तक लगातार सोने न देना, उनके मित्रो और राष्ट्रीय नेताओ को गाली देना, डा० लोहिया ऐसे लोहिया ही सहन कर सके और फिर भी गाधी के लिए निकले अपशब्दो के लिए 'मुह बन्द करो, किले का बुजदिल' ऐसा कठोर उत्तर आफिसर को लोहिया ही दे सके।

गोवा स्वतन्त्रता-अभियान म मडगाँव की हजारो की भीड मे भाषण के लिए खडे डॉ० लोहिया की ओर एडमिनिस्ट्रेटर मिराण्डा का हाथ मे रिवाल्वर लेकर लपकना और डॉ० लोहिया का रिवाल्वर वाले हाथ को पकड कर नीचे करना और 'धीरज मे काम ला देखते नही, कितनी भीड जमा है। खून खराबी होगी तो शाति कायम रहेगी क्या ?[1] कहना उनका स्पष्टत लौह पुरुष बना देता है। अपने सम्पूर्ण जीवन म १८ बार जेल जाना और निभयता से सामाजिक न्याय के लिए कष्ट उठाना लोहिया को अद्वितीय साहसी और क्षमतावान सिद्ध करता है।[2] श्री एल० पी० सिन्हा के एक निबध 'सोशलिज्म इन इण्डिया चलेन्जज एण्ड रिसपोन्सेस मे डॉ० लोहिया को 'निर्भीक डॉ० लोहिया' (Dauntle s Dr Lohia) कहा गया है।[3] उनके स्वगवास पर श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए भूतपूर्व लोक सभा अध्यक्ष सजीवा रेड्डी ने ठीक ही कहा था "जो व्यक्ति मलिनता को भस्म कर देने की शक्ति रखता था आज अग्नि ने उसे ही भस्म कर दिया। इस देश मे अनेक नेता हुए लोहिया केवल एक हुआ।"[4]

* * * * *

1—ओंकार शरद—लोहिया पृष्ठ 164
2—22 अक्टूबर 67 दिनमान पृष्ठ 25
3—The Indian Journal of Political Science p 12 (Jan—March 1970)
4—दिनमान 22 अक्टूबर 1967 पृष्ठ 24

(३) मानवतावादी दृष्टि —डॉ० लाहिया का दशन तो मानवतावादी है ही परन्तु उनका जीवन उनके दशन से कही अधिक मानवतावादी। आधुनिक युग म अधिकाशत 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' को चरिताथ करते हुए बहुत से नेता मिलते है, किन्तु 'कथनी और करनी म एक' केवल लोहिया ही हैं। मानवता के निर्माण करने के लिए ही डा० लाहिया जीवन पयन्त राजनीति के क्षेत्र म रहे। मानव की प्रतिष्ठा और सम्मान के कारण ही वे कभी रिक्शे पर नही बठते थे। फलस्वरूप डा० साहब को अक्सर पदल, ताँगे म या किसी साथी की साइकिल के पीछे बठकर ही यात्रा करनी पडती थी। सन १९५० ई० म हिन्द किसान पचायत की अध्यक्षता के लिए उन्हें लखनऊ से रीवा जाना था। लोहिया मोटर पर बठे लकिन मोटर खराब हो गई। रिक्शा मिल सकता था लेकिन पदल चलने लगे और साथियो से कहा, 'तुम रिक्शे स जाओ और ताँगा या इक्का मिले तो भेज देना।'[1] वे एक विश्व नागरिक थे। डॉ० लोहिया न समान प्रसवा जाति' क सूत्र को केवल समझने के लिए नही अपितु स्थायी मानसिक दशा के रूप मे अपनाने के लिए विश्व नागरिको को जागत किया। उन्होने जाति प्रथा उन्मूलन नर-नारी समानता, वग-समाप्ति, रग भेद उन्मूलन आदि के लिए अतुलनीय सघष किया है।

डॉ० लोहिया का जीवन सदव विस्फोटक रहा एव उन्होने राजनीति म एक झाड वाले की भूमिका अपनायी। वे बार बार चिल्लाकर कहते थे कि आदमी को मक्खी के समान मानना बुरा है इन्सानियत की इज्जत होनी चाहिए। डॉ० लोहिया फाँसी की सजा के जन्मजात विरोधी थे। उनका कहना था कि चाहे जिन्दगी भर जेल म डाले रखो पर फाँसी न हो क्योकि गला घोंट कर मार डालना इन्सानियत की बात नही है। इस हेतु फाँसी आदेश प्राप्त तोता नामक व्यक्ति को फाँसी न दी जाने की राष्ट्रपति से पहल की तथा अपने दल की केरल की सरकार स अगस्त ५४ को त्यागपत्र माँगा। लोक सभा के अन्दर हो या बाहर उनके प्रखर व्यक्तित्व के पीछे मनुष्य की प्रतिष्ठा की माँग बोलती थी। चाहे वह पुलिस का प्रश्न हो या साधुओ का अकाल का प्रश्न हो या विद्यार्थियो का डा० लाहिया की प्रक्रिया सीधे-सीधे होती थी। यदि डॉ० लोहिया की राजनीति को अमानवीयता के विरुद्ध मानवीयता की राजनीति कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी।

* * * * *

1—इन्दुमति केलकर लोहिया—सिद्धान्त और कर्म पृष्ठ 15

(४) जन्मत समाजवादी —डॉ० लोहिया जन्मत सच्चे समाजवादी होने के नाते मानवता के अनन्य उपासक थे। जब वे ६ वर्ष के थे, तब पाठशाला जाते हुए एक बार उन्होंने देखा कि १८ या १६ वर्ष का एक नवयुवक अपने से कुछ छोटे नवयुवक को पीट रहा है। लोहिया अपनी दुर्बल शक्ति से ही उग्र सताये जाने वाले लड़के की रक्षा कर रहे थे।[1] पीड़ित एवं शोषित के प्रति करुणा एवं सहानुभूति तथा शोषक के प्रति चिढ़ उनके स्वभाव में प्रारम्भ से ही थी। डॉ० लोहिया का दीन दलितों की सेवा में जन्म से ही बड़ी रुचि थी। एक बार एक अपाहिज, गरीब एवं प्यासे व्यक्ति को उन्होंने कुएँ से पानी खींच कर पिलाया।[2] इस कृत्य ने उनको इतना आनन्द दिया कि वे जीवन पर्यन्त सच्चे समाजवादी होकर मानव एवं निरीहों के लिए सतत संघर्षरत रहे।

(५) विद्रोही व्यक्तित्व —डॉ० लोहिया आरम्भ से विद्रोही थे। उनके विद्रोही व्यक्तित्व में विचार, प्रतिभा और कर्मठता का सम्मिश्रण था। उनकी समस्त कृतियों के रूप में अन्याय का तीव्रतम प्रतिकार ही रहा है। उन्होंने केवल सन ४२ के आन्दोलन, लाहौर या किंवा गोवा, नेपाल या अन्य ऐसे प्रसंगों में अपनी बहादुरी नहीं दिखायी, बल्कि उनकी बहादुरी का स्वरूप जिन्दगी की सारी जंजीरें—लोभ की, सफलता की कीर्ति की, प्रीति की—किसी स्थितप्रज्ञ की तरह बेहिचक तोड़ने में है। उनकी राजनीति सिद्धान्त निष्ठ थी। उनमें प्रबल इच्छा शक्ति, संयम, असीम शौर्य और धैर्य था। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण वे बारम्बार कष्टों और अपमानजनक अनुभवों को आमन्त्रित करने के अभ्यस्त हो गये थे। विरोधियों की कटुता तो उन्होंने जीवन पर्यन्त हर क्षण सही, साथ ही साथ उनके अभिन्न मित्रों और साथियों ने भी उनका साथ छोड़ा परन्तु डॉ० लोहिया अपने मार्ग पर चट्टान की तरह अडिग रहे। बारम्बार आहत होकर भी उन्होंने कभी समझौते का मार्ग नहीं स्वीकारा। अंतिम समय की अचेतावस्था में भी उन्होंने बड़बड़ाया "मैं आजीवन विरोधी दल का ही नेता रहूँगा। डॉ० रामधारी सिंह दिनकर ने भी उन्हें "आजीवन विस्फोटक व्यक्तित्व' और 'भाग्यवाद के विरोधी, निश्छल आदर्शवादी' की संज्ञा दी।[3] भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसेन ने उन्हें श्रद्धांजलि

* * * * *

1—इन्दुमति केलकर लोहिया—सिद्धान्त और कर्म पृष्ठ 23
2—वही पृष्ठ 29
3—धर्मयुग 21 मार्च 1968 पृष्ठ 10

अर्पित करते हुए कहा "एक महान देशभक्त, आदर्शवादी और जीवन पर्यन्त विद्रोही डॉ० लोहिया ने अपना जीवन गरीबों की सेवा में उत्सर्ग किया ।"[1]

(६) भविष्य द्रष्टा —डॉ० लोहिया एक महान भविष्य द्रष्टा थे। उनका अनुभव गम्भीर एवं उनकी दृष्टि अति सूक्ष्म थी। भविष्य के गर्भ में छिपी हुई घटनाओं को समझ लेना उनके लिए बहुत सरल था। उनकी भविष्य वाणियाँ ज्योतिषियों के किसी माया जाल पर नहीं, अपितु तर्क एवं चिन्तन पर *आधारित थीं। उन्होंने अनेक भविष्यवाणियां की जो पर्याप्त रूपेण सत्य* निकली। प्रमाण के लिए कुछ उदाहरण दिये जा सकते हैं। उन्होंने अकाल की परिभाषा की जिसके अनुसार दो दिन में एक बार भोजन मिलना अकाल है और इस परिभाषा के संदर्भ में सन ५२ में उन्होंने भविष्य वाणी की थी कि सन १९५४ ई० और सन् १९५८ ई० में अकाल पड़ेगा। उनकी यह भविष्य *वाणी सत्य निकली।*[2] *सन १९६२ ई० में भारत पर किया गया चीनी आक्रमण* भी उनकी दूर दृष्टि का परिचायक है क्योंकि तिब्बत पर किए गये चीनी आक्रमण को शिशु हत्या बताकर उन्होंने सन १९५० में ही शासन के समक्ष 'हिमालय नीति' प्रस्तुत की थी जिसमें उन्होंने प्रतिपादित किया था कि देश उस समय तक सुरक्षित नहीं हो सकता जब तक वह पड़ोसी राज्यों में जनतंत्र *और समाजवाद के लिए संघर्ष न करे।*[3] *सन् १९६७ ई० के चुनाव परिणाम* स्वरूप राज्यों में संविद सरकारों का अभ्युदय और पतन भी डा० लोहिया के द्वारा की गई सन १९६२ ई० की भविष्यवाणी के अनुकूल था।[4]

डा० लोहिया ने सन १९५८ ई० में ही कहा था कि संविधान के लागू होने के १५ वर्ष बाद भी भारतीय सरकार अंग्रेजी भाषा को सार्वजनिक कार्यों के माध्यम के रूप में समाप्त न कर पायगी।[5] इस भविष्यवाणी की सत्यता भी सन १९६८ ई० के राज भाषा संशोधन विधेयक से स्पष्ट है। अभी कांग्रेस में हुई फूट को उन्होंने सन् १९६३ में ही देख लिया था। उन्होंने स्पष्ट कहा था कांग्रेस तो खतम होने वाली है टूटने वाली है (संयुक्त) मोर्चा

* * * * *

1—ओंकार शरद लोहिया पृष्ठ 30
2—लोहिया अन्न-समस्या पृष्ठ 21 और 37
3—लोहिया भारत चीन और उत्तरी सीमाएँ पृष्ठ 5-6
4—लोहिया भाषण सिकन्दराबाद 2 अक्टूबर 1963
5—लोहिया पाकिस्तान में पलटनी शासन पृष्ठ 18

प्राय असम्भव है।"[1] स्वय के देहावसान का सकेत उन्होने सन् १९६६ ई० मे ही दे दिया था। अपने दल को ठीक बनाने के लिए निर्देश देते हुए उन्होने कहा था, "अब हमारी उम्र भी बढ गई है। हो सकता है फिर बाद मे ठीक-ठाक न कर पाएं।"[2]

बगला देश के स्वतत्रता सघर्ष और उसके अभ्युदय की भविष्यवाणी उन्होने पहले ही कर दी थी। सन '५० मे अपनी पुस्तक "फ्रैगमेन्ट्स ऑव ए वर्ल्ड माइन्ड" मे उन्होने लिखा था "पश्चिम पाकिस्तान और पूर्व बगाल एक दूसरे से इतनी दूरी पर है और सस्कृति, वेश भूषा रहन-सहन रग रूप इतना भिन्न है कि वे एक दूसरे के साथ नही रह सकते। आने वाले दिनो मे हो सकता है कि पश्चिम पाकिस्तान पूर्व पाकिस्तान को अपना उपनिवेश बनाकर रखे और उसका शोषण करे और शोषण के विरुद्ध वहाँ की जनता आवाज उठाये और अपने को स्वतत्र घोषित करे।" साथ ही साथ उन्होने यह भी लिखा था कि "वहाँ की जनता की जो आजादी की लडाई होगी उसका समर्थन भारत सरकार नही करेगी और भारत की जनता सम्पूर्ण रूप से उसका समर्थन करेगी। उनकी यह भविष्यवाणी आशिक रूप से गलत निकली क्योकि भारत की जनता न तो बगला देश को अपना सम्पूर्ण समर्थन दिया किन्तु उनकी अपेक्षा के विरुद्ध भारतीय शासन ने भी अत्यधिक महत्वपूर्ण कार्य किया। उनकी भविष्यवाणी की आशिक असफलता का कारण उनमे दूरदृष्टि का अभाव नही अपितु इन्दिरा गाधी की साहसी और कुशल राजनीति है।

उनके निधन पर श्री जयप्रकाश नारायण ने भी स्वीकार किया था, "भविष्य द्रष्टा डा० लोहिया ने दस साल पहले ही समझ लिया था कि हिन्दुस्तान किधर जा रहा है। उन्होने जो तस्वीर खीची थी वह कितनी सच्ची थी इसका प्रमाण भारत का चौथा आम चुनाव है जो खुद डॉ० लोहिया की एक क्रातिकारी यादगार है।' वास्तव मे डॉ० लोहिया एक अनन्य भविष्य द्रष्टा थे। उनकी निम्नलिखित भविष्यवाणी अब भी भविष्य के परीक्षण मे है — 'आज ससार मे एक विकट स्थिति हो गयी है। अगले २५ ३० वर्ष के अन्दर अन्दर या तो दुनिया खतम होगी या हथियार खतम होगे। इसके ऊपर आपके मन मे सन्देह नही रहना चाहिए।[3]

* * * * *

1—लोहिया सरकारी मठी और कुजात गांधीवादी पृष्ठ 25
2—डॉ लोहिया सुधरो अथवा टूटो, पृष्ठ 17
3—लोहिया भाषण 1963 अक्टूबर 2 सिकन्दराबाद।

र

(७) मौलिक चिन्तक —डॉ० लोहिया एक मौलिक चिन्तक थे। उनके दशन मे अधिकाश विचारको और दार्शनिको की विचारधाराएँ समाहित दिखाई पडती हैं। यह तथ्य उनके व्यापक दशन का द्योतक है। किसी दूसरी की पीठ पर बठना अथवा अनुकरण करना उनकी आदत के विपरीत था। यों तो सम्पूर्ण दशन मौलिकता से परिपूर्ण है, तथापि इस हेतु उनके कुछ मौलिक सिद्धात यहाँ गिनाए जा सकते हैं। "इतिहास चक्र' नामक उनकी पुस्तक की प्रशसा पाश्चात्य देशो ने भी मुक्त-कठ से की है। उनकी चौखम्भा योजना, विश्व-समाजवाद का नव दशन, समान असगति, वाणी स्वतन्त्रता और कम नियत्रण, अन्तर्राष्ट्रीय जमीदारी और अन्तर्राष्ट्रीय जाति प्रथा आदि के सिद्धात उनके मौलिक चिन्तन के जीवित उदाहरण हैं। २३ जुलाई सन् १९५१ को डॉ० लोहिया से वार्ता करते हुए महान वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने भी उनके स्वतत्र मस्तिष्क की प्रशसा करते हुए कहा था, I see, you have an independent mind'[1]

* * * * *

1 Harris Wofford Jr Lohia and America Meet p 66

अध्याय २

समाजवाद . एक सैद्धान्तिक विवेचन

समाजवाद की परिभाषा एव उसके स्वरूप को डॉ० राम मनोहर लोहिया ने मौलिक मोड दिया है। अत उनके विचार जानने से पहिले कतिपय पूवगामी विचार जानना उपयुक्त होगा।

समाजवादी विचार-धारा ने जितनी अधिक हलचल वतमान शताब्दी मे उत्पन्न की है उतनी अन्य किसी भी विचार धारा ने नही। आज समाजवाद अन्य किसी भी विचार धारा की अपेक्षा अधिक छाया हुआ है। एक न एक रूप म यह ससार के करोडो व्यक्तियो का धम सा बन गया है और उनके विचारो तथा कार्यों की रूप रेखा निर्धारित करता है। 'समाजवाद' तथा 'समाजवादी' शब्दो को विविध अर्थों मे प्रयुक्त किया जाता है फिर भी शब्द और अथ का घनिष्ठ सम्बन्ध है। 'समाजवाद शब्द भी इस सिद्धान्त का अपवाद नही है। शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि मे 'समाजवाद' शब्द का अथ निम्न प्रकार से दिया गया है —

समाजवाद का अर्थ और परिभाषा —'समाजवाद' शब्द अग्रेजी भाषा के 'सोशलिज्म' शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। 'सोशलिज्म' शब्द लेटिन भाषा के सोसियस (Socius) शब्द से निकला है जिसके अथ हैं साथी, सहायक अथवा भागाधिकारी। यह किसी ऐसे व्यक्ति को सूचित करता है जो समान कोटि अथवा अवस्था का हो। अतएव समाजवाद के अथ हैं भ्रातृत्व अथवा मित्रता जिसमे सब मनुष्य समानता के भाव के साथ मिल जुल कर काम करेंगे। राज्य के शासन के सम्बन्ध मे यह प्रकट करता है कि प्रत्येक काय निष्पक्ष रूप मे साधारण जनता की सेवा के लिए किया जायेगा।

सम्भवत समाजवाद के अतिरिक्त और किसी आन्दोलन पर न इतना अधिक विवाद हुआ है और न परिभाषा के विषय में इतनी कठिनाइयाँ ही उपस्थित हुई हैं। एक दृष्टि मे समाजवाद एक विरोधी नीति है जिसके झण्डे के नीचे वतमान सामाजिक व्यवस्था की समस्त विरोधी शक्तियाँ सगठित हो गई हैं जो पूजीवाद के भिन्न भिन्न पहलुओ, दोषों तथा दुबलताओ को दूर करने की चेष्टा करती है। फलत समाजवाद जिन आन्दोलनो की ओर सकेत

करता है वे प्रारम्भिक बिन्दु और उद्देश्य में, साधनों और तथ्यों में इतने भिन्न हैं कि एक संक्षिप्त परिभाषा के अन्तर्गत उन सबका सन्तोषजनक वर्णन हो जाना सरल काम नहीं है। इसके अतिरिक्त समाजवाद एक जीवित आन्दोलन एवं सिद्धान्त दोनों है जो भिन्न ऐतिहासिक एवं स्थानीय स्थितियों में भिन्न रूप ग्रहण करता रहा है "Socialism is both a movement and a theory and takes different forms under different historical and local conditions"[1]

रम्जे म्योर ने उचित ही लिखा है कि समाजवाद 'गिरगिट के समान रग बदलने वाला विश्वास है। यह वातावरण के अनुसार रग बदलता है। मस्त के कोने तथा नगर के कमरे के लिए यह वर्ग युद्ध का लोहित वस्त्र पहन लेता है। मानसिक पुरुषों के लिए इसका लाल रग भूरे में परिवर्तित हो जाता है। भावनात्मक पुरुषों के लिए वह कोमल गुलाबी रग हो जाता है तथा कलाकारों के समाज में यह कुमारियों का श्वेत वर्ण ग्रहण कर लेता है जिसकी महत्वाकांक्षा की मन्द मुस्कान का अभी अनुभव हुआ हो।'[2] श्री डान ग्रिफिथ्स ने १९२४ में एक पुस्तक 'समाजवाद क्या है?' सम्पादित की जिसमें उन्होंने समाजवाद की २६३ परिभाषाएँ दी हैं। सन् १८९२ ई० में पेरिस के लि फिगारो ने समाजवाद की ६०० परिभाषाएँ प्रकाशित की। समाजवाद का मूल, विचार की अपेक्षा जीवन में तथा अध्ययन की अपेक्षा कारखानों दुकानों तथा गन्दी गलियों में है। समाजवाद समाज के अन्तर एवं संगठन से सम्बन्धित बहुत से सिद्धान्तों का सम्मिश्रण है। समय समय पर इसे धर्म तथा दर्शन की उपाधियाँ भी दी जाती रही हैं। १९वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में समाजवाद एक संगठित राजनीतिक शक्ति बन गया। इसकी आयोजनाएं राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय हो गईं और इसके प्रतिनिधि दल तथा प्रेस स्थापित हो गए। अतएव समाजवाद पर इनमें से किसी एक अथवा समस्त दृष्टिकोणों से विचार किया जा सकता है। और उसी के अनुसार परिभाषा बनाने के लिए प्रयास किया जा सकता है।

बर्ट्रेंड रसेल का कथन है कि समाजवाद का अर्थ भूमि तथा पूंजी पर सार्वजनिक अधिकार रखना है साथ ही साथ प्रजातन्त्र शासन भी स्थापित करना है। इसके अनुसार उत्पादन प्रयोग के लिए है, लाभ के लिए नहीं और

• • • • •

1—Encyclopaedia Britannica p. 7.5

2—Ramsay Muir The Socialist Case Examined p. 3
(उद्धृत — पृष्ठ 25 से उद्धृत)

उत्पत्ति या वितरण या तो सबको समान रूप से हो, अथवा केवल इतना विषम हो जो कि जनता के लिए अहितकर न हो। यह अनोपार्जित धन तथा मजदूरो की जीविका के साधनो पर व्यक्तिगत अधिकार के निराकरण का समर्थक है। पूर्णरूप से सफल होने के लिए इसका अन्तर्राष्ट्रीय होना आवश्यक है।[1]

श्री डी० एच० कोल लिखते है कि समाजवाद मे सिद्धान्त की अपेक्षा विश्वास की भावना अधिक है। यह एक ऐसे समाज को स्थापित करने की इच्छा तथा योजना है जिसका आधार सहयोग तथा भ्रातृभाव हो, जो सगठित मजदूरो के आन्दोलन द्वारा प्रतिफलित हो सके और यह समझे कि सामाजिक अधिकार तथा सामाजिक कर्तव्य समान हैं, तथा जो उन वर्गीय सेवा सम्बन्धी सभी प्रोत्साहन और प्रेरणा को स्वतन्त्र कर सके जिनको पूँजीवाद अस्वीकार करता है। सक्षेप में यह मजदूर वर्ग का तत्व ज्ञान है जो आर्थिक अनुभव के द्वारा सीखा गया है, और अपने को समय की परिस्थितियो के अनुसार एक रीति अथवा कार्य योजना मे परिवर्तित कर लेता है। इसके द्वारा शासन प्रावल्य का विनाश होता है और वर्गीय आधिपत्य के मिट जाने से मनुष्य स्वतन्त्र हो जाते हैं।[2]

जार्ज बर्नार्ड शा के अनुसार व्यक्तिगत सम्पत्ति व्यवस्था की पूर्ण समाप्ति एव सार्वजनिक सम्पत्ति का सम्पूर्ण जनता म समान एव भेद-रहित विभाजन ही समाजवाद है। उन्ही के शब्दो म, Socialism is the complete discarding of the institution of private property and the division of the resultant public income equally and indiscriminately among the entire population' परन्तु यह परिभाषा अपूर्ण है, क्योकि सेन्ट साइमन एव फोरियर के समाजवादी कार्यक्रम पर लागू नही होती, साथ ही साथ वर्तमान समाजवादी व्यवस्था के लिए भी अनुपयुक्त है।[3]

समाजवाद की प्रत्येक वह परिभाषा असफल है जो समाजवादी आन्दोलन के मुख्य उद्देश्य को दृष्टि स ओझल कर उसके केवल बाह्य लक्षणो पर अपना ध्यान केन्द्रित करती है। आस्कर जास्जी ने उचित ही कहा है कि, 'Every definition must fail which focuses attention upon external

* * *

1—Don Griffiths What is Socialism ? p 61
2—Ibid ? p 23-24
(अमर नारायण अग्रवाल समाजवाद की रूप-रेखा पृष्ठ 22 से और 24 उद्धृत)
3—Encyclo aedia of Social Sciences VI 13 14 p 188

features only and overlooks the central motif of all socialist movement'[1]

डॉ० राम मनोहर लोहिया ने समाजवाद की परिभाषा 'समानता एवं सम्पन्नता' ऐसे दो गम्भीर शब्दों में करके गागर में सागर भर दिया है। डॉ० लोहिया की परिभाषा समाजवादी आन्दोलन के मुख्य एवं केन्द्रीय लक्ष्य को सर्वाधिक रूप से स्पष्ट करती है। इसलिए आस्कर जास्जी द्वारा दी गई परिभाषा औचित्य की कसौटी का पूर्ण रूपेण सन्तुष्ट तो करती ही है साथ साथ संक्षिप्त किन्तु व्यापक है, क्योंकि इस परिभाषा में वे सभी तत्व निहित हैं जो समाजवादी सम्पूर्ण ऐतिहासिक विचार धाराओं एवं विभिन्न समाजवादी आन्दोलनों के लिए सामान्य हैं। सम्भवतः इस परिभाषा का दोष इस सन्दर्भ में हो सकता है, किन्तु भिन्न स्थानों पर उनके द्वारा कहे गये शब्द सभी ऐसे तत्वों को स्पष्ट करते हैं। आस्कर जास्जी के अनुसार सभी ऐतिहासिक विचार धाराओं और विभिन्न समाजवादी आन्दोलनों में निहित सामान्य तत्व निम्नलिखित हैं और ये सभी तत्व समाजवाद की पूर्ण परिभाषा में अवश्य ही होने चाहिए —

१—वर्तमान राजनैतिक एवं सामाजिक व्यवस्था को अन्यायपूर्ण घोषित करना तथा उसके प्रति विद्रोह प्रकट करना।

२—एक नवीन व्यवस्था की पहल जो कि वर्तमान के नैतिक मूल्यों से मेल खाती हो।

३—एक विश्वास कि इस नवीन व्यवस्था को कार्य रूप दिया जा सकता है।

४—यह विश्वास कि वर्तमान अव्यवस्था न तो किसी चिरस्थायी विश्व व्यवस्था के कारण है और न ही मानव-स्वभाव के कारण है, बल्कि यह कुछ सामाजिक एवं राजनैतिक भ्रष्ट संस्थाओं की देन है।

५—एक ऐसे क्रियात्मक कार्यक्रम का सृजन जो कि मानव प्रकृति अथवा संस्थाओं अथवा दोनों का पुनर्निर्माण करे।

६—निर्धारित योजना को कार्यान्वित करने के लिए एक क्रान्तिकारी संकल्प।[2]

७—डॉ० लोहिया के समाजवाद में ये सभी तत्व पूर्ण रूपेण मिलते हैं। इसलिए इस अर्थ में भी वे एक सच्चे समाजवादी थे। डा० लोहिया ने वर्तमान

* * * * *

1—Encyclopaedia of Social Sciences Vol 13 14 p 188
2—Ibid Vol 13-14 Pur Tra p 188

की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्थाओ को अन्यायपूर्ण घोषित कर उनके प्रति सतत विद्रोह किया। उनमे परिवर्तन के लिए अत्यधिक छटपटाहट थी। वे वर्तमान विषमता पर देश को चौंका देने वाले थे। उनके अधिकांश वाक्यो मे उनका विस्फोटक व्यक्तित्व झलकता है। उनकी उत्कट अभिलाषा थी कि "क्रान्तिकारी राजनीति का सगठन बनाना है और बढाना है। उलट-पुलट होनी चाहिए ।"[1] उनके वाक्य "लोगो का मन तो हिलने दो, लोगो मे विश्वास तो जमने दो कि अन्दर से भी राज्य बदला जा सकता है। यह देश बडा स्थिर देश है जमा हुआ देश है, बदलता नही, बदलना चाहता नही "[2] मन को झकझोर देने वाले हैं।

यदि उनमे एक ओर वर्तमान के प्रति ध्वसात्मक वृत्ति थी तो दूसरी ओर वर्तमान नैतिक मूल्यो से मेल खाती हुई नवीन व्यवस्था की पहल भी थी। उनके पास एक निश्चित कार्यक्रम था, दर्शन था, आन्दोलन था। उन्होने घोषणा की थी कि 'जनता को गरमाने और उसे दिशा देने वाली नीति से मेल खाता विरोध, चुनाव सघर्ष और दल का शक्तिशाली बनाना ही होगा।"[3] उन्होने अपने कार्यक्रम और पथ के सम्बन्ध मे स्पष्ट किया था कि " पथ अलग है और पथ है सम्भव बराबरी का, यह पथ है मातृ भाषा का, यह पथ है पिछडे समूहों और गरीब इलाको के लिए विशेष अवसर का, यह पथ है शान्ति और विश्व-व्यवस्था का।"[4] उनका कहना था कि "समस्याओ पर सम्मिलित कम का प्रयास करना चाहिए। गरीबी और शोषण, भाषा, जाति, बढते दाम, विदेशी मामले जमी समस्याएँ ली जा सकती हैं।"[5]

डॉ० लोहिया का विश्वास था कि वर्तमान समस्याओ का कारण मानव प्रकृति अथवा कोई चिरस्थायी विश्व-व्यवस्था नही है, अपितु कुछ सामाजिक और राजनैतिक भ्रष्ट सस्थाएँ हैं।[6]

डॉ० लोहिया म अपने द्वारा निर्धारित किए एक समाजवादी कार्यक्रम को कार्य रूप देने का दृढ़ सकल्प था। सिद्धान्तो के साक्षात्कार के लिए उनका विचार था कि समाजवाद के सिद्धान्त को एक दृढ आधार प्रदान करने के साथ कार्य

* * * * *

1—डॉ० लोहिया सरकार से सहयोग और समाजवादी एकता, पृष्ठ 15
2—डॉ० लोहिया समदृष्टि, पृष्ठ 18
3—वही, पृष्ठ 60
4—वही पृष्ठ 1
5—वही पृष्ठ 60
6—Dr Lohia Will To Power p 5 105

के उन कारगर तरीकों या खोज निकालना जिसके द्वारा सिद्धान्त कार्यान्वित किया जा सके, उतना ही आवश्यक है। सारे काम का लक्ष्य जनता की इच्छा को सगठित और व्यक्त करना और राष्ट्रीय जीवन का पुनर्निर्माण होना चाहिए।[1]

डा० लोहिया समाजवादी कार्यक्रम को कार्यान्वित करने की तत्परता व्यक्तियों में उत्पन्न करना चाहते थे। क्योंकि उनका विश्वास था कि बिना क्रान्तिवाद के समाजवाद का सही विज्ञान सम्भव नहीं है। उनके ही शब्दों में 'True science of society is not possible without revolutionism'[2] अतः उनका सन्देश था कि 'जब तक लोगों के मनों को एक साथ हिलाने वाली, कोई अन्दर से निकली हुई तड़प नहीं होती तब तक यह सब काम सफल नहीं हो पाते, और वह तड़प अभी है नहीं वह मन अभी है नहीं। उसको बनाने का काम हमारा पहला काम है।[3]

समाजवाद के मूल उद्देश्य

यदि हम विभिन्न देशों के समाजवादी इतिहास का अवलोकन करें तो हमको और कोई बात उतनी प्रभावित नहीं करती जितनी कि इस आन्दोलन की जीवन शक्ति। अपने को विभिन्न अवस्थाओं तथा प्रकृतियों के अनुरूप बना लेने की शक्ति एवं परिस्थितियों के अनुकूल नवीन रूप धारण कर लेने की तत्परता अत्यन्त ध्यान देने योग्य है। इसलिए आधुनिक युग में दुनिया के हर देश में समाजवाद किसी न किसी रूप में व्यक्त हो रहा है। समाजवाद का मूल आधार मानवता है। मानवतावाद और आदर्शवाद ही समाजवाद की लोकप्रियता का कारण है। आचार्य नरेन्द्र देव ने समाजवाद के ध्येय को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि समाजवाद संसार को आजाद करना चाहता है, व्यक्तित्व के विकास में रुकावट डालने वाले सामाजिक बन्धनों से उसे छुटकारा दिलाना चाहता है। शोषण मुक्त समाज की रचना करके मौजूदा समाज का प्रचलित दासता, विषमता और असहिष्णुता का सदा के लिए दूर करके, समाजवाद, स्वतन्त्रता समता और भ्रातृत्व की वास्तविक स्थापना करना चाहता है।[4] समाजवाद के मुख्य लक्ष्य निम्नलिखित हैं —

१—वर्ग विहीन समाज की स्थापना

२—समाज अथवा राज्य को अधिक महत्व देना

* * * * *

1—सोशलिस्ट पार्टी सिद्धान्त और कार्यक्रम जनवरी 19.6 पृष्ठ 17

2—Dr Lohia *Guiltymen of India's Partition*, p 87

3—डॉ लोहिया समलक्ष्य समबोध पृष्ठ 6

4—आचार्य नरेन्द्र देव राष्ट्रीयता और समाजवाद, पृष्ठ 410

३—उन्नति के अवसरों में समानता
४—पूंजीपतियों का समाप्त करना
५—जमींदारों से भूमि छीनना
६—व्यक्तिगत जाखिम का अन्त करना
७—व्यक्तिगत प्रतिस्पर्द्धा की समाप्ति

१—वर्ग विहीन समाज की स्थापना

आधारभूत रूप में हर समाज में दो ही वर्ग पाये जाते हैं। एक वर्ग साधनों पर एकाधिपत्य रखने वाले मालिकों का है जो शोषक है और दूसरा वर्ग साधनहीन मजदूरों का है जिसको शोषित किया जाता है। इन दोनों आधारभूत वर्गों में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में वर्ग संघर्ष निरन्तर बना रहता है। मार्क्स और एंगल्स ने 'कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणा पत्र' में लिखा है कि "पिछले प्रत्येक समाज का इतिहास वर्ग विरोधों के विकास का इतिहास है उन वर्ग विरोधों का, जिन्होंने भिन्न युगों में भिन्न रूप धारण किया था।'[1] प्राचीन काल में दास और स्वतन्त्र मालिक मध्य युग में सामन्त गण और कृषक तथा आजकल के पूंजीवादी समाज में पूंजीपति और मजदूर इसी प्रकार के आधारभूत वर्ग हैं। इन आधार भूत वर्गों के अतिरिक्त भी समाज में कई प्रकार के वर्ग पाये जाते हैं। परन्तु उन वर्गों का स्वार्थ अन्ततोगत्वा इन्हीं आधार भूत वर्गों में से किसी एक के साथ होता है। समाजवाद इन परस्पर विरोधी शोषक और शोषित वर्गों को समाप्त कर समाज को सहयोग के आधार पर संगठित व्यक्तियों का सच्चा प्रजातन्त्र बनाना चाहता है।[2]

महात्मा गांधी ने लिखा है कि समाजवाद का मतलब है कि समाज के सब अंग समान हैं उसी प्रकार से जैसे कि शरीर के सब अंग। इस वाद में राजा और प्रजा, अमीर और गरीब, मालिक और मजदूर का द्वैत नहीं है। इसलिए समाजवाद अद्वैतवाद का ही दूसरा नाम है।[2] इस अद्वैतवाद का आदर्श न तो आर्थिक एकरूपता स्थापित करना है और न ही सबको एक धंधे वाला बनाना है बल्कि हर व्यक्ति से उसकी योग्यता के अनुसार काम लेकर उसकी आवश्यकतानुसार उपयोग की वस्तुओं का प्रबंध करना है।

२—समाज अथवा राज्य को अधिक महत्व देना

समाजवाद व्यक्ति से समाज को ऊँचा स्थान देता है। यह आत्महितवाद के विरुद्ध सर्वाहितवाद का पक्षपाती है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः'—या वशिष्ठत

* * * * *

1—कार्ल मार्क्स और एंगेल्स संकलित रचनाएं, भाग 1 पृष्ठ 67
2—गांधी जी हरिजन बन्धु 13-3-47 (सम्पदा, पृष्ठ 322 से उद्धृत)

दु:ख भाग भवेत्' का आदर्श समाजवाद में चरितार्थ होता है। समाजवाद व्यक्ति की बलिदान की भावना को समष्टि के लिए जाग्रत करता है। मनुष्य जाति की मजबूती ही समाजवाद है।[1] समाजवाद समाज का एक ऐसा संगठन है जिसमें एक सामान्य योजना के अनुसार, उत्पत्ति के भौतिक साधनों पर समूचे समाज का स्वामित्व होता है और समान अधिकारों के आधार पर समाज के सभी सदस्य *समाजवादी आयोजन के द्वारा किये गये उत्पादन का लाभ प्राप्त करते* हैं। इस प्रकार समाजवाद यह मानकर चलता है कि राज्य सभी के कल्याण के लिए कार्य करता है। *राज्य एक आवश्यक बुराई नहीं है*। समाजवादी व्यवस्था में उत्पत्ति के साधनों का स्वामित्व भी राज्य को सौंप देने पर बल दिया जाता है। इसमें उत्पादन का उद्देश्य लाभ की अपेक्षा जन-कल्याण अधिक रहता है।

३—उन्नति के अवसरों में समानता

समाजवाद दरिद्रता दूर करके गरीबों की आर्थिक और सामाजिक अवस्था को ऊँचा करना चाहता है जिससे कि सामाजिक विषमता इतनी भीषण न रहे। आय की दृष्टि से एक समानता सम्भव नहीं क्योंकि प्रत्येक मनुष्य की कार्य क्षमता, प्रतिभा तथा परिश्रमशीलता एक समान नहीं होती किन्तु यह तो सम्भव है कि ऐसी परिस्थिति उत्पन्न की जाय कि जिसमें कोई व्यक्ति दूसरे का शोषण न कर सके। डा० लोहिया ने केवल आर्थिक समानता की ही चर्चा नहीं की, वे तो सामाजिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक एवं मानसिक सम्भव समानता चाहते थे। उनका कहना था कि "दिमागी बराबरी के बिना भौतिक बराबरी *की नींव बिल्कुल कच्ची रहेगी।"*[2] *जिस प्रकार स्वतन्त्रता व्यक्तिवाद की कुंजी* है वैसे ही समानता समाजवाद की कुंजी है। प्रोफेसर ग्राहम लिखते हैं कि 'समाजवाद का केन्द्र जो इसके सब स्वरूपों में समन्वित रहता है विषमता में कमी करना है।'[3] डि लवि ले ने इसी विचार को व्यक्त करते हुए लिखा है कि 'प्रत्येक सामाजिक सिद्धान्त का उद्देश्य सामाजिक दशाओं में समानता का समावेश करना है। समाजवाद समाज के धरातल का समान तथा समतल करने वाला है।[4]

* * * * *

1—Kelly Twentieth Century Socialism p 237
2—इन्दुमति केलकर लोहिया—सिद्धान्त और कर्म धारा पृष्ठ 348
3—Graham Socialism New and Old p 4
(नं० 1 और 3 अमर नारायण अग्रवाल समाजवाद की रूप-रेखा पृष्ठ 11 और 13 से उद्धृत)
4—E De Lave Laye Socialism of Today p XV
(अमर नारायण अग्रवाल समाजवाद की रूप रेखा, पृष्ठ 13 से उद्धृत)

४—पूंजीपतियों को समाप्त करना

गरीबों पर अत्याचार करना और उन्हें दरिद्र बनाना 'शोषण' कहलाता है। पूंजीपति मजदूरों का शोषण करके व्यक्तिगत सम्पत्ति एकत्र करते हैं और उसे अधिक शोषण करने के लिए प्रयुक्त करते हैं। इसलिए समाजवाद का लक्ष्य उस व्यक्तिगत सम्पत्ति का समाप्त करना है जिससे गरीबों का शोषण किया जा सकता है। व्ला० ई० लेनिन ने स्पष्ट कहा है कि 'समाजवाद का अर्थ है—वर्गों का उन्मूलन। वर्गों को समाप्त करने के लिए सबसे पहले जमींदारों तथा पूंजीपतियों का तख्ता उलटना जरूरी है।'[1]

५—जमींदारों से भूमि छीनना

समाजवाद का विरोध केवल पूंजीपतियों से ही नहीं अपितु जमींदारों से भी है। भूमि परिश्रम से नहीं बनायी जाती, वरन् यह तो ईश्वर का वरदान है। इसलिए भूमि के उपभोग का अधिकार उसमें परिश्रम करने वाले व्यक्तियों को ही होना चाहिए अन्य किसी को नहीं। फ्रांसीसी मजदूर पार्टी की दसवीं कांग्रेस (१८९२) द्वारा पारित प्रस्ताव भूमि सम्बन्धी कर्तव्यों का सतुलित ढंग से स्पष्ट करता है।— 'चूंकि एक ओर जहाँ समाजवाद का यह कर्तव्य है कि बड़ी-बड़ी जमींदारियों को उनके वर्तमान नाकारा स्वामियों के हाथों से छीन कर उन्हें फिर खेतिहर सर्वहारा के स्वामित्व (सामूहिक अथवा सामाजिक रूप के स्वामित्व) में ले आये, वहाँ दूसरी ओर उसका उतना ही अनिवार्य कर्तव्य यह भी है कि जमीन के अपने छोटे छोटे टुकड़ों को जोतने वाले किसानों को माल के महकमे, सूदखोरों तथा नवोदित बड़े-बड़े जमींदारों के अतिक्रमण से बचाकर अपनी जमीनों पर उनका कब्जा बरकरार रखे।'[2] फ्रेडरिक एंगल्स एक पग और जाते हैं और कहते हैं कि 'जब हमारे हाथों में राज्य-सत्ता आयेगी, तब हम बल-पूर्वक छोटे किसानों की सम्पत्ति (बमुआवजा या बिना मुआवजा) छीनने की—जो काम हमें बड़े जमींदारों के मामले में करना पड़ेगा—बात भी नहीं सोचेंगे। छोटे किसानों के सम्बन्ध में हमारा कार्य प्रथमतः उनके निजी उद्यम और निजी स्वामित्व को सहकारी उद्यम और स्वामित्व में अन्तरित करना होगा।'[3] भारतीय सरकार ने जमींदारी उन्मूलन पर मुआवजा भी दिया था, परन्तु डॉ० लोहिया जमींदारों से बिना मुआवजा के जमीन छीन कर जमीन जोतने वाले को दे देना चाहते हैं।[4]

* * * * *

1—व्ला० ई० लेनिन संकलित रचनाएँ खण्ड 3 भाग 1 पृष्ठ 362
2—कार्ल मार्क्स फ्रेडरिक एंगेल्स संकलित रचनाएं भाग 4, पृष्ठ 69
3—वही पृष्ठ 79
4—जन मार्च 19 8, पृष्ठ 31

६—व्यक्तिगत व्यापार का अन्त करना

पूजीवादी प्रणाली के सर्वव्यापी होने के कारण आज संसार भर में पूजीपतियों का बोलबाला हो रहा है। आधुनिक युग की भीषण विषमता का कारण है—उत्पादन, विनिमय और वितरण के साधनों पर चन्द पूजीपतियों का अधिकार। ये पूजीपति ही शोषक हैं जो श्रमिक वर्ग का शोषण कर समाज में वर्ग-संघर्ष की स्थिति उत्पन्न करते हैं। पंडित जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में 'पूजीवाद के कारण एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के द्वारा एक समुदाय का दूसरे समुदाय के द्वारा या एक देश का दूसरे देश के द्वारा शोषण होता है।'[1] समाजवाद शोषण करने वाले व्यक्तिगत व्यापार की समाप्ति कर समाज में शांति और सहयोग का वातावरण स्थापित करना चाहता है। मार्क्स और एंगेल्स ने कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणा पत्र में व्यक्तिगत व्यापार की समाप्ति के सम्बन्ध में स्पष्ट किया है कि "हम श्रम की उपज के उस व्यक्तिगत अधिकार का अन्त नहीं करना चाहते जो मुश्किल से मानव जीवन कायम रखने और प्रजनन के लिए किया जाता है और जिसमें ऐसी बचत की गुन्जाइश नहीं होती जिससे दूसरे के श्रम को वशीभूत किया जा सके। हम जिस चीज को खतम कर देना चाहते हैं वह है इस अधिकरण का वह दयनीय रूप, जिसके अन्तर्गत मजदूर केवल पूजी बढ़ाने के लिए जिन्दा रहता है। और उसे उसी हद तक जिन्दा रहने दिया जाता है जहाँ तक शासक वर्ग के स्वार्थों को उसकी जरूरत होती है।"[2] इस प्रकार समाजवादी व्यवस्था का उद्देश्य है कि कमरा आयेगा लुटेरा जायेगा।'

७—व्यक्तिगत प्रतिस्पर्धा की समाप्ति

पूजीवादी व्यवस्था में व्यक्तिगत लाभ की चेष्टा होती है जिसमें प्रतियोगिता या स्पर्धा बहुत स्वाभाविक होती है। पंडित जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में 'पूजीवाद का हेतु व्यक्तिगत लाभ है और प्रतियोगिता उसका मूल मन्त्र है।'[3] इस हानिकारक प्रतिस्पर्धा के परिणामस्वरूप ही मजदूरों की दशा बहुत दयनीय हो जाती है। मार्क्स और एंगेल्स ने 'कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणा पत्र' में पूजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत मजदूरों की दुखद स्थिति का चित्रण करते हुए लिखा है "ये मजदूर जो अपने को अलग-अलग बेचने के लिए लाचार हैं

* * * * *

1—11 अप्रैल 1928 के नेहरू-भाषण से

2—कार्ल, मार्क्स फ्रेडरिक एंगेल्स संकलित रचनाएँ भाग 1 पृष्ठ 61-62

3—जवाहरलाल नेहरू विश्व इतिहास की झलक पृष्ठ 457

अन्य व्यापारिक माल की तरह खुद भी माल हैं और इसलिए वे होड़ के हर उतार-चढ़ाव तथा बाजार की हर तेजी-मन्दी के शिकार होते हैं।'[1] समाजवाद का उद्देश्य इस स्पर्द्धा को जड़ से उखाड़ फेंकना है। समाजवाद व्यक्तिगत व्यापार को समाप्त करना चाहता है जिसका आवश्यक परिणाम होगा स्पर्धा की इतिश्री और सहयोग का साम्राज्य।

समाजवाद के विभिन्न रूप

समाजवाद का प्रत्येक रूप मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण की समाप्ति चाहता है। परन्तु उनमें अन्तर है मानो का, साधनों का, कार्यक्रमों का दर्शनों का। इन विभिन्न रूपों में गहरे अन्तर का कारण अंशत सैद्धांतिक मत वैषम्य है और अंशत नेताओं की महत्वाकांक्षा। जो कुछ भी हो समाजवाद को पूर्ण रूपेण समझने के लिए समाजवाद के विभिन्न रूपों का अध्ययन आवश्यक है। ये रूप निम्नलिखित हैं —

१—मार्क्सवाद (Marxism)
२—फेबियनवाद (Fabianism)
३—श्रम-संघवाद (Syndicalism)
४—श्रेणी समाजवाद (Guild Socialism)
५—समष्टिवाद (Collectivism)
६—अराजकतावाद (Anarchism)

१—मार्क्सवाद

कार्ल मार्क्स के पूर्ववर्ती समाजवादी सेण्ट साइमन, फोरियर, प्रूदां तथा ओवेन आदि हैं। इनका समाजवाद काल्पनिक कहा जाता है क्योंकि यह इतिहास के किसी दर्शन पर आधारित नहीं था। इन विचारकों ने एक नवीन समाज की रूपरेखा अपने मस्तिष्क से तैयार की जिसका यथार्थ जगत के तथ्यों से कोई सम्बन्ध न था। यह समाजवाद वैज्ञानिक नहीं था। क्योंकि इसके प्रवर्तकों ने यह बताने की चेष्टा नहीं की कि इसकी सृष्टि किस प्रकार की जा सकती है और इसे किस प्रकार कायम रखा जा सकता है। वेपर महोदय ने उचित ही कहा है कि 'उन्होंने सुन्दर गुलाब के फूलों की कल्पना तो की परन्तु गुलाब के वृक्षों के लिए कोई भूमि तैयार नहीं की।'[2] इसलिए काल्पनिक समाजवाद केवल एक ऐतिहासिक विषय मात्र रह गया। उसको व्यावहारिक सफलता

* * * * *

1—कार्ल मार्क्स फ्रेडरिक एंगेल्स संकलित रचनाएँ भाग 1 पृष्ठ 52
2—श्री एम० वेपर राजनीति का स्वाध्ययन पृष्ठ 207

लगभग न के बराबर मिली। कार्ल मार्क्स ही समाजवाद के ऐसे प्रथम लेखक हैं जिन्हें प्रथम वैज्ञानिक कहे जा सकते हैं। उन्होंने केवल आदर्श जगत् का ही वर्णन नहीं किया, वरन् यह भी बताया कि उस आदर्श जगत् का किन किन शक्तियों द्वारा विकास होगा और क्यों होगा और इस विकास का आन्तरिक दर्शन क्या है? मार्क्सवाद के प्रमुख ५ सिद्धान्त हैं —इतिहास की आर्थिक व्याख्या, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, वर्ग-संघर्ष का सिद्धान्त, अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त, सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व।

इतिहास की आर्थिक व्याख्या —मार्क्स के इस सिद्धान्त के अनुसार जीवन के भौतिक साधनों की उत्पादन पद्धति सामाजिक, राजनैतिक तथा बौद्धिक जीवन की सम्पूर्ण प्रक्रिया की स्थिति निर्धारित करती है।[1] मार्क्स विचारों को पदार्थ का प्रतिबिम्ब मात्र मानता है। उसके अनुसार भौतिक परिस्थिति के अनुसार ही मानव के विचार बनते और परिवर्तित होते हैं। अपने इस विश्वास के कारण ही उसने विचार परिवर्तन का नहीं, अपितु भौतिक स्थिति के परिवर्तन का प्रयास किया।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद —हीगेल और मार्क्स का विश्वास है कि सत्य और उन्नति विरोधी तत्वों या प्रवृत्तियों के संघर्ष से ही अनुभूति होते हैं। दोनों में अन्तर केवल यह है कि हीगेल के लिए विकासशील वास्तविकता आत्मा है जबकि मार्क्स के लिए वह पदार्थ। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक वाद अपने प्रतिवाद को जन्म देता है जिससे संघर्ष के पश्चात् सम्वाद की श्रेष्ठतर स्थिति उत्पन्न होती है। कालान्तर में सम्वाद भी वाद में परिवर्तित हो जाता है और अपने प्रतिवाद को जन्म देता है। यही क्रम चलता रहता है। मार्क्स ने इस सिद्धान्त को भौतिक जगत में लागू किया और बताया कि किस प्रकार पूँजीपति अपने विरोधी श्रमिक वर्ग का शोषण करता है उन्हें इकट्ठा करता है क्रान्ति के लिए समस्त साधन देता है और अन्त में उसके द्वारा स्वयं विनष्ट हो जाता है।

वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त —मार्क्स का कहना है कि प्रत्येक युग में अर्थोपार्जन के कोई न कोई प्रमुख साधन होते हैं और जिस वर्ग का अर्थोपार्जन के इन साधनों पर आधिपत्य होता है वही वर्ग समाज में सबसे बलशाली होता है और उसी के हाथों में राजनीतिक शक्ति होती है। दूसरे साधनहीन वर्ग

* * * * *

1—कार्ल मार्क्स : राजनीतिक अर्थशास्त्र की समालोचना की भूमिका में

उनके अधीन होते हैं। मार्क्स के मत मे आज तक विश्व इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास रहा है। प्राचीन काल मे स्वामी और दास, मध्य काल मे सामन्त और कृषक तथा आधुनिक युग मे पूजीपति और सर्वहारा जैसे दो विरोधी वर्ग संघर्षरत हैं। मार्क्स वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त को सामाजिक परिवर्तन का यन्त्र समझता है।

अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त—पूजीवाद के विरुद्ध मार्क्स की समस्त आलोचना का आधार अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त है। यह उत्पादन की पूजीवादी प्रणाली के अन्तर्गत पूजी द्वारा श्रम के शोषण का सिद्धान्त है। इसका मूल उद्देश्य यह दिखाना है कि पूजीपति श्रमिक वर्ग के श्रम पर सुखी रहता है और उसकी सहायता मे उत्पन्न किये हुए धन के अधिकांश भाग से उसे वंचित कर देता है।

सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व—मार्क्स और एंगेल्स ने कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणा पत्र' मे स्पष्ट कहा है कि पूजीपति ने ऐसे हथियारों को ही नही गढा है जो उसका अन्त कर देंगे, वल्कि उसने ऐसे व्यक्तियो को भी उत्पन्न किया है जो इन हथियारो का प्रयोग करेंगे। ये व्यक्ति आज के मजदूर ही हैं।[1] इनका उद्देश्य अपने को एक वर्ग के रूप मे सगठित करना, पूँजीवादी प्रभुत्व का तख्ता पलटना और राजनीतिक सत्ता पर अपना अधिकार जमाना है। इस हेतु उनका कार्य-क्रम हिंसात्मक और क्रान्तिकारी है। सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व एक सक्रान्ति काल है जिसमे पूजीवाद के ध्वसावशेषो को समाप्त करने के लिए श्रमजीवी वर्ग की तानाशाही स्थापित की जाती है। ऐसी स्थिति में ही वर्ग विहीन और राज्य विहीन समाज की स्थापना होगी जिसमे प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यतानुसार धन का उत्पादन करेगा और उसे आवश्यकतानुसार प्राप्त हो सकेगा।

२—फेबियनवाद

फेबियनवाद का जन्म जनवरी ४ सन् १८८४ ई० मे इंगलण्ड की फेबियन सोसाइटी के जन्म के साथ हुआ। फेबियनवाद का विश्वास है कि क्रान्तिकारी हिंसात्मक कार्यक्रम भद्दा एवं अमानवीय है।[2] यह संवैधानिक तरीका मे आस्था रखता है। फेबियनवादी राजनीतिक संस्थाओ का पूर्ण उपयोग करने, अधिका-

* * * * *

1—कार्ल मार्क्स फैडरिक एंगेल्स सकलित रचनाएँ भाग 2, पृष्ठ 219

2 G B Shaw Readings in Recent Political Philosophy (Edited by M Spahr), p 436

राजनतिक क्षेत्र मे प्रजातन्त्र सम्भव नही है जब तक कि आर्थिक क्षेत्र म प्रजातन्त्र न हो। इसलिए यदि जनतान्त्रिक ढग से उद्योग सगठित हो जाय तो समाज का जनतान्त्रिक सगठन स्वत ही स्थापित हो जाएगा। श्रेणी समाजवादी सत्ता के केन्द्रीकरण को हानिकर मानते हैं। इसलिए वे स्थानीय सस्थाओ के विकास तथा व्यवस्था पर अधिक बल देते हैं।

श्रेणी समाजवादी अपने अभीष्ट को प्राप्त करने के तरीकों मे एक मत नही हैं। डा० सम्पूर्णानन्द के शब्दो मे "कुछ लाग कहते हैं कि उस अन्तिम अवस्था मे वध उपाया से ही शेष स्वत्व श्रमिको के हाथ मे आ जाएँगे, दूसरे लोगो का विचार है कि अनुकूल स्थिति मे क्रान्तिमय उपाया म काम लेना होगा और उनके लिए अभी स तयारी करनी चाहिए।'[1] कुछ श्रेणी समाजवादी 'सीधे उपाया' का पक्ष लेते हैं परन्तु कोल का मत है कि शाघ्रता से क्रान्ति लाना हमारा उद्देश्य नही है। हमारा उद्देश्य है—विकासवाद के माग द्वारा उन सब शक्तियो को दृढ करना जिससे आनेवाली क्रान्ति गृह युद्ध न होकर समाज मे क्रियाशील वत्तियो का एक अन्तिम परिणाम व प्राप्त तथ्य सी मालूम हो।'[2]

समालोचना के लिए मध्यकालीन श्रेणी-व्यवस्था क कार्यान्वयन की असम्भाव्यता राज्य के काय क्षेत्र का सकुचन, व्यावसायिक प्रतिनिधित्व योजना की अव्यावहारिकता, पृथक पृथक श्रेणिया द्वारा स्वशासन की अनभिज्ञता अधिकाश विषयों पर उनमे मतक्य न होना आदि तक श्रेणी समाजवाद के विरुद्ध दिये जा सकते हैं। परन्तु इस तथ्य का भी अस्वीकार नही किया जा सकता कि श्रेणी समाजवादिया द्वारा औद्योगिक कार्यों को प्रभावशाली ढग से प्रस्तुत करना समष्टिवाद मे बढने वाली नौकरशाही के खतरो के प्रति ध्यान दिलाना कल कारखाना एव उद्योगो के प्रबन्ध म मजदूरो द्वारा भाग लेने की वाछनीयता पर बल दना और उद्योगा तथा राजनीति म व्यावसायिक प्रतिनिधित्व प्रारभ करन का मूल्यवान सुझाव देना समाजवादी काय क्रमो के लिए कितना अधिक महत्वपूण था।

५—समष्टिवाद

'समष्टिवाद' के मूलभूत आधार जमन समाजवाद' तथा अग्रेजी 'फबियनवाद' हैं। समष्टिवाद को राज्य समाजवाद तथा लाकतान्त्रिक समाज

* * * * *

1—डॉ० सम्पूर्णानन्द समाजवाद पृष्ठ 295

2—G D H Cole Guild Socialism Restated p 183 187 206

वाद भी कहते हैं। क्योंकि यह वाद लोकतान्त्रिक ढंग से भूमि तथा उद्योग पर व्यक्तिगत स्वामित्व को नष्ट करके उन्हें राज्य के अधिकार में लाना चाहता है। 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' में इसकी परिभाषा देते हुए लिखा गया है कि "यह वह नीति अथवा सिद्धान्त है जो केन्द्रीय प्रजातान्त्रिक सत्ता द्वारा आजकल की अपेक्षा श्रेष्ठतम वितरण तथा उसके अधीन श्रेष्ठतम उत्पादन की व्यवस्था करना चाहता है।"[1]

समष्टिवाद का प्रमुख ध्येय भूमि, खनिज पदार्थ तथा उद्योग धन्धों में व्यक्तिगत अधिकार को समाप्त कर सम्पूर्ण समाज का स्वामित्व स्थापित करना है, जिससे उत्पादन के साधनों का प्रयोग व्यक्तिगत लाभ के लिए न होकर सामाजिक हित के लिए हो। इस प्रकार समष्टिवाद राज्य के कार्य क्षेत्र में वृद्धि करना चाहता है किन्तु व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए विकेन्द्रीकरण और स्थानीय संस्थाओं की स्वायत्तता पर भी बल देता है। समष्टिवाद पूंजीवाद तथा साम्राज्यवाद का विरोध करता है। वह सामाजिक समानता में विश्वास करता है और हर प्रकार के भेद भाव को समाप्त करना चाहता है।

६—अराजकतावाद

'अराजकतावाद' शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक शब्द 'अनार्किया' (Anarchia) से हुई है जिसका अर्थ है—'शासन का अभाव।'[1] अतः अराजकतावाद एक क्रान्तिकारी विचारधारा है जो राज्य तथा राजकीय शासन का उन्मूलन कर उसके स्थान पर एक राज्यहीन तथा वर्गहीन समाज का पुनर्गठन चाहती है। क्रोपोटकिन बाकुनिन प्रोधां थ्रूगो टालस्टाय, विलियम गाडविन आदि प्रमुख अराजकतावादी हैं। अराजकतावादी विचारक राज्य की कड़ी भर्त्सना करते हैं। उनके अनुसार राज्य द्वारा स्थापित पुलिस जेल न्याय आदि विभाग निर्दोष व्यक्ति को दोषी चरित्रवान् को चरित्रहीन ईमानदार को बेईमान बनाकर समाज में शोषण, अन्याय, असमानता अत्याचार आदि की वृद्धि करते हैं। इसलिए वे अराजकतावादी समाज में सम्प्रभुता, मालिक अथवा राज्य की अनुपस्थिति चाहते हैं। अराजकतावाद राज्य के साथ वैयक्तिक सम्पत्ति का भी उन्मूलन चाहता है। मेरे-तेरे के भाव की समाप्ति ही इसका उद्देश्य है।[2] साम्यवादियों के समान अराजकतावाद ने भी धार्मिक

* * * * *

1—Quoted from Modern Pol Theory (by C E M Joad) p 54
2—Kropotkin The Conquest of Bread, p 9

पाखंडा को मानव के निर्दयतापूर्वक शोषण का यन्त्र माना। अराजकतावादी प्रतिनिधि सरकार की कठोर आलोचना करते हैं। उनके अनुसार चुनाव तथा प्रतिनिधित्व प्रदर्शनमात्र है।

अराजकतावाद संघों में संगठित एवं विकेन्द्रित समाज स्थापित करना चाहता है। उसके मतानुसार अराजकतावादी व्यवस्था मे राज्य अथवा बल का अभाव होगा न कि व्यवस्था का अभाव। राज्य का स्थान यहाँ पर ऐच्छिक संघ ले लेंगे जिनका गठन प्रादेशिक अथवा व्यावसायिक आधार पर होगा। इन संघो का विकास सरलता से जटिलता की ओर होगा। और छोटे से छोटा संघ भी वह आधार होगा जिस पर सम्पूर्ण व्यवस्था आश्रित होगी। इस प्रकार अराजकतावाद प्रादेशिक एवं व्यावसायिक विकेन्द्रीकरण पर अधिक बल देता है। अराजकतावादियो के मतानुसार राज्य की सेनाएँ वाह्य आक्रमण को रोकने म असमर्थ रही हैं तथा नागरिक सेनाओ से हारी हैं। इसलिए उनके स्थान पर सम्पूर्ण समाज संयुक्त होकर सफलता पूर्वक अराजकतावादी समाज की सुरक्षा करेगा। वे आकस्मिक विशेष कार्यों के लिए अस्थायी समुदायो का गठन करने के पक्ष मे हैं।

अराजकतावाद श्रेणी समाजवादी तथा बहुलवादी विचार धारा से प्रभावित हैं। मानव स्वभाव की एकांगी धारणा आदर्श समाज की अयथार्थवादी कल्पना, राज्य की पूर्ण समाप्ति का ध्येय तथा उनके हिंसात्मक ढंग निश्चित ही आलोचना के विषय हैं। परन्तु व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर बल, विकेन्द्रीकरण का समर्थन, ऐच्छिक समुदायो के पारस्परिक सहयोग का विचार आदि अराजकतावाद के ऐसे महत्वपूर्ण विचार हैं जो आज के विश्व को सुख समृद्धि और शान्ति दे सकते हैं।

भारत मे समाजवाद

वैज्ञानिक समाजवाद का प्रारंभ काल मार्क्स से होता है, परन्तु यदि समाजवादी भावना की दृष्टि से हम प्राचीन भारत पर दृष्टिपात करें तो मालूम होता है कि लोक-कल्याण की पवित्र भावना हमारे देश म बहुत पुरानी है। ऋग्वेद (१०/१९१/२) म कहा गया है

"संगच्छध्वं संवदध्वं स वो मानांसि जायताम्।"[1]

* * * * *

1—'हमारे मे संगति संवाद और सहमति हो'

लोक मगल कामना का जो रूप हमे उपनिषद् के निम्न मत्र मे मिलता है, वसा विश्व के किसी अन्य धार्मिक ग्रन्थो में शायद ही मिले।

> "सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया
> सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुख भाग्भवेत।"[2]

ऐसी ही शुभकामना व्यक्त करते हुए महाकवि कालिदास न लिखा है —

> सवस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।
> सव सवमवाप्नोतु सव सवत्र नन्तु।[3]

राम राज्य का जो वणन रामायण' और 'रामचरित मानस' म मिलता है वह उपर्युक्त सव मगल भावना का ही साकार रूप है। मान्धाता, भरत आदि प्राचीन चक्रवर्ती सम्राटो न और युधिष्ठिर, परीक्षित आदि परवर्ती सम्राटों न हर क्षण प्रजा के सुख दुख का ध्यान रखा था। प्राचीन इतिहास म अशोक चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य आदि राजाओ ने तो मानो राजतन्त्र के ढाचे मे समाजवाद ही उतार दिया था। आधुनिक युग में महात्मा गाधी तथा विनोबा भावे ने इसी सव मगल या सर्वोदय के प्रवतन का प्रयत्न किया है। इस प्रकार भारत मे वदिक काल से आज तक सर्वोदय या सच्चे समाजवाद की प्रतिष्ठा के लिए सदा ही प्रयत्न होता रहा है।

उपर्युक्त समाजवाद की धारणा अध्यात्म और सत्य पर प्रतिष्ठित है। इस मौलिक समाजवाद मे सच्ची आध्यात्मिक चेतना प्राप्त करने के लिए निर्गुण सगुण की पूजा निष्काम कम, ज्ञान आदि साधन मान गये हैं जिनके सम्यग नुष्ठान से समत्व बुद्धि प्राप्त होती है। इस समाजवाद का लक्ष्य था अनासक्ति और अपरिग्रह। किन्तु जब स भारतीय समाजवाद पर मार्क्स का प्रभाव पडा, इसका उद्देश्य जनशक्ति या विधि द्वारा सम्पत्ति की सस्था को समाप्त करन का हो गया। डॉ० लोहिया न उचित ही लिखा है कि 'समाजवादी आन्दोलन की शुरुआत भारत म और दुनिया म एक अथ मे तो बहुत पहले हो जाती है। वह अथ है अनासक्ति का, मिल्कियत और ऐसी चीजो के प्रति लगाव खत्म करने या कम करने का, मोह घटाने का। किन्तु जब से समाजवाद के ऊपर काल मार्क्स की छाप पडी, तब से एक दूसरा अथ ज्यादा सामने आ गया। वह

* * * * *

2—सभी सुखी और नीरोग हों सभी शुभ का दर्शन करें और किसी को भी दुःख न हो।
3—सभी संकटों को पार कर लें सभी मंगल का दर्शन करें, सभी यथेष्ट लाभ करें सभी सर्वत्र सुखी हों।

है सम्पत्ति की संस्था को खत्म करने का, सम्पत्ति रहे ही नहीं, चाहे कानून से चाहे जनशक्ति से।"[1]

इस प्रकार भारत के समाजवाद को दो भागों में बाँट सकते हैं—एक है प्राचीन भारतीय समाजवाद, दूसरा है आधुनिक भारतीय समाजवादी आन्दोलन या डाक्टर लोहिया के शब्दों में 'असली समाजवादी धारा" जिसका प्रारंभ सन् १९३४ ई० में हुआ। आधुनिक भारतीय समाजवादी आन्दोलन को पुनः चार युगों में बाँट सकते हैं।

प्रथम युग सन् १९३४ ई० से सन् १९४६ ई० तक का है। समाजवादी मनोवृत्ति के कुछ राजनीतिज्ञों ने समाजवादी समुदायों को बिहार, नासिक, उत्तर प्रदेश और बम्बई प्रान्तों में संगठित किया, जिसके परिणामस्वरूप कांग्रेस समाजवादी दल का निर्माण हुआ। कांग्रेस समाजवादी दल के प्रमुख प्रतिपादक सर्वश्री जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, अशोक मेहता, आचार्य नरेन्द्र देव, अच्युत पटवर्धन, एम० आर० मसानी, कमला देवी, पुरुषोत्तम त्रिकम दास, यूसुफ मेहर अली और गंगाशरण सिन्हा थे। अखिल भारतीय कांग्रेस समाजवादी दल के १५ उद्देश्य थे जिनमें उत्पादकों को समस्त सत्ता हस्तांतरित करना, मुख्य उद्योग धन्धों का समाजीकरण, विदेशी व्यापार पर शासन का पूर्णाधिकार, बिना क्षतिपूर्ति के राजाओं, जमींदारों तथा अन्य शोषकों की समाप्ति, कृषकों में भूमि का पुनर्वितरण, सहकारी और सामूहिक कृषि को प्रोत्साहन, कृषकों एवं श्रमिकों के ऋण को कम करना, स्त्री पुरुष में समानता आदि प्रमुख थे।[2] किसान सभा, व्यापारी संघ तथा नवयुवक आन्दोलन को इस दल ने राष्ट्रीय संघर्ष की ओर आकृष्ट किया तथा दूसरी ओर कांग्रेस को भी कृषक कार्यक्रम आदि के लिए तैयार किया। इस युग को डा० लोहिया ने 'अदरखी जमाना या मिरच गुट' कह कर पुकारा है, क्योंकि इस युग में कांग्रेस समाजवादी दल अपने स्वरूप में अधिक क्रान्तिकारी था और यह दल कांग्रेस के अन्दर एक गरम दल का कार्य करता था। डॉ० लोहिया के शब्दों में यह 'जरा गरमी लाने वाला, कुछ थोड़ा सा आगे जाने वाला, कुछ ज्यादा तीव्रता से या पनपन से काम करने वाला' गुट था।[3]

समाजवादी आन्दोलन का द्वितीय युग सन् १९४७ ई० से सन् १९५१ ई० तक का है। सन् १९४७ ई० के कानपुर अधिवेशन में कांग्रेस समाजवादी दल

* * * * *

1—डॉ लोहिया : समाजवादी आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ 1

2—श्री जयप्रकाश नारायण : संघर्ष की ओर (शिवप्रकाश आगरा), पृष्ठ 108

3—डॉ लोहिया : समाजवादी आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ 2

काग्रेस से पृथक हो गया और इसने सामाजिक स्वतन्त्रता एव समानता के लिए काय प्रारभ कर दिया। लाभ रहित कृषि पर से भू राजस्व की समाप्ति, श्रमिको के लिए उचित वेतन, मूल्य स्थिरता अग्रेजी भाषा का निष्कासन आदि ही इस दल के प्रमुख ध्येय थे। इस हेतु इसने विभिन्न स्थानो पर जन प्रदशन किये। यद्यपि इस दल ने इस युग मे जनवाणी दिवस और जन प्रदशन की धूम मचा दी, तथापि यह दल समाजवादी आन्दोलन की प्रगति के लिए कोई ठोस और स्थायी काय करने म असमथ रहा क्योकि सदस्य बनाना, समिति निर्मित करने, विचार बैठक चलाने अथवा अन्य शक्ति-वधक काय करने मे इसने अधिक रुचि नही दिखाई। इसी कारण डा० लोहिया ने इस युग को 'उफानवाला, दिखावटी ताकत का' युग कहा है।[1] यह तथ्य ही सन् १९५२ ई० के आम चुनाव म इसकी पराजय का कारण था।

समाजवादी आन्दोलन का तृतीय युग सन् १९५२ ई० से सन् १९५५ ई० तक का है। इस युग को डॉ० लोहिया ने 'एक तोड और तनाव का युग, आपस म खीचा-तानी या मोड युग कहा है।'[2] समाजवादी दल के प्रयास से इस दल म किसान मजदूर प्रजा पार्टी का विलयन हुआ और फलस्वरूप प्रजा समाजवादी दल का जन्म हुआ। इस नवीन दल ने अपनी आस्था शान्तिमय साधना मे व्यक्त की। आर्थिक, सामाजिक और राजनतिक शोषण से मुक्त जन तान्त्रिक समाज ही इसका ध्येय था। बहुलवादियो की तरह चौखम्भा राज्य का आदश इस दल ने रखा। लघु उद्योग धधे और विकेन्द्रीकरण इस दल के प्रमुख लक्ष्य थे। इस युग मे इस दल ने कृषको और मौलिक अधिकारो को लेकर अनेक सघष किये। सन् १९५४ ई० मे उत्तर प्रदेश के १३ जिला म नहर रेट की वृद्धि के विरुद्ध इस दल ने सविनय अवज्ञा की। इधर आवाडी काग्रेस अधिवेशन (सन् १९५४ ई०) की समाजवादी नीति का अशोक मेहता आदि प्रजा समाजवादियों ने स्वागत किया। फलत दल की फूट के कारण डा० लोहिया न हैदराबाद सम्मेलन मे ३१ दिसम्बर सन् १९५५ ई० को नवीन दल (सोशलिस्ट पार्टी) का निर्माण किया।

समाजवादी आन्दोलन का चतुथ युग सन् १९५६ ई० स आज तक का है। इस युग म डॉ० लोहिया के निर्देशन म समाजवादी आन्दोलन ने अधिक पुष्ट ढग स काग्रेस विरोधी नीति प्रारम्भ की। इसन ससदीय राजनीति की अपेक्षा

* * * * *

1—डॉ० लोहिया समाजवादी आन्दोलन का इतिहास पृष्ठ 2
2—वही, पृष्ठ 2

संसद के बाहर की राजनीति को सक्रिय किया। इसने सत्याग्रह, प्रदर्शन आदि को संघर्ष का मुख्य साधन माना और समाजवादी सिद्धान्तों का टोस रूप दिया। इसी कारण इस युग को डॉ० लोहिया ने 'क्रान्तिकारी युग'[1] कहा है। डॉ० एल० पी० सिन्हा ने भी लिखा है "The new group took a more pronounced anti Congress stance and favoured development of the extra-parliamentary path of struggles like Satyagrah, demonstrations etc in a much more virile form"[2]

इस युग में इसने समाजवादी एकता का भी प्रयास किया जिसके परिणाम स्वरूप २९ जनवरी सन १९६४ ई० म प्रजा समाजवादी दल और समाजवादी दल का विलयन हुआ और एक संयुक्त समाजवादी दल का निर्माण हुआ, परन्तु अंशतः वैयक्तिक और अंशतः सैद्धान्तिक मतभेद के कारण पुनः उसी वर्ष संयुक्त समाजवादी दल से प्रजा समाजवादी दल पृथक् हो गया। अभी सन् १९६१ ई० के आम चुनाव के निराशाजनक परिणामों के कारण ९ अगस्त सन् १९७१ ई० को दोनों दलों के विलयन ने समाजवादी दल को जन्म दिया है। यहाँ यह बताने की आवश्यकता नहीं कि यह दल सिद्धान्त में डॉ० लोहिया की नीतियों को स्वीकार करता है। अब देखना है कि यह दल इन नीतियों को कहाँ तक कार्यान्वित कराने में सफल होता है।

आज भारत के अधिकांश दलों की नीतियाँ समाजवादी हैं। इन दलों में से एक भारतीय साम्यवादी दल भी है। भारतीय साम्यवादी दल का विचार है कि भारत साम्यवाद के लिए इस समय परिपक्व नहीं है। अतः सन् १९५८ ई० के अमृतसर अधिवेशन से इसकी यह मान्यता रही है कि जनतान्त्रिक साधनों से भारत में समाजवाद की स्थापना सम्भव है। विदेशी एकाधिपत्य से भारतीय साधनों के शोषण की समाप्ति, भूमि जोतने वालों को भूमि का शीघ्र हस्तान्तरण, एकाधिपत्य म अभाव, सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार, एक दृढ़ कीमत-नीति करों की अधिक न्यायपूर्ण नीति श्रमिकों के लिए जीवित पारिश्रमिक, अल्प संख्यकों के अधिकारों की रक्षा, राष्ट्रीय एकता का विकास, जनतन्त्र का विस्तार तथा उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष ही इस दल के प्रमुख उद्देश्य हैं। विदेशी एकाधिपत्य के सभी उद्योगों के शीघ्र राष्ट्रीयकरण का तो यह दल पक्ष लेता ही है साथ साथ भारतीय व्यक्तिगत उद्योग जैसे कोयला

* * * * *

1—डॉ लोहिया समाजवादी आन्दोलन का इतिहास पृष्ठ 3
2—The Indian Journal of Political Science Vol 31, p 10

खदान, तेल, पेट्रोल आदि का राज्य द्वारा तुरन्त लिये जाने का समथन करता है। यह बकों के राष्ट्रीयकरण को उचित समझता है तथा भू-राजस्व की समाप्ति के लिए माँग करता है। यह राज्य को अधिक शक्ति देने के पक्ष मे है। इस दल का मत है कि शान्ति, तटस्थता तथा उपनिवेशवाद के विरोध पर ही वदेशिक नीति आधारित होनी चाहिए। इसे डगमगाहट या हिचकिचाहट की समझौतावादी नीति पसन्द नही।

भारत का एक अन्य समाजवादी दल भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी) है, जिसके अपने कुछ अधिक क्रान्तिकारी लक्ष्य हैं। इन लक्ष्यो मे प्रमुख हैं— बकों तथा उद्योगो का राष्ट्रीयकरण अमेरिकी सहायता का बहिष्कार, विदेशी पूँजी का राष्ट्रीयकरण सभी नागरिको को समानाधिकार, अधिवासी क्षेत्रों म सम्भागीय स्वायत्तता, धर्मनिरपेक्ष राज्य की प्रत्याभूति सभी भाषाओं की समानता सेकेन्डरी स्तर तक नि शुल्क तथा अनिवाय शिक्षा, जमींदारो से भूमि छीनना और कृषको तथा श्रमिको म उसका वितरण, कृषको पर के ऋणो को रद्द करना, भूमि-कर की समाप्ति, वतमान पूँजीवादी तथा सामन्तवादी राज्य के स्थान पर सर्वहारा के नेतृत्व म जनतान्त्रिक राज्य की स्थापना, उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद के विरोध पर और स्वतन्त्रता के लिए किय जान वाले सघर्षों के पक्ष पर आधारित विदेश नीति आदि।

काग्रेस दल ने भी आवाडी अधिवेशन (सन १९५४ ई०) मे 'समाज का समाजवादी ढाँचा' को अपना लक्ष्य घोषित किया। तदनुकूल भारतीय लोक सभा ने भी २० दिसम्बर सन् १९५४ ई० को प्रस्ताव पारित किया जिसमे अन्य बातो के साथ कहा गया था कि 'हमारी आर्थिक नीति का ध्येय समाज वादी ढाँचे पर समाज का गठन करना है, और इस उद्देश्य को प्राप्त करने के हेतु देश की आर्थिक गतिविधि और विशेष कर साधारण औद्योगिक विकास गति को अधिक से अधिक तीव्र करना होगा।[1] इस प्रस्ताव का पचवर्षीय योजना मे कार्यान्वित किया गया और तब से निरन्तर काग्रेस समाजवादी कायक्रमो म व्यस्त है। सामन्ती शोषण स कृषको की मुक्ति पचायतो के विकास, सावजनिक क्षेत्रा के विकास निजी क्षत्र के नियत्रण बकों तथा जीवन बीमा निगम क राष्ट्रीयकरण, राजाओ की थली और विशेषाधिकार का समाप्ति, सहकारिता और सामुदायिक विकास की योजनाओ के विस्तार, कृषि मे सहकारिता गहरी व विस्तृत कृषि कायक्रम की योजना तथा हरित् क्रान्ति

* * * * *

1—सम्पदा जुलाई-अगस्त 19.0, पृष्ठ 331

आदि का श्रेय कांग्रेस का ही है। विडम्बना यही है कि उसके लक्ष्य के विपरीत भारत में निरन्तर शक्ति का केन्द्रीकरण होता जा रहा है।

भारतीय समाजवाद के लक्ष्यों में से एक लक्ष्य विकेन्द्रीकरण का भी है। हम आज इस लक्ष्य के विपरीत जा रहे हैं। डी० आर० गाडगिल ने उचित ही लिखा था, 'विकेन्द्रीकरण के स्थान पर सत्ता के केन्द्रीकरण में वृद्धि हुई है।[1] भूतपूर्व शिक्षा मन्त्री डा० वी० के० आर० वी० राव ने स्वयं स्वीकार किया है कि समाजवादी समाज के लिए आयोजन की व्यूह रचना और तकनीकी में मूल तत्व का अभाव रहा है।'[2]

इस प्रकार भारतीय पृष्ठभूमि में समाजवाद की समीक्षा करते हुए हम कह सकते हैं कि सामन्ती शोषण का अन्त, तीव्र औद्योगीकरण, सहकारिता का विकास, पंचायती राज्य, बैंकों का राष्ट्रीयकरण, राजाओं के विशेषाधिकारों की समाप्ति और योजना सम्बन्धी कार्य तो अपने देश में हुए हैं किन्तु समाजवाद के मूल तत्वों की ओर ध्यान नहीं दिया गया है। बेकारी, बढ़ती कीमतें, मुनाफे, गरीबी, जनसंख्या, अन्नाभाव तथा असमानता की समस्याएँ अब भी विद्यमान हैं। इस दुर्भाग्य का प्रमुख कारण यह है कि अपने देश में समाजवाद के रूप और सिद्धान्त को लेकर अजीब धुंधलापन छाया हुआ है। इसके साथ ही स्वार्थपरता, प्रशासन में ढीलापन, खींचा तानी, जातिवाद, क्षेत्रवाद और पद लिप्सा जैसी कुत्सित धारणाएँ अपनी जड़ें जमाये हैं। यदि देश में वास्तविक समाजवाद स्थापित करना है तो पहले समाज के नेताओं को स्वयं अपने चरित्र द्वारा ऊँचा आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए। समाजवाद को व्यर्थ में बदनाम करने की आवश्यकता नहीं है। समाजवादी बुरे हो सकते हैं, किन्तु समाजवाद नहीं। सबसे प्रधान आवश्यकता शासन में न्यायपूर्ण और जनहित के लिए आवश्यक कार्य प्रणाली और शासन कुशलता की है। आजकल भी जिन सिद्धान्तों और कार्य क्रमों की आवश्यकता है डा० लोहिया ने अपनी मौलिक दृष्टि उन सब पर डाली है। अब हम डॉ० लोहिया के समाजवादी दर्शन का अध्ययन करेंगे जिसकी प्रथम कड़ी उनकी सामाजिक साधना है और यह ही ग्रन्थ के अगले अध्याय का विषय है।

* * * * *

1—सम्पदा, जुलाई-अगस्त 1970 (अशोक प्रकाशन मन्दिर, दिल्ली) पृष्ठ 317
2—वही, पृष्ठ 317

अध्याय ३

डॉ० लोहिया की सामाजिक साधना

डॉ० लोहिया की सामाजिक साधना के अध्ययन के पूर्व यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि समाजवाद का सामाजिक समता से अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। समाजवाद मुख्य रूप से न तो सम्पत्ति का सिद्धान्त है और न राज्य का। यह आर्थिक नीतियों से ऊपर एक जीवन दर्शन है जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समता एवं सम्पन्नता का सिद्धान्त है। कोई सच्चा समाजवादी केवल आर्थिक सुधारों से ही सतुष्ट नहीं होता, वह अपनी एक विशिष्ट शैक्षणिक, नैतिक एवं सौन्दर्य शास्त्रीय नीति का भी प्रतिपादन करता है। जैसा कि आस्कर जास्जी ने लिखा है —

'No true socialist is satisfied with merely economic reforms but advocates also distinct educational, ethical and aesthetic policy'[1]

डा० लोहिया इसी कोटि के समाजवादी थे। उन्होंने वर्तमान समाज व्यवस्था के आर्थिक ही नहीं, अपितु सामाजिक राजनीतिक एवं धार्मिक पहलुओं पर भी भीषण प्रहार किया है और प्रत्येक पहलू के लिए एक विशिष्ट नीति का प्रतिपादन किया है। उनका कहना था कि 'समाजवाद का अगर एक अंग ले लिया जाता है जैसे वामपंथी राष्ट्रीयता या जैसे वामपंथी आर्थिकता, तो समाजवाद खंडित रह जाता है अधूरा रह जाता है। समाजवाद के अंग या मतलब कई हैं। मोटी तरह से मैं कुछ गिनाये देता हूँ वामपंथी राष्ट्रीयता, उग्रपंथी आर्थिकता तीसरे उग्रपंथी धार्मिकता, चौथे उग्रपंथी सामाजिकता पाँचवें उग्रपंथी राजनीतिकता।"[2] अन्य समताओं की अपेक्षा डॉ० लोहिया ने सामाजिक समता का प्रतिपादन अधिक सशक्त ढंग से किया। सामाजिक विषमताओं में जाति प्रथा, नर-नारी असमानता, अस्पृश्यता, रंग भेद-नीति और साम्प्रदायिकता आदि ने उनका ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया। अब हम इन्हीं सामाजिक विषमताओं के संदर्भ में डॉ० लोहिया की सामाजिक साधना का अध्ययन करेंगे।

* * * * *

1—Encyclopaedia of Social Sciences Vol 13 14 p 188
2—डॉ० लोहिया भारत में समाजवाद पृष्ठ 16

जाति प्रथा उन्मूलन

भारतवर्ष में जितनी भी सामाजिक विषमताएं हैं उनमें जाति प्रथा सर्वाधिक विनाशकारी है। जब तक जाति प्रथा समूल विनष्ट नहीं की जाती, तब तक समाजवाद सम्भव नहीं क्योंकि आर्थिक और सामाजिक समता समाजवाद के प्रधान लक्ष्य हैं। आर्थिक गैर बराबरी और जाति पाँति जुड़वाँ राक्षस हैं और अगर एक से लड़ना है तो दूसरे से भी लड़ना जरूरी है।'[1] जाति प्रथा पिछड़ी और दबी हुई जातियों को आध्यात्मिक समता से वंचित रखती है और जितना कि वह उन्हें आध्यात्मिक समता से वंचित रखती है उतना ही वह उन्हें सामाजिक और आर्थिक समता में भी वंचित कर देगी। डॉ० लोहिया की मान्यता थी कि कर्म की प्रतिष्ठा होनी चाहिए न कि जन्म की। जन्म के आधार पर किसी ब्राह्मण के चरण-स्पर्श का तात्पर्य होता है जाति प्रथा, गरीबी और दुःख दर्द को बनाये रखने की प्रत्याभूति। क्योंकि "जिनके हाथ सार्वजनिक रूप से ब्राह्मणों के पैर धो सकते हैं उसके पैर शूद्र और हरिजन को ठोकर भी तो मार सकते हैं।"[2] जहाँ शूद्र हरिजन तथा अन्य गरीब समूहों को ठोकर मारने की स्थिति हो वहाँ समाजवाद की कल्पना निरर्थक है। इस प्रकार समाजवाद स्थापित करने के लिए जितना आवश्यक वर्ग उन्मूलन है उतना ही जाति उन्मूलन।

जाति प्रथा और भारत का पतन —जाति को डॉ० लोहिया ने 'एक जड़ वर्ग' के रूप में परिभाषित किया है क्योंकि जाति में इतनी जकड़न होती है कि एक जाति का व्यक्ति दूसरी जाति में प्रवेश के लिए असमर्थ बना दिया जाता है। इस जाति पाश के कारण भारत का समग्र जीवन निष्प्राण हो गया है। भारत का व्यक्ति हिन्दू मुसलमान सिख और ईसाई के नाम पर विभाजित है। हिन्दू ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य शूद्र जातियों में विभाजित तो हैं ही, साथ साथ इन जातियों में भी उप जातियाँ हैं। ये समस्त उप जातियाँ यहाँ तक विभाजित हैं कि वे एक दूसरे के साथ शादी विवाह, खान पान अथवा अन्य सम्बन्ध करना अपना अपमान समझती हैं। डॉ० लोहिया के शब्दों में "जीवन के बड़े बड़े तथ्य जन्म, मृत्यु शादी ब्याह भोज और अन्य सभी रस्में जाति के चौखटे में ही होती हैं। एस मौका पर दूसरी जातियों के लोग किनारे पर

* * * * *

1—डॉ० लोहिया जाति प्रथा पृष्ठ 18
2—वही, पृष्ठ 3

रहते हैं अलग और जसे वे तमाशगीर हो।"[1] इस प्रकार सम्पूण भारत जातिवाद के चगुल मे पडा कराह रहा है।

डॉ० लोहिया के मतानुसार ब्राह्मणी सस्कृति और ब्राह्मणवाद सामन्तवाद और पूजीवाद का पोषक तथा जनक है।[2] अत जब तक यहाँ ब्राह्मण और बनियावाद का मूलाच्छेदन नही होता है, समाजवाद की कल्पना केवल स्वप्न की वस्तु बनकर रह जायगी। डॉ० लोहिया के इस विचार म भले ही कटुता का कुछ अश अधिक हो, किन्तु इस सत्य से मुह नही मोडा जा सकता कि भारतीय जनता पर इस प्रथा को थोपने वाले उच्च जाति के कुछ ऐसे व्यक्ति रहे जिन्होने ऐसी व्यवस्था निर्मित की जिसमे देश के मस्तिष्क का राजा ब्राह्मण और धन का मालिक वश्य बन बठा तथा युद्ध एव सेवाश्रम का उत्तरदायित्व क्रमश क्षत्रिय एव शूद्र पर आरोपित हुआ। इसी अफलातून जसे काय विभाजन में ऊँच-नीच छोटे बडे शासक शासित के असमाजवादी भाव आवश्यक परिणाम के रूप मे समाविष्ट हुए जो भारत के पतन के लिए प्रधान रूप से उत्तरदायी हैं।

डा० लोहिया न इतिहास के सूक्ष्म अध्ययन द्वारा यह सिद्ध किया है कि भारतवष की १००० वष की दासता का कारण जाति है आन्तरिक झगडे और छल-कपट आदि नही।[3] डॉ० लोहिया के विचारानुसार जब भी किसी देश म जाति के बन्धन ढीले होते हैं तब वह देश विदेशी आक्रमण के समक्ष नत मस्तक नही होता। भारतवष मे जाति के बन्धन मदव से जकडे रहे हैं। जाति-प्रथा निम्न जातियो का सामाजिक आर्थिक, आध्यात्मिक, बौद्धिक राजनतिक आदि दृष्टिया से पतित कर देती है, जिसके परिणाम स्वरूप वे सावजनिक कार्यों और देश की रक्षा आदि जसे महत्वपूण समस्याओ के प्रति उदासीन हो जाती है। वे सावजनिक जीवन से लगभग बहिष्कृत रहती हैं और उनमे से किसी नतृत्व की सृष्टि नही हो पाती। केवल उच्च जाति मे ही देश के नता और कणधार बनते हैं। विदेशी आक्रमण के आगे असगठित समाज घुटने टेक देता है, क्योकि जाति प्रथा "९० प्रतिशत को दशक बनाकर छोड देती है वास्तव मे देश की दारुण दुघटनाओ के निरीह और लगभग पूरे उदासीन दशक।'[4]

* * * * *

1—डॉ० लोहिया जाति प्रथा पृष्ठ 83
2—सितम्बर 10 सन् 1937 ई० को डॉ० लोहिया द्वारा श्री चन्द्रिकाप्रसाद जिज्ञासु को लिखे गये पत्र से
3—16 दिसम्बर सन् 1959 को लखनऊ में डॉ० लोहिया द्वारा दिये गये भाषण
4—डॉ० लोहिया जाति प्रथा पृष्ठ 84

डॉ० लोहिया का यह कहना पूर्णरूपेण सत्य नही है कि केवल जाति प्रथा ही भारत की दासता का एकमात्र कारण रही है। जाति प्रथा पराधीनता के अनेक कारणो में से एक कारण हो सकती है, किन्तु एकमात्र कारण यही नही है। जाति प्रथा के अतिरिक्त पारस्परिक कलह सामन्तवाद और युद्ध प्रणाली का पिछड़ापन आदि बहुत हद तक उत्तरदायी रहे हैं। भारत का इतिहास इसका साक्षी है कि जब भी विदेशी आक्रान्ता भारत मे सफल हुए हैं तो इसका कारण या तो देशी राज्यो द्वारा विदेशी आक्रान्ता को मदद देना रहा है और या फिर आक्रान्ता के पास अधिक आधुनिकतम अस्त्रों का होना रहा है। सिकन्दर के मुकाबले पोरस के अस्त्र और युद्ध प्रणाली काफी अविकसित थी। यही बात राणा सागा और बाबर के बीच हुए युद्ध मे थी और यही बात भारत के तत्कालीन मुगल शासकों एव अंग्रेजो के बीच हुए युद्धो मे थी।

जाति उन्मूलन हेतु लोहिया के सुझाव —इतिहास का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि हमारे देश के सन्त और समाज-सुधारक जाति प्रथा पर समय समय पर प्रहार करते रहे हैं। बुद्ध शंकराचार्य रामानुजाचार्य, ज्ञानेश्वर नामदेव एकनाथ तुकाराम वल्लभाचार्य चैतन्यदेव नानक कबीर, रविदास, गोरा चोखा नरसिंह महता सहजानन्द तथा अभी अभी स्वामी दयानन्द सरस्वती एव गाधी जी ने जाति प्रथा को समाप्त करने के लिए अत्यधिक प्रयास किये। किन्तु डा० लोहिया ने जाति प्रथा पर जितना प्रभावशाली प्रहार किया वैसा शायद ही अन्य किसी ने किया हो। उनकी मान्यता थी कि गरीबी और जाति प्रथा एक दूसरे के कीटाणुओ पर पनपती हैं। आधुनिक अर्थतन्त्र के द्वारा समाजवाद तब तक नही आ सकता, जब तक कि जाति प्रथा को समाप्त नही किया जाता। डा० लोहिया के हृदय मे जाति प्रथा के विरुद्ध सशक्त तूफान उमडता रहता था। उन्होने कहा था कि "परिवर्तन के विरुद्ध और स्थिरता के लिए जाति प्रथा एक भयकर शक्ति है।[1] उन्होंने जाति प्रथा पर चौतरफा प्रहार किया—धार्मिक आर्थिक सामाजिक और राजकीय।

डॉ० लोहिया ने ब्रह्मज्ञान और अद्वैतवाद की तर्कपूर्ण और सार्थक व्याख्या कर यह सिद्ध किया कि जाति प्रथा समाप्त करना ही सच्चा ब्रह्मज्ञान और अद्वैतवाद है। डा० लोहिया ने कठोपनिषद् के मंत्र २। २। ९

एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा। रूपरूप प्रतिरूपो बभूव ॥[2]

* * * * *

1—डॉ० लोहिया जाति प्रथा पृष्ठ 87

2—जिस प्रकार एक अग्नि लोक में प्रविष्ट होकर उपाधि भेद से अनेक रूप वाली हो जाती है उसी प्रकार सर्वव्यापक तत्व आकार भेद से अनेक रूप वाला हो गया।

को ब्रह्मज्ञान का मूलाधार बताते हुए यह संदेश दिया कि हम सब मूल रूप में एक ही हैं। अपने व्यक्तिगत संकुचित शरीर और मन से हटकर सब के प्रति अपनापन अनुभव करना ही सच्चा ब्रह्मज्ञान है।[1] इसी प्रकार जाति प्रथा समाप्ति को ही सच्चा अद्वैतवाद मानते हुए उन्होंने कहा, "एक तरफ तो अद्वैत चला रहे हैं कि सब संसार एक है, सब समान हैं, पेड़ समान, गधा समान आदमी समान, देवता समान और दूसरी तरफ अपने ही अन्दर ब्राह्मण बनिया, चमार, भंगी, महार कापू, माला, मादीगा, न जाने पचास तरह के झगड़े खड़े करके बँटवारा करके अपने देश को हम छिन भिन्न कर रहे हैं।'[2]

वास्तव मे जाति के आधार पर ऊँच-नीच और बड़े छोटे का द्वैत बहुत ही विडम्बनापूर्ण है और विशेषत भारत के लिए जहाँ 'वसुधैव कुटुम्बकम्' ही सम्पूर्ण संस्कृति का आधार रहा हो। किन्तु हम निश्चय पूर्वक यह नही कह सकते कि जाति प्रथा के नष्ट होने से सच्चा अद्वैतवाद प्राप्त हो जाएगा, परन्तु इतना अवश्य ही है कि जाति प्रथा एक अत्यन्त सशक्त विभाजक शक्ति है जिसके उन्मूलन की अत्यन्त आवश्यकता है। जाति प्रथा का आरम्भ एक अच्छे उद्देश्य को लेकर किया गया था किन्तु कालान्तर मे यह प्रथा एक बुराई बन गई। जाति प्रथा से जाति वाद का जन्म हुआ, जिसके विरुद्ध सम्पूर्ण भारत मे आवाज उठाई जा रही है। यदि जाति-वाद समाप्त हो जाय, तो ढीले ढाले रूप मे कार्य विभाजन की दृष्टि से जाति प्रथा को जीवित रहने दिया जा सकता है। परन्तु जाति प्रथा सम्पूर्ण प्रयासो के बाद भी जातिवाद म परिवर्तित हो सकती है। साम्राज्यवाद को समाप्त करने के लिए सीजर का अन्त करना पड़ा था। इसी प्रकार जातिवाद को नष्ट करने के लिए जाति प्रथा का अन्त आवश्यक है।

डा० लोहिया ने जाति-प्रथा पर आर्थिक दृष्टिकोण से भी प्रहार किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि जाति प्रथा के कारण प्राय छोटी जातियाँ सार्वजनिक जीवन से बहिष्कृत हो जाती है जिसमे दासता उत्पन्न होती है और दासता मे हर प्रकार का शोषण होता है। इसके अतिरिक्त जाति-प्रथा के कारण छोटी जातियाँ इतनी अधिक गरीब हो गई है कि वे अपनी पूर्ण क्षमता के साथ राष्ट्रीय प्रगति मे अपना सहयोग नही दे पाती। डॉ० लोहिया की दृष्टि म पिछड़ी हुई जातियों को आर्थिक दृष्टि से सबल करने और उनमे आत्म-सम्मान जागृत करने

* * * * *

1—डॉ० लोहिया भाषण 27 मई 1960, हैदराबाद (आर्य-समाज की सभा में)
2—डॉ लोहिया धर्म पर एक दृष्टि पृष्ठ 16

डॉ० लोहिया का अन्तर्जातीय विवाह सम्बन्धी दृष्टिकोण आलोचना का विषय है। विवाह की सफलता पति-पत्नी के स्वभाव के सामन्जस्य पर निर्भर करती है। अतः अन्तर्जातीय विवाह करते समय इस तथ्य का ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिए। भावावेश में आकर लोग अन्तर्जातीय विवाह कर सकते हैं किन्तु स्वभाव, पूर्वाग्रह, रूप रंग आदि में भिन्नता होने के कारण अन्तर्जातीय विवाहों की असफलता काफी हद तक निश्चित है। जाति पर यदि हम ध्यान न भी दें तो वातावरण पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। ठीक यही बात सहभोज के बारे में भी कही जा सकती है। सब जातियों के साथ सम-व्यवहार का यह अर्थ नहीं कि आवश्यक रूप से सभी जातियाँ साथ-साथ खाना खाएँ हों। यह भी निश्चयात्मक ढंग से नहीं कहा जा सकता कि सहभोज से आवश्यक रूप में समता का भाव पैदा ही हो जाएगा। यही कारण है कि महात्मा गाँधी सहभोज और अन्तर्जातीय विवाह को अनिवार्य नहीं मानते थे। तथापि उपर्युक्त बातों की ओर भाव की स्वतन्त्रता का ध्यान रखकर जातिवाद से ग्रसित आज के भारत में समता और सम्पन्नता लाने के लिए सहभोज और अन्तर्जातीय विवाह जैसे क्रान्तिकारी विचारों की अवहेलना नहीं की जानी चाहिए।

डॉ० लोहिया का जाति प्रथा पर चौथा आक्रमण राजनीय था। उनका कहना था कि जाति प्रथा के कारण जनता का अधिकांश भाग राजनीतिक कार्य में सक्रिय भाग नहीं ले पाता। अपवादों को छोड़कर निम्न जातियों में से नेतृत्व का सृजन भी नहीं हो पाता है। अपनी दबी हुई स्थिति के कारण वे अपने मताधिकार का भी प्रयोग नहीं कर पाते। उनका न तो सही ढंग से प्रतिनिधित्व हो पाता है और न ही उन्हें किसी प्रकार का राजनीतिक ज्ञान ही। इन समस्त कारणों से उनकी क्षमताएँ विकसित नहीं हो पाती जिस कारण वे राजनीतिक कार्यों के प्रति उदासीन हो जाते हैं। परिणामस्वरूप राष्ट्र जनता के अधिकांश भाग के सहयोग से वंचित रह जाता है। उनमें राजनीतिक चेतना भरने और राष्ट्र को सशक्त बनाने के लिए डॉ० लोहिया ने प्रत्यक्ष चुनाव, वयस्क मताधिकार और विशेष अवसर के सिद्धान्त की आवश्यकता पर बल दिया।

वयस्क मताधिकार और प्रत्यक्ष चुनाव के सम्बन्ध में डॉ० लोहिया का मत है कि "जैसे जैसे यह वयस्क मताधिकार चलता रहेगा चुनाव चलते रहेंगे, वैसे वैसे जाति का ढीलापन बढ़ता रहेगा।"[1] हम जानते हैं कि उनके मत का मूल्य

1—लोहिया : निराशा के कर्तव्य, पृष्ठ 29

दूसरो के मत के समान है और चूंकि इनकी संख्या कम नही है इसलिए चुनाव के प्रत्याशियो को उनके महत्व को स्वीकार करना होगा। शिक्षा का दिनो दिन प्रसार होने से आने वाले समय में उनको वाग्जाल से भ्रमित भी नही किया जा सकता।

डॉ० लोहिया का कहना था कि फ्रांस और रूस की राज्य क्रान्तियो के लिए समान अवसर का सिद्धान्त उसी प्रकार उचित और पर्याप्त हो सकता है जिस प्रकार साम्यवादी घोषणा पत्र तथा यूरोपिया के लिए समान अवसर का सिद्धान्त क्रान्तिकारी एव प्रभावपूर्ण है क्योकि इन देशों मे जाति प्रथा की समस्या नही है। परन्तु जाति प्रथा से व्यथित भारतीय भूमि के लिए समान अवसर का सिद्धान्त अपर्याप्त है। यहाँ तो विशेष अवसर का सिद्धान्त ही क्रान्तिकारी हो सकता है। वर्तमान शासन द्वारा निम्न जातियो को दिये गये विशेष अवसरों को डा० लोहिया केवल कुछ सुविधाएँ मात्र समझते थे। वे योग्यता-अयोग्यता पर विचार किये बिना पिछडी जातियो का शासन के उच्च पदो पर, राजनीति मे नेतृत्व के पदो पर, सेना के पदो पर तथा व्यापारिक पदो पर आसीन करना चाहते थे।[1] इन विशेष अवसरो के पक्ष मे डा० लोहिया का तर्क था कि जाति अवसर को अवरुद्ध करती है और अवरुद्ध अवसर योग्यता को अवरुद्ध करता है। अवरुद्ध योग्यता पुन अवसर को अवरुद्ध करती है। फलत पिछडी जाति कभी उठ नही पाती। स्वय उन्ही के शब्दों मे, "Caste restricts opportunity restricted opportunity constricts ability, constricted ability further restricts opportunity Where caste prevails opportunity and ability are restricted to ever narrowing circles of the people '[2]

डॉ० लोहिया का विशेष अवसर का सिद्धान्त एक उच्च आदर्श एव न्याय पर आधारित है परन्तु इसके अक्षरश पालन से जो समस्याएँ पैदा होगी उनकी अनदेखी नही की जा सकती। कुछ स्थान इतने महत्वपूर्ण होते है कि थोडी सी अकुशलता गम्भीर परिणाम को जन्म दे सकती है। एक अयोग्य डाक्टर एक अकुशल सैनिक अफसर या राजदूत राष्ट्र को किसी भी कीमत पर स्वीकार नही होना चाहिए। हमारा विचार है कि एक अयोग्य व्यक्ति को पद विशेषकर उच्च एव महत्वपूर्ण पद देने मे विशेष अवसर के सिद्धान्त का प्रयोग

* * * * *

1—लोहिया-भाषण 1959 जुलाई 17 हैदराबाद
2—Dr Lohia Marx Gandhi and Socialism p 33

करने की अपेक्षा उस व्यक्ति को उस पद के योग्य बनाने में इस सिद्धांत का प्रयोग करना चाहिए।

डॉ० लोहिया पिछड़ी जातियों को केवल नतृत्व के पदो पर ही आसीन नही करना चाहते थे, बल्कि उनकी आत्मा को जागृत करना उन्हें सुसंस्कृत बनाना तथा उनमें अधिकार भावना भरना चाहते थे। उनकी यह अभिलाषा थी कि द्विज तथा शूद्र अपने दोषो से मुक्त हो। वे पद-दलितो में अधिकार के प्रति चेतना इसलिए लाना चाहते थे क्योकि उनके मतानुसार कर्तव्य की भावना कभी आ नही सकती, जब तक अधिकार की भावना नही आएगी। उन्होंने यह विश्वास पूर्वक कहा कि "अगर महात्मा गाँधी को आत्म-सम्मान न रहा होता और एक बहुत ऊँचे पैमाने का आत्म सम्मान, तो दक्षिण अफ्रीका मे वे कभी भी हिन्दुस्तानियो के अधिकार और कर्तव्य की लडाई लड नही सकते थे। उन्होने कर्तव्य-कर्तव्य की बहुत रट लगायी थी, लेकिन तब ही जब अपने अधिकार के बारे म वे सचेत हुए। जो आदमी जानता है कि यहाँ मेरी इज्जत खत्म हो रही है वही आदमी अपना काम और कर्तव्य पूरा कर सकता है।'[1] वे चाहते थे कि पद-दलित समूह गाँधी का रूप धारण कर ले और तभी यह समूह जो अभी तक मुर्दा है प्राणवान् बनेगा।

जाति प्रथा विनाश हेतु उनकी नीति का सशक्त प्रभाव जन मानस पर इसलिए पडा क्योकि वे अपनी जाति-नाशक नीति के दुष्परिणामो के प्रति सदैव सजग रहे। ऐसे दुष्परिणामो की ओर उन्होने सकेत किया और उनसे बचे रहने के लिए भारतीय जनता का आह्वान किया। इस प्रकार के दुष्परिणामो म प्रथम तो यह है कि द्विजो म अति शीघ्र ही जाति-नाशक कार्य-कर्त्ताओ के प्रति द्वेष, घृणा और कटुता का प्रादुर्भाव हो सकता है द्विज उन्हें पथ भ्रष्ट कर सकते हैं, चाहे उतनी शीघ्र शूद्र न उठ पावे। द्वितीय ' छोटी जातियो के बीच बृहत्काय जैसे अहीर और चमार इस नीति के फल को सैकडो छोटी जातियो के बीच बाँटे बिना खुद ही चट कर सकते हैं जिसका नतीजा होगा कि ब्राह्मण और चमार तो अपनी जगह बदल लेंगे, पर जाति वैसी ही बनी रहेगी।'[2] तृतीय, निम्न जाति के स्वार्थी व्यक्ति जाति-जलन के अस्त्र का प्रयोग कर ईर्ष्या और वैमनस्य का वातावरण उत्पन्न कर सकते है। चतुर्थ चुनाव का अवसर उच्च एवं निम्न जातियो के बीच अधिक तनावपूर्ण एवं हिंसात्मक हो सकता है।

* * * * *

1—17 जुलाई सन् 1959 को लोहिया द्वारा हैदराबाद में दिये गये भाषण से
2—डॉ लोहिया जाति प्रथा पृष्ठ 103

अन्तिम, निम्न स्तरीय व्यक्ति आर्थिक और राजनतिक समस्याओं को धुधला बना सकते हैं या उन्हे पृष्ठभूमि मे ढकेल सकते हैं। भारतीय वातावरण को विपाक्त करने वाली यह कुछ ऐसी कठोर चट्टानें है जो जाति विनाशक के माग मे प्रधान रूप से अवरोध का काय कर सकती हैं। परन्तु डॉ० लोहिया की सलाह है कि इनके भय से सृजनात्मक एव उपचारात्मक चमत्कारिक शक्ति के प्रति अन्धा नही बनना चाहिए।

भारतीय समाज और समाजवाद के लिए जाति प्रथा सदव से एक गम्भीर समस्या रही है। डॉ० लोहिया ने उचित ही लिखा है कि भारतीय जीवन मे जाति सबसे ज्यादा ले डूबू उपादान है।"[1] इसलिए उन्होने 'जाति प्रथा अध्ययन और विनाश सघ' समाजवादी दल तथा अन्य आन्दोलनो के माध्यम द्वारा केवल जाति भेद के लिए ही नही अपितु जाति नाम की सज्ञा का होम करने के लिए जनता का आह्वान किया। परन्तु दुर्भाग्य का विषय है कि जो सिद्धान्त म उसे नही मानते वे भी व्यवहार मे उस पर चलते हैं। जाति की सीमा के अन्दर जीवन चलता है और सुसस्कृत लोग जाति प्रथा के विरुद्ध शन शनै बात करते हैं जब कि कम मे उसे नही मानना उन्हें सूझता ही नही।

नर-नारी समता

भारत कमजोर देश होने के कारण सदियो तक परतन्त्रता की बेडियो म जकडा रहा है। विदेशियो की फौजी बूटो तले यहाँ की आध्यात्मिक सभ्यता सस्कृति रौंदी जाती रही। लोहिया जी का यह मत है कि इसके लिए भारत की सामाजिक कुरीतियाँ—नर नारी असमानता जाति प्रथा साम्प्रदायिकता रग भेद अस्पश्यता आदि—ही उत्तरदायी हैं। उनका जोर विशेषकर जाति प्रथा और नर-नारी असमानता पर है।

जाति प्रथा पर पर्याप्त चर्चा पूव म की जा चुकी है। जहाँ तक नारी का प्रश्न है उसकी शोचनीय स्थिति को विस्मृत नही किया जा सकता। डॉ० लोहिया ने ठीक ही कहा है कि औरत! हिन्दुस्तान की औरत। दुनिया के दुखी लोगो मे सबसे ज्यादा दुखी भूखी मुर्झाई और बीमार है। हिन्दुस्तान का मद भी दुखी है—पर हिन्दुस्तानी औरत मद के मुकाबिले कई गुना ज्यादा भूखी और बीमार है।[2] नारी के इन सब कष्टों को समाप्त कर,

* * * * *

1—डॉ० लोहिया जाति प्रथा पृष्ठ 83
2—रजनीकान्त वर्मा लोहिया और औरत, पृष्ठ 27

उसमें आत्म-सम्मान जगाकर, उसे शिक्षित और स्वतन्त्र करके ही समाजवादी आन्दोलन अथवा भारत के सर्वांगीण विकास मे सक्रिय भाग लेने के योग्य बनाया जा सकता है। समाजवादी आन्दोलन मे नारी की सक्रिय हिस्सेदारी अनिवार्य है। डॉ० लोहिया न नारी के सक्रिय सहयोग के बिना समाजवादी आन्दोलन को एक वधूहीन विवाह कहा है—

A Socialist movement without the active participation of women is like a wedding without the bride '[1]

प्रत्येक कार्य मे सहयोग के लिए अपरिहार्य नारी प्राचीन काल से ही दासता का शिकार रही है। बालिका, युवती, वृद्धा किसी को भी स्वतन्त्र नही रखा गया है। इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिए अन्य भारतीय ग्रन्थो के अतिरिक्त मनुस्मृति का निम्नलिखित श्लोक ही पर्याप्त है —

बाल्ये पितुवशे तिष्ठे पाणिग्राहस्य यौवने।
पुत्राणा भर्तरि प्रेते न भजेत स्त्री स्वतन्त्रताम् ॥"[2]

अर्थात् स्त्री बालकपन मे पिता के वश मे, तरुणाई म पति के वश मे, पति के मृत्यापरान्त पुत्रो के वश म रह। निदान यह कि स्वतन्त्र कभी न रह। आधुनिक युग म भी कुछ सुधार के साथ नारी दासता का यह दृष्टिकोण विद्यमान है जिसके प्रति डा० लोहिया ने सशक्त विद्रोह किया।

सामान्य व्यक्ति के लिए जो छोटे विषय हैं वे डा० लोहिया के लिए बहुत बडे एव महत्वपूर्ण तथ्य है। साधारण व्यक्ति को नारी के द्वारा भोजन बनाया जाना, धुआ से सघर्ष किया जाना बहुत ही सरल एव स्वाभाविक प्रतीत होता है, किन्तु डॉ० लोहिया की दृष्टि म इन्ही लघु तथ्यो से नारी का उत्थान और पतन जुडा हुआ है। इसी कारण उन्होने नारी के चूल्हे चकिया और धुआँ आदि की समस्या पर सर्व प्रथम वेदना व्यक्त की कि "नारी की रसोई की गुलामी वीभत्स है और चूल्हे का धुआँ तो भयकर है। खाना बनाने के लिए उनका राजकी समय बाँध देना चाहिए और ऐसी चिमनी भी लगानी चाहिए कि जिससे धुआँ बाहर निकल जाये ।"[3] इसी प्रकार अधिकाश भारतीय नारियो द्वारा सूर्योदय पूर्व अथवा सूर्यास्त पश्चात शौच-कार्य जाना और दूर से गन्दे पानी का खींच-खींच कर लाना भी उनको असहनीय था। वे समझते

* * * * *

1—Dr Lohia Marx Gandhi and Socialism p 350
2—मनुस्मृति—पंचम अध्याय श्लोक 148
3—डॉ लोहिया जाति-प्रथा, पृष्ठ 4

थे कि नारी की यह दशा भारत के पतन का द्वार है। वे लोहिया ही थे जिन्होंने नारी को उसके ही भोजनालय में उस भूखा देखा था, उसकी भूख के कारण भी स्पष्ट किये थे कि भारतीय नारी नर, आगन्तुक और बच्चों के पश्चात् ही भोजन करती है। कई घरों में स्त्री के लिए पर्याप्त भोजन बचता ही नहीं। कई गृहों में भारतीय स्त्री पानी पीकर और पेट बाँधकर सो जाती है।[1] इन छोटे से छोटे तथ्यों को जीवन के महान और बहुत बड़े तथ्य समझना वास्तविकता से पूर्ण है और लोहिया के विचारों की यह अपनी ही विशेषता है।

भारतीय संस्कृति में नर-नारी जन्म में भी असमानता है। नर का जन्म सुखद और नारी का दुःखद समझा जाता है। इसका मुख्य कारण भारत में व्याप्त दहेज प्रथा है। वधू की योग्यता, शिक्षा, सुन्दरता आदि तो गौण हैं। वधू विवाह मे वर पक्ष दहेज की अधिक मात्रा से ही प्रभावित होता है। जिस प्रकार गाय दूध की मात्रा से नहीं, उसके बछड़ा नीचे होने से क्रेता के लिए मूल्यवान होती है, उसी प्रकार वधू योग्यता से नहीं दहेज से ही अच्छे घर में विवाहित होती है। लोहिया ने उचित ही कहा है 'बिना दहेज के लड़की किसी मसरफ की नहीं होती जैसे बिना बछड़े वाली गाय।'[2] इसके अतिरिक्त विवाह की निमन्त्रण की सुन्दरता दी जाने वाली वस्तुओं का मूल्य कण्ठियों की कीमत तथा अन्य तड़क भड़क वर वधू के आत्म मिलन से अपेक्षाकृत अधिक महत्व की समझी जाती है। डा० लोहिया ने उचित ही कहा है कि, उनकी शादियों का वैभव आत्मा के मिलन में नहीं है जिसे प्राप्त करने का नव दम्पति प्रयत्न करते बल्कि बीस लाख की कण्ठियों और पचास हजार से भी ज्यादा कीमती साड़ियों में है।'[3] दहेज की इस घृणित प्रथा की भर्त्सना के लिए शक्तिशाली लोकमत तैयार किया जाना चाहिए, और जो युवक इस क्षुद्र तरीके से दहेज लेते हैं उन्हें समाज से बहिष्कृत किया जाना चाहिए। महात्मा गांधी ने भी कहा है कि शादी का सौदा नहीं बनाना चाहिए।[4]

डॉ० लोहिया बहुपत्नी प्रथा के भी घोर विरोधी थे। उनका मत था कि यदि पत्नी एक पति रख सकती है तो पति को भी केवल एक ही पत्नी रखने का अधिकार होना चाहिए। उन्होंने मुस्लिम धर्म की इस स्वतन्त्रता की कटु

* * * * *

1—डॉ लोहिया जाति प्रथा पृष्ठ 173
2—वही पृष्ठ 5
—वही पृष्ठ 7
4—यू एस मोहनराव (संकलन और सम्पादनकर्ता)—महात्मा गांधी का संदेश पृष्ठ 106

आलाचना की है जिसके अनुसार एक मुसलमान को चार पत्नी तक रखने का अधिकार दिया गया है, भले ही कुरान म पत्निया के साथ सम-व्यवहार का आदेश दिया गया हो। उनका विश्वास था कि जब सर्वगुण-सम्पन्न द्रौपदी अपने पाँच पतिया के साथ सम-व्यवहार न कर सकी तो साधारण मानव के लिए पत्नियो के साथ सम-व्यवहार कर सकना असम्भव और अस्वाभाविक है। उनका विचार था कि "जो मर्द औरत को भी चार पति करने की इजाजत नहीं देता है, वह जब कहता है किसी भी आधार पर, धर्म हो, कि चार औरतें करने का हक होना चाहिए तो वह गन्दा मर्द है।"[1] हिन्दुओ मे भी बहुपत्नी प्रथा बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। आज विधि द्वारा इस प्रथा का ध्वस कर दिया गया है किन्तु अभी इसके व्यवसायदोष हैं। आज समाज सचेत नहीं है नारी दबी हुई है, कुछ चालाकी हो जाती है। डॉ० लोहिया नर नारी के बीच इस सम्बन्ध म समता चाहते थे। 'एक पत्नी एक पति' का सिद्धान्त ही उनके लिए आदर्श था। घर के कार्यों के सम्बन्ध मे भी व समता चाहते थे। उनका कहना था कि अगर औरत की जगह रसाई घर मे हो तो आदमी की जगह पालने के पास होना चाहिए।[2]

विवाह, प्रेम, यौन आचरण आदि विषयो म वे स्वतन्त्रता और समता के पक्षपाती थे। उन्ह समता की चाह थी। उन्हें भारतीय पुरुष के इस विकृत विचार पर बडा क्रोध था कि वह अपनी स्त्री को सावित्री की तरह पतिव्रता देखना चाहता है, चाहे वह स्वय नित्य कई स्त्रियो से मिलता हो, गप्पें लडाता हो प्रेम करता हो और शारीरिक सम्बन्ध रखता हो। 'सब भूल कर सिर्फ एक बार अपनी औरत से उम्मीद करता है कि उसके मन, मस्तिष्क, ख्यालो म सिर्फ वही रह।'[3] उन्होंने हिन्दू संस्कृति की पतिव्रता सम्बन्धी किंवदन्तियो को पक्षपातपूर्ण बतलाया। इस विचार म सत्यता भी है, क्योकि यदि एक ओर सावित्री ऐसी पतिव्रता की कथा है, जिसम वह अपने पति को यम से छुड़ा कर लाती है, तो दूसरी ओर किसी पत्नीव्रत की भी कथा चाहिए, जिसमे पति अपनी पत्नी को यम से छुड़ाकर लाया हो और उसे जीवित किया हो। यदि समाज का निर्माण समाजवादी ढग से करना है तो फिर जिस तरह से औरत किसी एक मर्द के साथ जन्म जन्मान्तर म जुड जाती है, उसी तरह से एक ही

* * * * *

1—डॉ० लोहिया जाति प्रथा पृष्ठ 174
2—वही पृष्ठ 137
3—रजनीकान्त वर्मा लोहिया और औरत, पृष्ठ 21

औरत के साथ एक मद का भी जन्म-जन्मान्तर तक जुड जाना जरूरी होता है।[1] विवाह और प्रेम करने के लिए यदि नर स्वतन्त्र है तो नारी को वहा स्वतन्त्रता होनी चाहिए। लडकी की शादी करना माता पिता का उत्तरदायित्व नही है। उनका काय तो उसे अच्छी शिक्षा और अच्छा स्वास्थ्य देने तक ही सीमित रहना चाहिए।

नर-नारी समता का लोहिया का दृष्टिकोण उचित है किन्तु लडकी को अपना विवाह स्वय करने की पूण स्वतन्त्रता देना अशिक्षित और अज्ञान भारतीय नारी के लिए उचित नही प्रतीत होता है। माता पिता को लडकी की अपेक्षा अधिक ज्ञान और विवेक होता है। इसके अतिरिक्त जिस माता पिता को अपनी पुत्री को स्वस्थ बनाने और शिक्षित करने की चिन्ता होती है उसे उसकी अच्छी शादी करने की भी चिन्ता होना स्वाभाविक होता है। अभी तक का अनुभव इस तथ्य का प्रमाण है कि स्वेच्छा से नवयुवतियो द्वारा की गई शादियाँ प्राय असफल रही हैं क्योकि वे अपने साथी को चुनने मे अक्षम थी। अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि पुत्रियो की शादी करते समय माता पिता उनकी इच्छा भी जानने का प्रयास करें तो अच्छा है। नारी के स्वतन्त्र विवाह सम्बन्धी लोहिया के विचार समाज मे तभी सफल रूप धारण कर सकते हैं जब कि वतमान युवती सुशिक्षित होकर पुरुष के स्तर को प्राप्त कर ले और जीवन तथा जगत को परखने की आवश्यक योग्यता से विज्ञ हो जावे।

नारी की समस्या पर डॉ० लोहिया खुले हुए और साफ ढग से सोचने वाले व्यक्ति थे। वे यौन सम्बन्धो को मिथ्या सामाजिक रूढियो के बन्धनो मे जकड कर रखने के सख्त विरोधी थे। उनका मत था कि नर और नारी के बीच यौन आचरण समतापूण स्वतन्त्र एव स्वाभाविक सम्बन्ध है। इसलिए "यौन आचरण मे केवल दो ही अक्षम्य अपराध हैं बलात्कार और झूठ बोलना या वायदो को तोडना। दूसरे को तकलीफ पहुँचाना या मारना एक और तीसरा जुम है जिससे जहाँ तक हो सके बचना चाहिये।[2] इस सम्बन्ध मे डॉ० लोहिया चाहते थे कि लोग सदाचारी हो, किन्तु उनकी मान्यता थी कि जब तक समाज और मनुष्य हैं तब तक बलात्कार और व्यभिचार मे से कोई एक निश्चित रहेगा। जिस समाज मे व्यभिचार को नक समझा जाता है उसमे बलात्कार का जन्म निश्चित रूप से होता है जो अधिक नारकीय है। इसलिए

* * * * *

1—डॉ० लोहिया जाति प्रथा पृष्ठ 160
2—वही पृष्ठ 7

लात्कार से व्यभिचार अच्छा है। उनके विचार मे एक वृत की आदश
वस्था अवास्तविक है।

डॉ० लोहिया का यह कहना उचित नही प्रतीत होता कि एक वृत की
वस्था अवास्तविक है। हमारे भारत म हमेशा से एक वृत का आदश व्याव-
ारिक रूप मे सफलता मे चला आ रहा है और आज भी ढीले ढाले रूप म
यह विद्यमान है। इससे कुटुम्ब सगठित रहता है और जिसका प्रभाव समाज
के सगठन पर अच्छा पडता है। डॉ० लोहिया का यह कहना भी सही नही है
कि बलात्कार और व्यभिचार मे से एक अवश्य रहेगा। ऐसे अपराधो की कही-
कही और यदा-कदा छुट-पुट घटनाएँ हो सकती हैं किन्तु उनसे भयभीत न
होकर हमे उनकी रोक थाम की कोशिश करनी चाहिए और प्राचीन भारत
की नर नारी की शुचिता का समानता के आधार पर बनाय रखने का प्रयत्न
करना चाहिए।

डॉ० लोहिया का मत था कि व्यभिचार के कारण नारी की निन्दा की
जाती है तो नर की भी उतनी ही अधिक क्यो नही होती। डा० लोहिया ने
लिखा है, 'मद छिनाला की तो हिन्दुस्तान मे निन्दा नही होती लेकिन औरत
छिनालो की निन्दा हो जाती है। ससार म सभी जगह थोडा बहुत ऐसा है।
यह वृत्ति भी छूट जानी चाहिए।'[1] यहाँ पर डा० लोहिया का दृष्टिकोण
सराहनीय है। व्यभिचार समाज के लिए एक बहुत बुरा अपराध है जिसके
करने पर नर और नारी दो समान रूप से दण्डित और निंदित किया जाना
चाहिए। दुर्भाग्यवश भारत म परपुरुष गामिनी नारी की निन्दा जितनी
अधिक होती है उतनी अधिक परस्त्री गमन करन वाले पुरुष की नही।

नारी स्वतन्त्रता का प्रतिपादन करते हुए डा० लोहिया ने कहा कि
आधुनिक पुरुष अपनी स्त्री को एक ओर सजीव, कान्तिपूर्ण एव मानी चाहता
है, दूसरी ओर अधीनस्थ भी। पुरुष की यह परस्पर विरोधी भावनाएँ बहुत
ही विम्बनापूर्ण, काल्पनिक एव अवास्तविक है क्योंकि परतन्त्रता की स्थिति
म मान, सजीवता एव तेज का प्रादुर्भाव कसे हो सकता है? डॉ० लोहिया
न नर के इस प्रकार क मरे हुए मस्तिष्क का जागृत किया और कहा, 'या तो
औरत को बनाओ परतन्त्र, तब यह छोड दो औरत को कोई बढ़िया बनाले
का। या फिर, बनाओ उसका स्वतन्त्र। तब वह बढ़िया होगी, जिस तरह से

* * * * *

1—डॉ० लोहिया जात कान्तियाँ पृष्ठ 30

मद बढ़िया होगा।[1] फ्रांस की एक लेखिका सिमोन द बोवार की भी यही विचार है जिसकी लोहिया ने बहुत प्रशंसा की है। डा० लोहिया के उपयुक्त दृष्टिकोण से स्पष्ट है कि नर नारी समता के प्रतिपादन मे उनका प्रमुख उद्देश्य था नारी को बुद्धिमान, विवेकी कान्तिपूर्ण और ज्ञानी बनाना।

समाजवाद या समतावाद डॉ० लोहिया के जीवन और विचारो मे पूर्ण रूपेण घुल मिल गया है। उनका वाक्यांश मैं आधा मद और आधा नारी हू नारी के प्रति उनके दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है।[2] समाजवाद की स्थापना के लिए वे समाज के अर्द्धांग अथवा अंग्रेजी भाषा मे बेहतर अर्द्धांग' को पूर्ण चेतन, सजीव समर्थ आदि बनाना चाहते थे। वे अर्द्धांग का घर के अन्दर छुपा कर रखना, दबाकर रखना तिजोरी मे बन्द करके रखना गम्भीर अपराध मानते थे। उनके विचारो मे पर्दा प्रथा नतिकता चरित्र और प्रगति के विपरीत है।[3] इस सम्बन्ध म उनका सुझाव था कि लडकियो की स्वय-सेवक टोलियाँ जगह जगह नारियो से पर्दा हटाकर इस प्रथा को समाप्त कर सकती हैं।[4]

डा० लोहिया नारी को आर्थिक दृष्टि से भी स्वतन्त्र करना चाहते थे। वे नारी को समान कार्य के लिए समान वेतन ही नही अवसर और निधि की समानता ही नही अपितु नारी की प्राकृतिक कमजोरी की क्षतिपूर्ति के लिए विशेष अवसर के पक्षपाती थे। 'प्रथम योग्यता फिर अवसर' उनका सिद्धान्त न था, बल्कि प्रथम अवसर और फिर योग्यता' को ही व उचित समझते थे। इस हेतु उनका तर्क था कि शरीर सगठन के मामले मे मद के मुकाबले मे औरत कमजोर है और मालूम होता है कि कुदरती तौर पर कमजोर है। इसलिए उसे कुछ स्वाभाविक तौर पर ज्यादा स्थान देना ही पडेगा'[5]

डा० लोहिया के अनुसार नारी के सक्रिय सहयोग के बिना राजनीति अपूर्ण है। अत राजनीति म नारी को नर के समान हिस्सा बँटाना चाहिए। वे तलाक के सिद्धान्त को विवाह के क्षेत्र मे स्वीकार करते हैं, राजनीति के क्षेत्र मे नहीं। अर्थात राजनीति मे नारी को नर के समान सक्रिय भाग लेना चाहिए। उसे राजनीति स तलाक नही लेना चाहिए। उन्होने स्पष्ट कहा था

* * * * *

1—1962 जून 22 नैनीताल लोहिया भाषण समाजवादी युवजन सभा शिक्षण शिविर
2—जन मार्च 1968 पृष्ठ 96
3 व 4—डॉ लोहिया समलय समबोध पृष्ठ 22
5—डॉ लोहिया सात क्रान्तियाँ, पृष्ठ 19

कि "I believe in the law of divorce when man and woman are concerned but in politics I am somewhat conservative "[1] वे चाणक्य के समान नारी को जासूसी के अधिक योग्य मानते थे। उन्होंने इस हेतु रूस की नटाली नामक बहादुर लडकी का उदाहरण भी दिया है, जिसने द्वितीय विश्वयुद्ध में उक्रेन में विजयी जर्मन सेना के मुख्य शिविर में नौकरानी का काम कर, गुलदान के नीचे ट्रान्समीटर लगाकर जर्मन सैनिकों की सभी गति विधियों का समाचार रूस पहुँचाया और लगभग ६० ७० हजार जर्मन सैनिकों और अनेक अफसरों को मौत के घाट उतारने में सहायक हुई। वे भारतीय नारियों का पद्मिनी के समान नहीं बनाना चाहते, जो चित्तौड की पराजय के बाद हजारों पटरानियों और बाँदियों के साथ चिता में भस्म हो गई। डॉ० लोहिया के मत में भारतीय नारी को श्रीमती ब्लेक का अनुगमन करना चाहिए जो अपने पति श्री ब्लेक के साथ हवाई जहाज में उड रही थी, परन्तु आकाश ही में ब्लेक की मृत्यु पर उसने वायरलेस सेट के द्वारा हवाई रेडियो से सम्पर्क साधा और उसके निर्देशानुसार जहाज को नीचे उतारा तथा साहस-पूर्वक अपने जीवन की रक्षा की।

डॉ० लोहिया ने इन दो नारियों का उदाहरण रखकर एक बहुत ही तर्क युक्त और रक्षात्मक प्रश्न उठाया किसको पसन्द करोगे? ऐसी औरत पसन्द करोगे जो आपके प्रति अपना प्रेम, अपनी भक्ति अपना आदर आपके मरने के बाद आपके शरीर के साथ या शरीर के बिना जलकर दिखाये या ऐसी औरत पसन्द करोगे जो आप ही के साथ साथ या आपके आगे पीछे देश की रक्षा करते हुए खुद अलग से मरे।"[2] स्पष्ट है कि वे नारी को रक्षात्मक कार्यों में भी समर्थ समझते थे। प्लेटो की वह उक्ति लोहिया के विचारों से मेल खाती है, जिसमें उसने कहा था, ' Women are naturally fitted for sharing in all the offices of the state" अर्थात नारियाँ राज्य के सभी कार्यालयों में हिस्सा बँटाने के लिए स्वभावत योग्य होती हैं। डॉ० लोहिया नारियों को केवल गुड़िया या उपभोग की निर्जीव वस्तु नहीं मानते। वे कहा करते थे कि "नारी को गठरी के समान नहीं बनाना है, परन्तु नारी इतनी शक्ति शाली होनी चाहिए कि वक्त पर पुरुष को गठरी बनाकर अपने साथ ले चले।"[3] स्त्री पुरुष की समानता को वे दिल से मानते थे। उन्होंने एक बार

* * * * *

1—Dr Lohia Will to Power and Other Writings p 155

2—डॉ लोहिया धर्म पर एक दृष्टि पृष्ठ 13

3—डॉ लोहिया जाति प्रथा, पृष्ठ 141

यह कहा था कि यदि महात्मा गांधी जीवित होते तो वे उनसे अनुरोध करते कि वे अपने उद्देश्य को केवल 'रामराज्य' न कहकर 'सीता राम राज्य' कहें।[1]

आधुनिक भारत की सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियाँ बहुत उलझी हुई हैं। नारी अति शोषण से निर्जीव और निष्प्राण हो चुकी है, वह पुरुषों के पैरों के नीचे कुचली गयी है परम्परा और सामाजिक बन्धनों ने उसका मुख सिल दिया है। इस प्रकार की उलझनपूर्ण परिस्थिति में जब तक नारी स्वयं अपना आदर्श उद्देश्य और तरीका निश्चित न करेगी नारी का उत्थान सम्भव नहीं। इसलिए लोहिया ने नारी-समस्या पर राजनेता के रूप में नहीं, अपितु नवीन पीढ़ी के सरक्षक और मार्ग-दर्शक की तरह बहुत ही सुसंस्कृत एवं स्पष्ट ढंग से विचार किया और एक बहुत ही दूरगामी और अन्तर्गर्भित प्रश्न उछाला, किस आदर्श को अपनाना चाहिए? पति-परायण सती सावित्री या मानी, समझदार, बहादुर साहसी, हाजिर जवाब द्रौपदी? स्पष्ट ही लोहिया का जोर द्रौपदी पर है उस द्रौपदी पर जो अत्याचारियों को कभी क्षमा न कर सकी, जो सत्य बात कहने में भीष्म के समक्ष भी संकुचित न हुई जो निराश पतियों को निरन्तर अपना अधिकार पाने के लिए संघर्ष के लिए प्रेरित करती रही, जो जीवन के किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से पीछे नहीं रही। लोहिया को द्रौपदी एक और कारण से भी आकृष्ट करती है वह है उसका कृष्ण के साथ सखा-सखी का सम्बन्ध। जितने भी सम्बन्ध हैं, सबका इसमें समावेश है। एक मानी में यह कहना सही होगा माँ-बेटे बाप बेटी, भाई-बहिन प्रेमी प्रेमिका सब सम्बन्धों का अगर किसी तरह जोड़ दो और फिर उसका कोई निचोड़ निकालो तो सम्भवतः वह सखा-सखी वाला होगा। वह दिल को दुनियाँ का और समाज का बहुत ही एक बनाने वाला सम्बन्ध है।[2] वास्तव में सखा-सखी का सम्बन्ध नर-नारी के बीच समता, सहृदयता और सामञ्जस्य स्थापित करता है और समाजवाद के लिए मार्ग प्रशस्त करता है।

संक्षेप में डॉ० लोहिया ने नर-नारी के बीच व्याप्त बहुरूपी असमानताओं का सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन किया उन पर गम्भीरता से विचार किया और भविष्य के लिए पथ निश्चित किया। शताब्दियों से चली आ रही नर-नारी

• • • • •

1—इन्दुमति केलकर लोहिया सिद्धान्त और कर्म पृष्ठ 18
2—डॉ लोहिया कर्मकाण्ड, पृष्ठ 163

असमानता को लोहिया ने समाजवाद के मार्ग मे बहुत बडी बाधा माना। वास्तव में नर-नारी असमानता ही समाज की अन्य असमानताओ का सम्भवत आधार है और यदि आधार नही तो समाज म अन्याय और असमानताओ की जितनी भी चट्टानें हैं, जो समाजवाद की सुखद धारा का अबाध रूप से बहन नहीं देती उनम मे यह चट्टान सबसे बडी चट्टान है। इसलिए यदि वास्तव मे समाजवाद की स्थापना करनी है तो हिन्दू नर के पक्षपाती दिमाग को ठोकर मार मार करके बदलना है। नर-नारी के बीच म बराबरी कायम करना है।'[1]

अस्पृश्यता निवारण

अस्पृश्यता जाति प्रथा का आवश्यक परिणाम है क्योकि जो जाति प्रथा समाज म न्याय स्थिरता के लिए निर्मित की गयी थी उसी से कालान्तर मे छोट बडे, ऊँच नीच की धारणा का प्रादुर्भाव हुआ। शन शनै यह ऊँच-नीच और छाट बडे की भावना इतनी अधिक गहन हो गयी कि शूद्रों के प्रति घृणा का भाव जमा जिसके परिणामस्वरूप उच्च जातियाँ—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वश्य—शूद्रो से शारीरिक अलगाव रखने लगी और उन्ह छूना भी पाप समझने लगी। इस प्रकार छुआ-छूत की समस्या भारत मे उत्पन्न हुई, जिसके समाधान के लिए समय समय पर प्रयास होते रहे। अस्पृश्यता की इस निशाचरी प्रवत्ति को समूल समाप्त करने के लिए बुद्ध अशोक नानक विवेकानन्द गाधी, नेहरू आदि प्रयत्नशील रहे किन्तु आज भी समाज का इस प्रवत्ति मे मुक्ति प्राप्त नही।

डॉ० लोहिया ने इस दिशा म अत्यधिक प्रयास किये। जाति पर उनके कठोर प्रहार से केवल अस्पृश्यता निवारण ही नही होता है अपितु अस्पृश्य अथवा हरिजन से उच्च जातियो के घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित होते हैं। उन्होंने शादी विवाह, भोज रस्म रीति रिवाज सभी मे उच्च जातियो की पृथक्ता वाली नीति की कठोर आलोचना की और इस प्रकार के सिद्धान्त और कम प्रतिष्ठित किये जिनसे हरिजन, शूद्र तथा उच्च जातियाँ सबकी सब एक ही गृह के सदस्यों की तरह जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं। उन्होंने हरिजनो को तो समाज मे उच्च स्थान दिया ही है साथ-साथ ही पशुओ के लिए भी उचित व्यवहार की प्रेरणा दी। कलकत्ता के चिडियाघर

* * * * *

1—डॉ० लोहिया जाति प्रथा पृष्ठ 165

मे प्रसन्न पशुओ को देखकर उनका हृदय जितना प्रफुल्लित होता था उतना ही कष्ट कलकत्ता के बाजारो मे कछुओ का बोटी-बोटी कटते और तडपते देखकर होता था। इस प्रकार के दृश्य को देखकर ही उन्होने कहा था, 'हिन्दुस्तान का मौजूदा मन बडा क्रूर और स्वेच्छाचारी हो गया है। जानवरो का दोस्त तो मै हमेशा से रहा हूँ, लेकिन अब और भी ज्यादा।[1]

डॉ० लोहिया के हृदय म हरिजनो के प्रति अगाध प्रेम सहानुभूति और श्रद्धा थी। सन १९५७ ई० की बात है गुमटही मे एक हरिजन की मृत्यु हो गयी थी। बाद म उसका पुत्र भी भूख से मर गया था। उसकी विधवा पत्नी और बच्चे मरणासन्न थे। इस घटना न उनके हृदय को हिला दिया। लखनऊ जेल से जेल मन्त्री को उन्होंने एक पत्र लिखा, जिसम हरिजनो की दुर्दशा साकार हो उठी 'ऐसे हजारो बिन रोटी तडप रहे हैं और मर रहे हैं। पेट की आग कभी सुबह तो कभी शाम कराडो को झुलसा रही है। कही कोई माँ अपने बच्चे को ठीक कपडा न पहनाते हुए आसू बहा रही है। कही कोई बाप अपने बच्चे को दवा न दे सकने या ठीक पढा न सकने के कारण माथा ठोक रहा है चाहे मन ही मन।'[2]

डॉ० लोहिया ने अस्पृश्यता को हिन्दू जाति पर एक बहुत बडा कलक माना और उसके निवारणार्थ सत्याग्रह भी किये। अस्पृश्यता अपराध कानून' के पश्चात भी विश्वनाथ मन्दिर म हरिजनो को प्रवेश न दिया गया। इस पर उन्होंने हरिजन मन्दिर प्रवेश आन्दोलन चलाया। आन्दोलन-कर्त्ताओ के प्रति बहुत निर्दय व्यवहार किया गया। अन्त मे उत्तर प्रदेश शासन को 'मन्दिर प्रवेश अधिकार घोषणा' विधेयक पारित करना पडा और उस पर शीघ्र कार्यान्वयन का आश्वासन देना पडा। इस आश्वासन पर टिप्पणी करते हुए डा० लोहिया ने हरिजनो के पूजा पाठ के समान अधिकारो पर बल दिया 'सरकार के इस आश्वासन के बाद यह सम्भव हो जाता है कि बनारस और दूसरी जगह के मन्दिरो मे हरिजन सवर्ण भेद खत्म हो।'[3]

अस्पृश्यता उन्मूलन हेतु डॉ० लोहिया ने कहा कि हरिजनो को स्वाभिमान निर्भयता स्वास्थ्य सफाई तथा शिक्षा की अत्यावश्यकता है। उनके साथ मानवोचित व्यवहार किया जाना आवश्यक है। क्योंकि राष्ट्र के सर्वांगीण

* * * * *

1—डॉ० लोहिया वशिष्ठ और वाल्मीकि पृष्ठ 12
2—जेल मंत्री को लखनऊ जेल से डॉ० लोहिया का 20 12 57 का पत्र
3—लोहिया-भाषण सन् 1956 ई० दिसम्बर 16 19 नागपुर

उत्थान के लिए हरिजनों का उत्थान अत्यंत आवश्यक है। हरिजनों का उत्थान करने के लिए उनके साथ समता का व्यवहार किया जाना चाहिए। इस हेतु हरिजनों के लिए मन्दिर, विद्यालय, कुएँ, तालाब तथा अन्य इसी तरह की सुविधाओं के द्वार खुलने चाहिए। हरिजनों की उन्नति का आधार उनकी आध्यात्मिक और अन्तःकरण की स्वतन्त्रता है। इसलिए पूजा-पाठ, मन्दिर-प्रवेश आदि के समान अधिकार उन्हें प्राप्त होने चाहिए। डॉ० लोहिया का कहना था कि "अगर हरिजनों को मन्दिर में जाने से रोका जाता है तो और कोई भी नहीं जा सकेगा।[1] डॉ० लोहिया हरिजनों के लिए विशेष अवसर के सिद्धान्त को मानते थे। उनके विचार में औरत, शूद्र, हरिजन, मुसलमान, आदिवासी को साठ प्रतिशत सुरक्षित स्थान होना चाहिए। "पलना सबका बराबरी का मिले" के सिद्धान्त पर वे सभी विद्यालयों को एक समान कर देना चाहते थे।

जब तक व्यक्ति को अधिकार नहीं दिये जाते, वह कर्त्तव्य को पूर्ण रूपेण करने में असमर्थ रहता है। हरिजन आदि पिछड़ी जातियाँ शताब्दियों से पद दलित रही हैं। इसलिए उनकी बुद्धि कुण्ठित हो गई है उनके दिल भय से भर गये हैं, अशिक्षा और असभ्यता के वे शिकार हो गये हैं। अतः उन्हें अधिकार सौंपकर, उन्हें सुसंस्कृत एवं शिक्षित बनाकर ही हम उनमें आत्म-जागरण, साहस, कर्त्तव्य, त्याग और विश्वास के बीज बो सकते हैं। केवल तभी उनके मस्तिष्क का परिवर्तन हो सकता है और उनमें महान् राजनीतिज्ञ पंडित संत, दार्शनिक आदि पैदा हो सकते हैं जिससे देश स्वस्थ और सशक्त बन सकता है। डॉ० लोहिया ने उचित ही लिखा है कि ' इनके पुराने संस्कार, परम्परा परिपाटियों को बदल करके आदतों को बदल कर नई आदतें और नये संस्कार इनमें आएँ इनको नया मौका मिले। इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं रह गया है।'[2]

अस्पृश्यता निवारण एक नकारात्मक शब्द है। इस शब्द से केवल छुआ छूत न मानने का ही अर्थ निकलता है। इसका सकारात्मक पहलू है—अस्पृश्यों को अपने भाई के समान खान पान, शादी विवाह भोज तथा अन्य रस्मों में प्रेम के साथ सम्मिलित करना। हरिजनों में अपने को और अपने में हरिजनों को एकाकार कर लेना ही अस्पृश्यता निवारण का सही सकारात्मक रूप है

* * * * *

1—डॉ लोहिया जाति प्रथा पृष्ठ 24
2—वही पृष्ठ 113

जिसको लोहिया ने मन, वचन, कर्म के द्वारा व्यक्त किया था। अन्तर्जातीय विवाह उनके दिल और दिमाग का स्थायी भाव था। इसके अन्तर्गत वे द्विज-अद्विज अथवा ब्राह्मण भंगिन चमारिन-सेठ, भंगी-सेठानिन आदि के सम्बन्ध चाहते थे। वे कहा करते थे "क्या ब्राह्मण भंगिन से बच्चा पैदा नहीं कर सकता और क्या भंगी ब्राह्मणी से नहीं ?[1] डा० लोहिया अन्तर्जातीय ही नहीं, अपितु अन्तर्राष्ट्रीय विवाह के भी प्रबल समर्थक थे। उन्होंने 'समान प्रसव जाति" के सूत्र को केवल समझने के लिए नहीं, अपितु स्थायी मानसिक दशा के रूप में अपनाने के लिए विश्व-नागरिकों को जागृत किया।[2] हरिजन-कल्याण के लिए सहभोज को वे अचूक अस्त्र मानते थे। उनका कहना था कि 'एक पंक्ति में बैठकर और एक हंडिया का पका हुआ भोजन हो तो इससे कुछ असर पड़ेगा।'[3] उनके मतानुसार शासकीय सेवा के लिए अन्तर्जातीय विवाह एक योग्यता और सहभोज को अस्वीकार करना एक अयोग्यता मानी जानी चाहिए। केवल तभी जाति और अस्पृश्यता की समाप्ति सम्भव होगी।

अन्तर्राष्ट्रीय जगत में आज भारत अपमान की दृष्टि से देखा जाता है। इसका प्रधान कारण भारत में व्याप्त अस्पृश्यता की समस्या है। अस्पृश्यता के कारण हरिजन बहिष्कृत, असहाय, उदासीन और पतित हैं। हरिजनों के इस पतन के कारण ही भारत अविकसित है। फलत: अमेरिका और रूस जैसे विकसित देशों के समक्ष भारत स्वयं हरिजन जैसा प्रतीत होता है। भारत अन्तर्राष्ट्रीय जगत में उसी प्रकार उपेक्षित है जिस प्रकार अपने देश में हरिजन। इस प्रकार अस्पृश्यता की भावना ही राष्ट्रीय विघटन एवं अवनति तथा अन्तर्राष्ट्रीय अपमान एवं उपेक्षा का कारण है। इसलिए यदि राष्ट्रीय विकास एवं एकता लाना है और अन्तर्राष्ट्रीय जगत में सम्मान प्राप्त करना है तो हरिजनों को हर प्रकार से उन्नत करना होगा। डॉ० लोहिया ने इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि आज अन्तर्राष्ट्रीय जगत में हम रूसी और अमरीकियों के बीच बैठ नहीं सकते। हम उनकी बिरादरी में भंगी से भिन्न कुछ नहीं। अगर वे अपने देश में चमार, भंगी और शूद्र लोगों का बनाये रखेंगे तो दुनियाँ की पंचायत में वे भी शूद्र बन रहेंगे। अतः विश्व पंचायत में बराबरी हासिल करने का सपना साकार करने के लिए द्विजों को अपने २२ करोड़

* * * * *

1 व 2—डॉ० लोहिया जाति प्रथा पृष्ठ 19
3—डॉ० लोहिया देश विदेश नीति कुछ पहलू पृष्ठ 91

भाइयों को व्यक्तित्ववान बनाना आवश्यक है।"[1] इस प्रकार डॉ० लोहिया ने अस्पृश्यता की समस्या को भारत के अंतर्राष्ट्रीय सम्मान के साथ अपूर्व ढंग से जोड़ा। उनके उपर्युक्त वाक्य से यह भी स्पष्ट होता है कि वे राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर समाजवाद स्थापित करने के लिए अस्पृश्यता-निवारण आवश्यक मानते थे।

डा० लोहिया हरिजन-उत्थान के लिए राजनीति में उनको नेतृत्व के उच्च पदों पर आसीन करना चाहते थे। उन्होंने हरिजनों में से नेता निकालने के लिए उनके संरक्षण की आवश्यकता अनुभव की। अभी तक गांधी जी के संरक्षण के कारण ही हरिजनों में से कुछ नेता निकल सके। अब पुनः उन्हें संरक्षण की आवश्यकता है। किन्तु हरिजन-नेताओं को भी कुछ बुराइयों से सजग रहना पड़ेगा। उन्हें कटुता और चापलूसी दोनों ही प्रकार की प्रवृत्तियों से पृथक रहना चाहिए। अरस्तू और बुद्ध के मध्यम स्वर्णिम मार्ग का उन्हें प्रतीक होना चाहिए। वे केवल अपने वर्ग के ही नेता न हों, बल्कि समग्र राष्ट्र के कर्णधार हों। डा० लोहिया ने इस सम्बन्ध में लिखा है "मैं चाहता हूँ कि पिछड़ी जातियों में से नेता निकलें जो चापलूस भी न हों और नफरत फैलाने वाले भी न हों और मध्यम तथा स्वाभिमानी मार्ग पर चलकर सारे हिंदुस्तान और देश के सभी लोगों के नेता बनें।"[2] प्रायः देखा यह जाता है कि जब हरिजनों अथवा शूद्रों में से कोई नेता बन जाता है तो वह उच्च जाति की बुराइयों को स्वयं अपना लेता है। इस वृत्ति से हरिजन नेताओं को बचना चाहिए, तभी वे महात्मा गांधी के द्वारा चाहे गये आदर्श को पूर्ण कर अपने वर्ग एवं राष्ट्र का उत्थान कर सकेंगे।

रंगभेद-नीति-उन्मूलन

आर्थिक समता का सिद्धान्त समाजवाद का एक सीधा-सादा और मोटा पहलू है। सच्चे समाजवादी विचारक के सामने ऐसे कई क्षेत्र आते हैं जहाँ वह शान्ति की आवश्यकता अनुभव करता है। उनके विचारों में शारीरिक समता का सिद्धान्त कम महत्त्वपूर्ण नहीं होता। किसी व्यक्ति को केवल इसलिए हेय समझना उचित नहीं कि उसका अंग विशेष छोटा या बड़ा है। यही बात रंग के बारे में कही जा सकती है। प्रायः लोग गोरे व्यक्तियों को सुन्दर और काले व्यक्तियों को असुन्दर मानते हैं परन्तु यह सही विचार नहीं है। डॉ०

* * * * *

1—डॉ० लोहिया जाति प्रथा पृष्ठ 35

2—हैदराबाद 4-9-57 कल्पापुरी को डॉ० लोहिया द्वारा लिखे गये पत्र से।

लोहिया ने इस गलत धारणा का खण्डन करते हुए लिखा है "The colour of the skin is no criterion of beauty or any other type of superiority, and yet the fair of colour and the beautiful are words of similar meaning not alone in the white lands of Europe but more so in the sultrier climes of Asia or the Americas On merit this distortion of aesthetics is inexplicable' [1]

यद्यपि सौन्दर्य के विषय मे आधुनिक भारत मे भी उपर्युक्त गलत धारणा व्याप्त है। परन्तु प्राचीन भारत का दृष्टिकोण इसके विपरीत और सही था। कालिदास की श्यामा श्यामा होते हुए भी अपने मे ढेर सारा सौन्दर्य समेटे हुए थी। द्रौपदी का रग भी साँवला बताया जाता है परन्तु वह अत्यन्त प्रबुद्ध महिला थी। उसकी उपेक्षा का कारण उसका साँवलापन नही बल्कि उसका पाँच पतियो का पत्नी होना था जिसे पुरुष वर्ग अपने दर्प के कारण अच्छा नही समझता। राम और कृष्ण जिन्हे ईश्वर का अवतार माना जाता है, काले या सावले रग के थे। गोरी राधा का साँवले कृष्ण के प्रति प्रेम तो सर्वविदित है ही। भारत और मिस्र जैसे सावले देशो की अद्वितीय सभ्यताओ से विश्व मे कौन परिचित नही है? ये महानतम सभ्यताएँ प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण को प्रमाणित करती हैं। वास्तव मे सौन्दर्य बुद्धि अथवा विवेक का रग से कोई सम्बन्ध नही। दुर्भाग्य का विषय है कि बाद मे भारत ने सुन्दरता और गोरे रग को पर्यायवाची मानना प्रारम्भ कर दिया।

डा० लोहिया के अनुसार त्वचा के रग का सुन्दरता का मापदण्ड नही माना जा सकता। गोरा व्यक्ति भी सुन्दर हो सकता है और काला भी। विश्व की सौन्दर्य प्रतियोगिताओ मे अभी तक गोरी स्त्रियो का चयन होता रहा है परन्तु अब निर्णायको के दृष्टिकोण मे सुधार होना शुरू हुआ है। वे काले रग की स्त्रियो के सौन्दर्य का भी समझने लगे हैं। वास्तव मे सुन्दरता का सम्बन्ध रग से नही होता। सुन्दरता सीने, कमर और कूल्हे की सुडोलता पर निर्भर करती है। अभी हाल ही मे एक भारतीय महिला को विश्व सुन्दरी घोषित किया गया था। डा० लोहिया ने आसामी और तामिल महिलाओं के सौन्दर्य की भूरि भूरि प्रशसा की है। लोहिया नीग्रो-औरतो के सौन्दर्य के प्रति जागरूक थे। 'मेरी राय मे जो नीग्रो-औरतें मैंने देखी हैं उनके शरीर के गठन

* * * * *

1—Dr Lohia Interval During Politics p 133

को देखकर उन्हें दुनियाँ मे कहीं भी किसी भी खूबसूरत औरतों की पंक्ति मे खड़ा किया जा सकता है।'[1]

क्या कारण है कि गोरे रंग को सुन्दर और काले रंग को असुन्दर माना जाता है? हम जानते हैं कि मान्यता सिद्धांत या धारणा की स्थापना शक्तिशाली लोग ही करते हैं और हर सिद्धान्त बनाने वाला व्यक्ति या वर्ग सिद्धान्तों का निर्माण इस प्रकार करता है कि वे उसके हित मे हो। सुन्दरता के विषय मे व्याप्त धारणा का कारण राजनैतिक रहा है। जिस रंग का राज्य स्थापित हो जाता है, वही रंग दूसरे रंगों की अपेक्षा अच्छा समझा जाने लगता है। इन रंगों से सुन्दरता का कोई सम्बन्ध नहीं है, बुद्धि या दिमाग का सम्बन्ध है नहीं।'[2] केवल इस कारण से कि ३०० ४०० बरसो मे ससार पर गोरे लोगो का राज्य रहा है इसलिए गोरे लोग ही आज सुन्दर और बुद्धिमान समझे जाते हैं। यदि अफ्रीका के नीग्रो लोग गोरो की तरह दुनिया मे शासन किये होते तो सौन्दर्य और बुद्धि का प्रतीक काला या साँवला रंग होता। कवि और चित्रकार नीग्रो की सुन्दरताओ का यश गाये होते। क्योंकि जैसे-जैसे राजकीय शक्ति बढ़ती है वैसे-वैसे जिनके हाथ मे राजकीय शक्ति होती है उनके स्वरूप, रंग, रूप, रेख इत्यादि का भी सम्मान बनने लगता है। जिनके पास राज्य और सम्पत्ति होती है, उनके रूप, रेख, रंग आदि कवियो, लेखकों और शास्त्रियों के लिए अच्छे बन जाते हैं। डॉ० लोहिया ने उचित ही लिखा है 'Politics influence aesthetics, power also looks beautiful, particularly unequalled power'[3]

इसमे सन्देह नहीं कि काले लोगो के साथ अत्यन्त अपमान-जनक व्यवहार होता रहा है। दक्षिण अफ्रीका मे गोरे लोगों ने काले लोगों के साथ ऐसा व्यवहार किया जैसा कि पशुओ के साथ भी नहीं किया जाता। ट्रान्सवाल के मौलिक संविधान मे एक उपवाक्य था, 'There shall be no equality between black and white either in church or in State'[4] यह तो रही संविधान की बात। व्यवहार मे इसका अत्यन्त भ्रष्ट रूप देखने मे आया। शायद भारत मे हरिजनो के साथ ऐसा घृणित व्यवहार नहीं किया

* * * * *

1—डॉ० लोहिया जाति प्रथा, पृष्ठ 25

2—वही पृष्ठ 23

3—Dr Lohia Interval During Politics p 137

4—Everyman s Encyclopaedia Reset Revised edition Vol 3 can to cop (fourth edition) p 638

गया। जब महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका गये तो काले होने के कारण गोरों ने उनके साथ ऐसा ही व्यवहार किया जैसा कि वे वहाँ पर काले लोगो पर करते थे। अमेरिका मे नीग्रो लोगो के साथ भी अत्यन्त अपमान जनक व्यवहार होता रहा है। स्वय डॉ० लोहिया को काले रग के कारण अमेरिका के एक होटल मे घुसने से मना किया गया। लोहिया के न मानने पर उन्हें गिरफ्तार किया गया और थोडी देर बाद उन्हे छोड दिया गया। यद्यपि सरकारी प्रतिनिधि ने लोहिया से मौखिक रूप से क्षमा माँगी, किन्तु लोहिया ने कडे शब्दो मे उससे कहा, "मुझसे माफी माँगने मे क्या मतलब ? माफी तो अमरीकी राष्ट्रपति को दुनियाँ के तमाम अश्वेतो से माँगनी चाहिए जिनके प्रति गोरी चमडी वाले अन्याय कर रहे हैं।"[1] इन्ही अन्यायो की ओर इंगित करते हुए डॉ० लोहिया ने लिखा है 'The tyranny of colour is among the great oppressions of the world All women are oppressed and mankind is the poorer for lack of adequate expression to their talents or gifts Coloured women who are more numerous suffer great oppression They are reared on a diet of anxiety and inferiority '[2]

इस प्रकार की रग निरकुशता के लिए गोरे व्यक्ति उत्तरदायी हैं किन्तु उनसे भी अधिक काले व्यक्ति। काले व्यक्ति अपने मे हीन भाव रखते हैं। वे विभिन्न कृत्रिम साधनो द्वारा गोरे बनने का प्रयत्न करते हैं। गोरे बनने की उनकी यह प्रवृत्ति सक्रामक रोग की तरह निरतर फैलती जाती है और रग निरकुशता को शक्ति प्रदान करती जाती है। डॉ० लोहिया ने इस तथ्य की विवेचना करते हुए लिखा है 'All the world suffiers this tyranny of skin s colour a tyranny made worse because the tyrants do not practise it as much as the slaves who inflect upon themselves '[3] काले लोगो का इस प्रकार की मनोवृत्ति त्याग देनी चाहिए। अब समय आ गया है कि काले लोगो को जिनका बहुमत है गोरे लोगो द्वारा बनाई गई इस गलत और थोथी धारणा का उन्मूलन कर देना चाहिए। इस सिद्धान्त हीन भ्रष्ट और अमानवीय धारणा के विरुद्ध एक क्रान्ति की आवश्यकता है।

* * * * *

1—ओंकार शरद लोहिया पृष्ठ 283
2—Dr Lohia Interval During Politics p 138 39 —
3—Ibid., p 139

वास्तव में समाजवाद की स्थापना के लिए आर्थिक और राजनैतिक क्रांति जितनी आवश्यक है उतनी ही रंग भेद के विरुद्ध क्रांति। डॉ० लोहिया ने उचित ही लिखा है, 'An aesthetic revolution in the evaluation of beauty and its relation to the colour of the skin will blow the air of freedom and inner peace over all the world almost as much as any political or economic revolutions'[1]

साम्प्रदायिकता की समस्या

यद्यपि आज हमारे जीवन में धर्म का अधिक महत्व नहीं है, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि धर्म ने विश्व इतिहास के निर्माण में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। धर्म के मुख्यतः दो पहलू होते हैं—आन्तरिक एवं बाह्य। धर्म का आन्तरिक पहलू समन्वयवादी और मानवतावादी है। यह आदर्श और शाश्वत होता है। जीवन के समस्त आदर्शों और सम्कृतियों के नैतिक मूल्य इसमें समाहित रहते हैं। धर्म के इस पहलू के महत्व को स्वीकार करते हुए डॉ० लोहिया ने कहा है कि 'मुझे ऐसा लगता है कि धर्म, सम्प्रदाय के अर्थ में मतलब हिन्दू धर्म, इस्लाम धर्म, ईसाई धर्म और फिर हिन्दू धर्म के अन्दर भी वैष्णव धर्म शैव धर्म वगैरह जो कुछ भी हो, उनका अर्थ सबके लिए व्यापक होना चाहिए, और वह है दरिद्रनारायण वाला जो सब लोगों के हित का हो।'[2] धर्म का बाह्य पहलू एक धर्म विशेष के रीति रिवाज, आचार विचार पूजा के ढंग तथा उसके बाह्य आचरण के अन्य ढंगों से सम्बन्धित होता है। धर्म का यह पहलू आडम्बरयुक्त पृथकतावादी तथा संकुचित होता है। इस पहलू से ही विभिन्न सम्प्रदायों का उदय हुआ है। सम्प्रदाय साम्प्रदायिकता को जन्म देता है। साम्प्रदायिकता उस सीमा तक क्षम्य है जहाँ तक कि वह अपने लोगों की सांस्कृतिक उन्नति में सहायक होती है। साम्प्रदायिकता वहीं दूषित हो जाता है, जहाँ पर वह अपने लोगों के लिए दूसरों की अपेक्षा विशेषाधिकार चाहने लगती है। धर्म के बाह्य पहलू ने बहुधा दूषित साम्प्रदायिकता को ही जन्म दिया है, जो समाज में विघटन, ईर्ष्या, घृणा और पतन का कारण बनती है। सी० सी० कॉटन ने उचित ही कहा है Where true religion has prevented one crime false religion has afforded a pretext for a thousand

* * * * *

1—Dr Lohia Interval During Politics p 140
2—डॉ० लोहिया धर्म पर एक दृष्टि पृष्ठ 4

धर्म के इसी झूठे और बाह्य पहलू के कारण भारतवर्ष में साम्प्रदायिकता की समस्या उत्पन्न हुई। हिन्दू और मुसलमान के बीच वैमनस्य की खाई बहुत गहरी हो गयी। एक को दूसरे पर विश्वास नहीं रहा। दोनों धर्मों ने अपने जीवन को परस्पर भय और आशंका की काल कोठरी में बन्द कर लिया। इसी के परिणामस्वरूप देश का विभाजन हुआ। देश विभाजन के पश्चात् भी अधिक नहीं तो कुछ कम रूप में साम्प्रदायिकता की समस्या रही है और आज भी विद्यमान है। डॉ० लोहिया ने इस प्रकार की विषाक्त स्थिति पर गम्भीर चिन्ता व्यक्त करते हुए लिखा है, 'इस वक्त हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के लोग तो बँटे हुए हैं खाली हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के हिसाब से नहीं, और भी, हिन्दू मुसलमान जाति के हिसाब से दिमाग में हम लोगों के कूड़े हैं। आज हिन्दू और मुसलमान दिमाग दोनों के अन्दर कम या ज्यादा कूड़ा भरा हुआ है। दिमाग में भी झाड़ू देनी पड़ती है।[1]

साम्प्रदायिकता के कारण —भारत में व्याप्त इस साम्प्रदायिक समस्या के कई कारण हैं जिनमें हिन्दू मुसलमान मन की मिथ्या धारणा प्रमुख है। हिन्दू के मन में एक गलत धारणा है कि मुसलमानों ने उन पर ७०० ८०० वर्ष तक शासन किया और उनके तन मन धन को विनष्ट किया। इसी प्रकार मुसलमान भी कुछ थोथे विचारों के शिकार हैं। हिन्दुओं पर निर्बाध शासन की स्मृति उनको पीडित करती रहती है। आधुनिक भारत में उनके गिरे हुए दिन उनको हिन्दुओं के प्रति ईर्ष्यालु बनाते रहते हैं। हिन्दू और मुसलमान के इन विद्वेषपूर्ण मनोभावों की विवेचना करते हुए डा० लोहिया कहते हैं, आमतौर से जो भ्रम हिन्दू और मुसलमान दोनों के मन में है वह यह कि हिन्दू सोचता है पिछले ७०० ८०० वर्ष तो मुसलमानों का राज्य रहा, मुसलमानों ने जुल्म किया और अत्याचार किया, और मुसलमान सोचता है चाहे वह गरीब से गरीब क्या न हो, कि ७०० ८०० वर्ष तक हमारा राज था, अब हमको बुरे दिन देखने पड़ रहे हैं।[2]

हिन्दू और मुसलमान के बीच मनमुटाव और मिथ्या धारणा का कारण इतिहास की गलत व्याख्या है। डा० लोहिया की दृष्टि में इतिहास के गलत लिखे जाने और उस गलत समझे जाने के बहुत ही भयंकर परिणाम होते हैं। उन्होंने तर्क प्रस्तुत किया इतिहास है क्या ?—इतिहास है अतीत का बोध

* * * * *

1—डॉ० लोहिया देश गरमाओ पृष्ठ 79

2—लोहिया-भाषण 1963 अक्टूबर 3, हैदराबाद

और अतीत का बोध भविष्य और वर्तमान का निर्माता। अगर गलत समझते हैं तो गलत ढंग से वर्तमान और भविष्य बनता है।"[1] डॉ० लोहिया के विचारानुसार इतिहासकारों ने इतिहास को इतने खराब ढंग से गढ़ा है कि वह हिन्दू और मुसलमान में द्वेष और घृणा का भाव भरता है। इतिहास ने गजनी, गोरी और बाबर जैसे आक्रमणकारियों और लुटेरों की पंक्ति में रजिया, शेरशाह और जायसी जैसे देश रक्षकों को रखकर महान् भूल की है। इस गलत इतिहास ने भारतीय मन पर 'हिन्दू बनाम मुसलमान' की दुखद छाप डाली है।

इतिहास ने कभी-कभी आधा सत्य लिख कर भी पाठकों का सत्य के विपरीत दिशा दी है। डॉ० लोहिया ने २६ अप्रैल सन् १९६६ ई० को लोक सभा में एक उदाहरण देकर इसको स्पष्ट भी किया था "मन्दिर टूटे मध्य-कालीन युग में। अब उसको इतिहास में लिखा जाता है। अगर सिर्फ इतना ही लिख दिया जाय कि मुसलमान विजेताओं ने आकर मन्दिर तोड़े तो वह बात सही जरूर है लेकिन अधूरी सही है सिर्फ एक पहलू है। ऐसा लिखा तो इतिहास एक गुस्सा भर बनकर रह जाता है। लेकिन उसके साथ-साथ यह भी रखा जाय जो आधे सच को पूरा बनाता है कि उस वक्त के हमारे पुरखे कितने नालायक थे कि वह परदेशी आक्रमणकारियों को रोक न पाये तो किसी हद तक इतिहास पूरा बन जाता है और फिर इतिहास एक दर्द के रूप में हमारे सामने आ जाता है।"[2]

भारतीय भूमि में इस साम्प्रदायिक बीज को पालने का श्रेय अंग्रेजों पर कम नहीं है। फोड़ो और राज्य करो की उनकी नीति ने हिन्दू मुसलमान को ३६ का अंक बनाकर रख दिया। पृथक निर्वाचन भेदात्मक और असमान नीति, साम्प्रदायिकतापूर्ण मिथ्या आश्वासन आदि ऐसे अचूक अस्त्रों से ब्रितानी शासन ने हिन्दू मुसलमानों के संयुक्त जीवन को भेद डाला। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान भी 'ब्रितानी साम्राज्य की आखिरी साजिश' का परिणाम है।

डॉ० लोहिया के अनुसार साम्प्रदायिकता का कारण बहुत कुछ भारत की वर्तमान राजनीति भी है। डॉ० लोहिया का कहना है कि भारतीय राजनीतिज्ञ साधारणतः सभाएँ नहीं करते और न ही सत्य सिद्धान्तों का प्रचार कर साम्प्रदायिकता समाप्त करना चाहते हैं। चुनावों के समय मत और समर्थन की आशा में उन्हें भाषण देना पड़ता है, किन्तु उन भाषणों में भी वे हिन्दू

* * * * *

1—26 अप्रैल सन् 1966 ई० को लोक सभा में डॉ० लोहिया द्वारा दिये गये भाषण से
2—वही

मुसलमान की असन्तुष्टि के भय से सत्य कहने से कतराते हैं। हिन्दू मुसलमान में परस्पर जो भी घृणा और द्वेष का भाव है उसको आधुनिक राजनीतिज्ञ दोनो को सतुष्ट करन के लिए ज्यो का त्या छोड देते है। डा० लोहिया के स्वय के शब्दो मे, 'हिन्दुस्तान मे जितनी भी पार्टियाँ हैं वे हिन्दू मुसलमान को बदलने की बात बिल्कुल नही करती हैं। मन मे जो पुराना कूडा पडा हुआ है, जो गलतफहमी है, जो भ्रम है, उन्ही को तसल्ली दे दिलाकर वोट ले लेना चाहते है। यह है आज हमारे राजनीतिक जीवन की सबसे बडी खराबी कि हम लोग वोट के राज म नेता लोग खास तौर से सच्ची बात कहने से घबडा जाते है। इसका नतीजा है कि हिन्दू और मुसलमान दोनो का मन खराब रह जाता है बदल नही पाता।[1]

साम्प्रदायिकता का निवारण —जब तक इस कट साम्प्रदायिकता का अन्त नही होता समाज म समता, सम्पन्नता और सहयोग की स्थिति नही आ सकती। *इसलिए साम्प्रदायिकता समाप्ति के प्रयास निरन्तर और निष्ठा के* साथ होने चाहिए। डॉ० लोहिया के मत मे मुख्यत पाच प्रकार के सुधार इस दिशा मे किये जा सकते है (१) हृदय-परिवर्तन (२) इतिहास की सही व्याख्या (३) राजनीति मे सुधार (४) भाषा सम्बन्धी उदार नीति (५) धार्मिक प्रयास।

साम्प्रदायिकता-समाप्ति हेतु हृदय परिवर्तन का प्रयास बहुत महत्व का होता है। सन् १९४६ ई० मे हिन्दू मुसलमान की साम्प्रदायिकता के कारण खून की नदियाँ बही। उस समय महात्मा गाधी डा० लोहिया आदि ने हृदय परिवर्तन क प्रयास किये। हिन्दू मुस्लिम एकता और साम्प्रदायिकता के विष का शमन ही डा० लोहिया का उस समय प्रमुख कार्यक्रम बना। कलकत्ते मे लोहिया न दल के सदस्यो के साथ गण फौज नामक एक स्वय सेवक सगठन भी बनाया। काशीपुर मे एक राहत केन्द्र भी खोला।[2] यद्यपि उन्ह उस भीषण मारकाट की स्थिति मे केवल आंशिक सफलता ही प्राप्त हुई, परन्तु इस तथ्य से मुख नही मोडा जा सकता कि सामान्य स्थिति म हृदय परिवर्तन के प्रयत्न बहुत ही प्रभावशाली होते हैं। कबीर नानक और सूफी सन्तो ने इस दिशा म अधिक कार्य किये हैं। कबीर ने तो 'शीश उतारे भुइ धरे ताप राखे पर का सन्देश देकर आत्म त्याग भक्ति के लिए हिन्दू मुसलमान को प्रेरित किया है। डॉ० लोहिया ने भी न्याय, उदारता और दृढता से हिन्दू और मुसलमान मन

* * * * *

1—डॉ लोहिया हिन्दू और मुसलमान पृ० 8
2—ओंकार शरद लोहिया पृ० 187

के खार को ढूढने, प्रतिदिन खोदकर उखाडने और शमन करने की प्रेरणा दी है। उन्होने कहा था कि हिन्दुस्तान के मुसलमानो को सच्चे दिल से देश भक्त बनाना है 'और उन्हे भक्त बनाने के लिए मन बदलना होगा, दोनो का, हिन्दू का भी और मुसलमान का ।[1]

डा० लोहिया के मतानुसार उनके मन बदलने और उनमे से साम्प्रदायिकता का भाव समाप्त करने के लिए इतिहास को सही ढग से लिखा और समझा जाना आवश्यक है। डा० लोहिया ने इतिहास का सूक्ष्म अवलोकन और विवेचन कर यह स्पष्ट किया कि इतिहास हिन्दू मुसलमान एकता से पूर्ण है। उसमे कही कोई साम्प्रदायिकता नही है। इतिहास पर सही दृष्टि रखकर ही हम इस सत्य को समझ सकते है कि पिछले ७०० ८०० वर्ष के युद्धो मे मुसलमान ने हिन्दू को नही अपितु विदेशी मुसलमान ने देशी मुसलमान को भी मौत के घाट उतारा है। उन्होने यह सिद्ध किया कि ये युद्ध हिन्दू और मुसलमान के बीच नही, अपितु देशी और विदेशी के बीच हुए। 'सिल्यूकस विदेशी और चन्द्रगुप्त देशी, गजनी विदेशी और शेरशाह देशी, हूण विदेशी और राणा सागा देशी, बाबर विदेशी बहादुरशाह देशी, इस तरह से हिन्दुस्तान का इतिहास पढना होगा।'[2] विदेशी मुसलमान यदि हम सबके लिए आक्रामक थे तो देशी मुसलमान हम सबके रक्षक। उनके मत मे जो मुसलमान गजनी, गोरी और बाबर को आक्रामक नही मानता तथा अशोक, तुलसी और कबीर को अपना पूर्वज नही मानता, वह इस देश की स्वतन्त्रता की रक्षा नही कर सकता। वह हिन्दू भी जो रजिया, शेरशाह, जायसी अकबर रहीम आदि को अपना पुरखा नही मानता, वह इस देश की स्वतन्त्रता का अर्थ नही समझता।

हिन्दू मुसलमान को इस तथ्य से पूर्णत परिचित कराने के लिए डॉ० लोहिया की योजना थी, कि हरेक बच्चे को सिखाया जाय हर एक स्कूल मे, घर घर मे, क्या हिन्दू क्या मुसलमान बच्ची बच्चे को कि रजिया शेरशाह, जायसी वगैरह हम सबके पुरखे है हिन्दू मुसलमान दोनो के—लेकिन, उसके साथ-साथ मै चाहता हूँ कि हम मे से हर एक आदमी, क्या हिन्दू क्या मुसलमान यह कहना सीख जाय कि गजनी, गोरी और बाबर लुटेरे थे और हमलावर थे।[3] केवल तब ही हिन्दू और मुसलमान विदेशी और आक्रामक के

* * * * *

1—डा० लोहिया वशिष्ठ और वाल्मीकि, पृष्ठ 9
2—वही, पृष्ठ 6
3—डॉ० लोहिया हिन्दू और मुसलमान पृष्ठ 3

प्रति घणा तथा देशी और ग्क्षक के प्रति प्रेम रखकर राष्ट्रीय एकता के सूत्र म बँध सकगे और समाजवाद के लिए माग तयार कर सकेंगे।

डा० लोहिया का उपर्युक्त दष्टिकोण यह स्पष्ट करता है कि इतिहास को सूक्ष्म सही और मौलिक दष्टि से देखन मे उन्ह कितनी रुचि थी। वास्तव म यदि डा० लोहिया वाली दष्टि को इतिहास लिखते और पढते समय अपनाया जाय तो भारत मे हिन्दू और मुसलमान के बीच खाइ पट सकती है और परस्पर द्वेष तथा घणा का वातावरण समाप्त होकर आपस मे प्रेम और सहयोग का वातावरण निर्मित हो सकता है जो कि राष्ट्रीय एकता और धम निरपेक्षता के लिए अत्यन्त महत्त्वपूण होगा। डा० लोहिया की इस दृष्टि स यह भी स्पष्ट होता है कि डा० लोहिया समस्या के मूल का ढूढन और उसे विनष्ट करन में अन्य समाज-सुधारको की अपेक्षा कितने अधिक स्पष्ट, प्रभावशाली एव सफल थे।

साम्प्रदायिकता का अन्त करन के लिए डा० लोहिया आधुनिक राजनीति म भी परिवतन चाहते थ। उन्होन जीवन के प्रत्यक पहलू मे हिन्दू बनाम मुसलमान' क स्थान पर हिन्दू और मुसलमान' का सिद्धान्त स्थापित किया। वे राजनीति को 'हिन्दू बनाम मुसलमान के परिवेश मे देखना सबसे अधिक हानिप्रद मानते थे। उनकी स्पष्टोक्ति थी, साफ सी बात है कि मुसलमान जसी चीज नही रहनी चाहिए राजनीति म। टूट जाना चाहिए। जसे हिन्दू टूटते हैं अलग अलग पार्टियो म वस मुसलमानो को भी टूटना चाहिए।'[1] डा० लोहिया ने बडे दुख के साथ यह अनुभव किया कि जहाँ तक मुसलमान से वास्ता है, वह हमशा एक टुकडी म चला है। आज भी वह लगभग एक साथ जाता है हमशा कोइ न कोइ इत्तेहाद बनाता है। इसलिए उन्होन हिन्दुओं और मुसलमानो का एक जुलूस मे चलन जगह जगह समता का प्रचार करन और सम्पूण दश मे एकता की बिजली दौडान के लिए आह्वान किया। उनके विचार म साम्प्रदायिकता का अन्त कवल उस समय हो सकता है, जब लोग हिन्दू और मुसलमान की हैसियत मे इकट्ठा नही होग, बल्कि अपनी नजर से कि हमको कौन सी राजनीति करनी है।'[2]

साम्प्रदायिकता समाप्ति क लिए डॉ० लोहिया चाहत थे कि मुसलमानो क भाषा भय को भी दूर किया जाय। हिन्दी क नाम स मुसलमानों का सन्देह हो

* * * * *

1—लोहिया-भाषण सन 1963 ई अक्तूबर 3 हैदराबाद
2—वही

सकता है कि शायद उनकी भाषा उर्दू की उपेक्षा की जा रही है। इसके लिए डा० लोहिया ने स्पष्ट कहा था "उर्दू जबान हिन्दुस्तान की जबान है और उसका वही रुतबा होना चाहिए जो हिन्दुस्तान की किसी जबान का।[1] डॉ० लोहिया का कहना था कि यदि फिर से देश एक हुआ तो उसकी भाषा चालू भाषा होगी जो कि "पाली और संस्कृत की औलाद है लेकिन वह अपभ्रंश वाला, जो जनता में टूट टाट गयी। अपभ्रंश में तो फारसी के भी शब्द आ जाते हैं, अरबी के भी आ जाते हैं।'[2] डा० लोहिया की सबसे बडी विशेषता यह है कि जिस प्रकार उनका व्यक्तित्व समन्वयवादी है, उसी प्रकार उनकी भाषा भी।

डा० लोहिया का विचार है कि साम्प्रदायिकता समाप्त करने के लिए धर्मान्धता और धार्मिक कट्टरता का भी अन्त करना आवश्यक है। हिन्दू-मुसलमान एकता के लिए धर्म का बाह्य पहलू एक बहुत बडी खाई के रूप में हमारे समक्ष आता है जिसको पाटना चाहिए। इस हेतु महात्मा गांधी चाहते थे कि हिन्दू और मुसलमान 'ईश्वर अल्ला तेरो नाम" के अद्वैतवादी आदर्श को चरितार्थ करें। हिन्दू मुसलमान की पूर्ण एकता का उपयुक्त गांधीवादी सिद्धान्त डॉ० लोहिया की दृष्टि में आंशिक ढंग से ही व्यावहारिक है। उनका मत था कि हिन्दू चाहे जितना उदार हो जाय, लेकिन राम और कृष्ण को मोहम्मद से कुछ थोडा अच्छा समझेगा ही, और मुसलमान चाहे जितना उदार हो जाय अपने मोहम्मद को राम और कृष्ण से कुछ अधिक आदर देगा। परन्तु '१९ २० से ज्यादा का फर्क न रहे तो दोनों का मन ठीक हो सकता है।'[3]

डा० लोहिया ने यदि एक ओर साम्प्रदायिकता समाप्ति की चर्चा की थी तो दूसरी ओर हिन्दू पाक एका का भी प्रश्न उठाया था। भारत विभाजन के वे सशक्त विरोधी थे। इस विभाजन के उत्तरदायी तत्वों पर दृष्टि डालते हुए उन्होंने कहा, "मैं गांधी जी पर इल्जाम लगाने वाला मैं नहीं हूँ। देश के बँटवारे के लिए जिस तरह श्री जिन्ना श्री नेहरू और सरदार पटेल मुख्य रूप से दोषी थे उस तरह का दोषी मैं उन्हें नहीं मानता, लेकिन दूसरे नम्बर के दोषी वे भी थे। इसे कोई देख सकता है। मुख्य दोषियों में इतिहास की विशाल निर्वैयक्तिक शक्तियाँ, कन्नौज के विघटन के बाद हिन्दुओं का पतन, हिन्दुस्तान के इस्लाम की अंधी आत्मघाती कट्टरता, ब्रितानी साम्राज्यवाद की आखिरी

* * * * *

1—डॉ० लोहिया भाषा, पृष्ठ 6

2—डॉ० लोहिया हिन्दू और मुसलमान, पृष्ठ 7

3—डॉ० लोहिया-भाषण सन् 1963 ई०, हैदराबाद अक्टूबर 5

साजिश और सबसे अधिक समर्पण और समझौते की वह दीन भावना जिसे समन्वय और सहिष्णुता कहा जाता है जो मुख्य रूप से जाति-व्यवस्था के कारण हैं।'[1] उनका विश्वास था कि इतिहास के गुस्से और नफरत ने ही पाकिस्तान को जन्म दिया। पाकिस्तान का जन्म ही इसलिए हुआ कि भारत का इतिहास विदेशियों ने लिखा और भारतीयों ने उसे अधिक प्रामाणिक माना। भारत विभाजन का एक मुख्य कारण मुस्लिम लीग भी रही। वास्तविकता यह रही कि जिस प्रकार मुस्लिम लीग के नेता मुसलमानों का उपयोग अपने नेतृत्व के लिए करना चाहते थे, उसी प्रकार प्रगतिशील कहलाने वाले हिन्दू नेता भी मुसलमानों का उपयोग करना चाहते थे। यह उनके राष्ट्रीय हित में भी था और उनके गाल अल्प सख्यकों की विशेष सुविधा का सिद्धान्त भी था। ईसाई सिक्ख बौद्ध, जैन पारसी आदि के समान मुसलमान भी भारत में केवल अल्प-सख्यक थे। किन्तु बँटवारावादियों ने यह कभी नहीं सोचा कि यदि अन्य धार्मिक अल्प-सख्यक भारत में रह सकते हैं तो मुसलमान क्यों नहीं रह सकते ? वास्तव में सामान्य मुसलमान का देश के विभाजन से कोई लाभ नहीं हुआ। वह हिन्दुस्तान के दोनों खण्डों में परेशान है। स्वार्थी और कुटिल राजनीति उसे नकली संघर्ष में लगाती है।

डॉ० लोहिया भारत विभाजन को जीवन पर्यन्त नकली मानते रहे। सन् १९५० ई० में फ्रेगमेन्ट्स आफ वर्ल्ड माइण्ड में डा० लोहिया ने स्पष्ट लिखा है इन दोनों राज्यों में इतने अधिक तादाद में हिन्दू और मुसलमान बसे हुए हैं कि भारत पाक रिश्ते को विदेश नीति के स्तर पर समझना बिल्कुल असम्भव है। यह कहना कि पाकिस्तान में जो कुछ भी घटे वह पाकिस्तान का अन्दरूनी मामला है और भारत को इस मामले में कोई दखल अन्दाजी नहीं करनी है (और यही बात उतनी ही भारत के साथ लागू है) इन दो भू-खण्डों में स्थित जनसमूह के सम्बन्धों को नकारना होगा। भारत में स्थित अल्प-सख्यकों के प्रति अगर बुरा व्यवहार होता हो तो पाकिस्तान का वह उतना ही मामला बन जाता है जितना पाकिस्तान में स्थित अल्प सख्यकों के प्रति बुरा व्यवहार भारत का।[2] डा० लोहिया के इस कथन की सार्थकता पूर्व पाकिस्तान (अब बांगला देश) से आये शरणार्थियों के माध्यम से सिद्ध हो गई है।

डा० लोहिया ने उपर्युक्त कारणों से हिन्दू पाक महासंघ की कल्पना की थी। उनके मत में महासंघ की स्थापना के बिना कश्मीर अथवा अन्य समस्याओं

* * * * *

1— जन मार्च सन् 1968 ई० पृष्ठ 82
2—साप्ताहिक दिनमान 12 अक्टूबर सन् 1969, पृष्ठ 32

का हल निरथक होगा। महासघ की अनुपस्थिति मे कोई न कोई समस्या सदव रहेगी। इसलिए महासघ की स्थापना द्वारा ही प्रत्येक समस्या का हल किया जा सकता है और वेहिचक किया जाना चाहिए।[1] डॉ० लोहिया ने महासघ की रूप रेखा भी तयार की थी। इस योजना के अनुसार महासघ की पाच इकाइया होगी —बगाल काश्मीर, पख्तूनिस्तान पाकिस्तान, हिन्दुस्तान। महसघ म निवास करने वाले नागरिको की नागरिकता एक होगी। उसकी विदेशी नीति भी एक होगी। यातायात और सनिक नीति पर भी किसी सीमा तक महासघ का अधिकार होगा।[2] हिन्दू और मुसलमान दोनो मे एक जरूर या तो राष्ट्रपति बनेगा या प्रधान मत्री यद्यपि सदव के लिए ऐसा सविधान म लिखा जाना आवश्यक नही है।[3]

महासघ के निर्माण के कुछ साधन भी डा० लोहिया ने सुझाए थे। उनके मत म दोना देशो की सरकारें इसमे बाधा उत्पन्न करती हैं। इसलिए दोना देशो की जनता को अपनी अपनी सरकारे उलटनी चाहिए। दोनो देशो की सरकारो को युरोप और अमरीका की महाशक्तियो से समझौते और सहायता भी बन्द करना चाहिए क्योकि य शक्तियाँ ही दोनो देशा को सघर्ष के लिए प्रोत्साहित करती हैं।[4] इस हेतु हिन्दू मुसलमान का आत्मत्याग के लिए तत्पर रहना चाहिए। डॉ० लोहिया द्वारा बताये गय उपर्युक्त साधन तो उचित है किन्तु इन साधना के लिए भी जब तक ठोस साधन न हो तब तक महासघ एक कल्पना रहेगा। उन्हें स्वय भी कभी कभी इस कल्पना की सार्थकता पर सन्देह होता था तभी तो वे कहने लगते थे कि कम से कम महासघ निर्माण पर बहस तो चले, महासघ अस्थायी होगा या कुछ समय मे एक सघ बन जायगा अथवा समाप्त हो जायगा।[5]

* * * * *

1—डॉ० लोहिया भारत चीन और उत्तरी सीमाएँ पृष्ठ 324
2—वही पृष्ठ 324
3—डॉ० लोहिया आजाद हिन्दुस्तान मे नए रुझान पृष्ठ 9
4—डॉ लोहिया समाजवादी चिन्तन पृष्ठ 91
5—डॉ लोहिया देश विदेश नीति कुछ पहलू पृष्ठ 13

अध्याय ४

समाजवादी धरातल पर डॉ० लोहिया का आर्थिक चिन्तन

डॉ० लाहिया के आर्थिक चिन्तन के अध्ययन से पूर्व यह ज्ञात कर लेना आवश्यक है कि समाजवाद में आर्थिक तत्व का महत्व सर्वाधिक है। वैज्ञानिक समाजवाद के जन्मदाता कार्ल मार्क्स ने आर्थिक तत्व को समाज का निर्णायक तत्व कहा है। उसके मतानुसार सामाजिक विकास की प्रगति और दिशा, उत्पादन और विनिमय की रीतियों पर निर्भर करती है। अपने जीवन के सामाजिक उत्पादन में मनुष्य ऐसे निश्चित सम्बन्धों में बँधते हैं जो अपरिहार्य एवं उनकी इच्छा से स्वतन्त्र होते हैं। उत्पादन के ये सम्बन्ध उत्पादन की भौतिक शक्तियों के विकास की एक निश्चित अवस्था के अनुरूप होते हैं। इन्हीं उत्पादन सम्बन्धों के योग से समाज की आर्थिक प्रणाली बनती है जो कि वह वास्तविक आधार होती है जिस पर वैधानिक सामाजिक और राजनीतिक भित्ति का निर्माण होता है। कार्ल मार्क्स ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ अर्थ शास्त्र की विवेचना में लिखा है 'भौतिक जीवन की उत्पादन पद्धति जीवन की सामान्य सामाजिक राजनीतिक और बौद्धिक प्रक्रिया को निर्धारित करती है। मनुष्यों की चेतना उनके अस्तित्व का निर्धारित नहीं करती बल्कि उल्टे उनका सामाजिक अस्तित्व उनकी चेतना का निर्धारित करता है।[1] फ्रेडरिक एंगेल्स ने भी इसी सिद्धान्त का संक्षिप्त वर्णन करते हुए लिखा है, 'समस्त सामाजिक परिवर्तनों तथा राजनीतिक क्रान्तियों के अन्तिम कारण न तो मनुष्य के मस्तिष्क में और न उनके चरम सत्य और न्याय सम्बन्धी विशेष ज्ञान में पाये जाते हैं वरन् वे तो उत्पादन तथा विनिमय प्रणाली में होने वाले परिवर्तनों में निहित हैं।[2]

इन आर्थिक तत्वों के अतिरिक्त समाज व्यवस्था पर अनार्थिक कारण भी प्रभाव डालते हैं। यश तथा शक्ति के लिए पिपासा, धार्मिक महत्वाकांक्षाएँ

* * * * *

1—कार्ल मार्क्स फ्रेडेरिक एंगेल्स संकलित रचनाएँ (चार भागों में) भाग 2 पृष्ठ 9

2—वही भाग 3 पृष्ठ 90

जातीय पक्षपात, स्त्री-पुरुष का एक दूसरे के प्रति आकर्षण, वैज्ञानिक उत्सुकता आदि भी सामाजिक स्थिति का निर्माण करते हैं। इतिहास की केवल आर्थिक व्याख्या ही नही है वरन् एक नैतिक सौन्दयमूलक, राजनीतिक, धार्मिक तथा वैज्ञानिक व्याख्या भी है। किन्तु फिर भी आर्थिक तत्व की विशेष महत्ता को ठुकराया नही जा सकता। सामाजिक धार्मिक, राजनतिक और सास्कृतिक उथल-पुथल म विश्वास करने वाले डॉ० लाहिया भी आर्थिक क्रान्ति की प्रधानता और अपरिहार्यता को स्वीकार करते हैं। यद्यपि मार्क्स और एगेल्स न आर्थिक तत्व पर आवश्यकता म अधिक बल दिया है, तथापि इसमे कोई सन्देह नही कि अनार्थिक कारणा से आर्थिक कारण समाज पर अधिक प्रभाव डालत हैं। डॉ० लाहिया ने भी जहाँ सात क्रान्तियो की चर्चा की है वहाँ अमीरी और गरीबी के अन्तर को सभी विषमताओ की जड कहा है। उनकी स्पष्ट स्वीकारोक्ति है, "सबसे पहले गरीबी और अमीरी के फर्क से जो अन्याय निकलते हैं उनको ल। यह जडवाला अन्याय है।[1] डा० लाहिया के आर्थिक दशन क निम्नलिखित आधार हैं —(१) वर्ग उन्मूलन (२) आय नीति (३) मूल्य-नीति (४) अन्न-सेना एव भू-सेना (५) भूमि का पुनर्वितरण (६) आर्थिक विकेन्द्रीकरण (७) राष्ट्रीयकरण अथवा समाजीकरण (८) खच पर सीमा।

(१) वर्ग-उन्मूलन

वर्ग-संघर्ष का सिद्धान्त समाजवाद के दर्शन मे अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह मार्क्सवाद का मूल सिद्धान्त है। मार्क्स का विश्वास था कि आर्थिक हितो म भिन्नता के कारण परस्पर विरोधी वर्गों का निर्माण होता है। उत्पादन, विनिमय और वितरण के साधनो पर अधिकार रखनेवाले व्यक्ति शोषक बन बठते हैं। यह वर्ग साधन विहीन वर्ग का शोषण करता है। इस प्रकार शोषक और शोषित नामक दो वर्ग समाज म जन्म लेते हैं। इन दोनो वर्गों के हित एक दूसरे के विपरीत होते हैं जिस कारण दोनो म वर्ग-संघर्ष की स्थिति रहती है। प्रसिद्ध समाजवादी बुखारिन भी मार्क्स की तरह आर्थिक हितो की समानता को वर्ग निर्माण का कारण बताते है। उन्होने वर्ग की परिभाषा को स्पष्ट करते हुए लिखा है "वर्ग या सामाजिक वर्ग उन व्यक्तियो का समूह है जो सामाजिक उत्पादन मे एक प्रकार का काय करते है और उत्पादन

* * * * *

1—डॉ० लोहिया सात क्रान्तियाँ पृष्ठ 2

छोटे पोखरे बनाती है, हर एक पोखर को अपने छोटे से घेरे की भलाई मे ही दिलचस्पी रहती है। मूल्या की एक विषम सीढी न हर एक जाति को कुछ दूसरी जातिया के ऊपर खडा कर दिया है ।'[1]

वग निर्माण का अन्तिम विशेषाधिकार सम्पत्ति है। वग निर्माण के इस कारक पर डा० लोहिया न अधिक विस्तार से विचार किया है। वे आर्थिक विषमता को अन्य विषमताओ से अधिक महत्व देते थे, क्योकि वग उत्पत्ति का मुख्य कारण आर्थिक विषमता ही है। उन्होन यदि एक ओर आठ आने अथवा रुपया रोज कमाने वाले के परिश्रमी किन्तु कष्टमय जीवन को सहानुभूति पूवक देखा था तो दूसरी ओर धनिका के विलासितापूण एव निष्क्रिय जीवन को घृणास्पद दृष्टि से अवलोकन किया था। उन्होन इस भयानक आर्थिक अन्तर पर चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा था 'सारे ससार मे छोटे और बडे आदमी के बीच अन्तर है लेकिन भारत मे यह अन्तर मारक है। गोरे देशो मे चाहे वे पूजीवादी अथवा साम्यवादी हो, लोगों की आय मे दो पाँच, सात गुने का अन्तर होता है। यह अन्तर भारत मे ५० १०० ३०० गुने का माधारण तौर पर होता है। परिणाम है कि एक तरफ भोजन और कपडा नही है और दूसरी तरफ आधुनिकता और शौकीनी का मद्दा बढता परिहास है।'[2]

डॉ० लोहिया के उपर्युक्त विषमता सम्बन्धी विचारो का कुछ लोग अवास्तविक अथवा चौका दन वाले कह सकते हैं किन्तु सच्चाई यही है कि भारत आज आर्थिक विषमता म भयकरतम रूप म पीडित है। इस पीडा और पीडा की चर्चा की वास्तविकता को दीन और दुखी ही समझ सकते हैं गद्दी पर आराम करने वाले निष्क्रिय पूजीपति नही। किन्तु डॉ० लोहिया के इस मत से सहमत होना बहुत कठिन है कि वग निर्माण के कारक कवल भाषा जाति और सम्पत्ति ही हैं। वास्तविकता यह है कि इन कारकों के अतिरिक्त धम क्षेत्र व्यवसाय आदि भी वग विभाजक तत्व हैं।

डॉ० लोहिया द्वारा स्पष्ट किये गये उपयुक्त तीन विशेषाधिकारो से चार वर्गों का निर्माण होता है (१) प्रथम श्रेणी (शासक वग) (२) द्वितीय श्रेणी (उच्च मध्यम वग) (३) तृतीय श्रेणी (निम्न मध्यम वग) और (४) चतुथ श्रेणी (शुद्ध सवहारा वग)।

डॉ० लोहिया के द्वारा बताय गये शासक वग म व लोग आते हैं जिनको जाति, सम्पत्ति और भाषा के विशेषाधिकार जन्मत प्राप्त हैं। उन्ही के शब्दो

* * * * *

1—डॉ० लोहिया भाषा पृष्ठ 113
2—डॉ० लोहिया देश गरमाओ पृष्ठ 5

में, "हिन्दुस्तान के शासक वर्ग को आप समझ लेना। उसमें तीन बातें हैं। एक धनी, धनी माने करोड़पति ही नहीं अच्छे-खासे खाते पीते मध्यम वर्गीय लोग दूसरे अंग्रेजी पढ़े लिखे लोग और तीसरे ऊँची जाति वाले।"[1] डॉ० लोहिया ने शासक वर्ग की विलासिता पर दृष्टि डालते हुए कहा है कि इस वर्ग का व्यक्ति बिना किसी प्रयत्न के समाज का लाभ उठाने वाला होता है। वह सभी भौतिक साधनों से पूर्ण होता है। देश के कानून, योजना और प्रशासन आदि का रुझान इस वर्ग की आवश्यकताओं और मनोकामनाओं को पूर्ण करने की ओर होता है। देश की इस प्रकार की व्यवस्थाओं के कारण, "हिन्दुस्तान के साधारण आदमी में डर बहुत घुस गया है। हर चीज से वह डर गया है। कोई जरा अच्छे कपड़े पहने हुए है तो उससे डर, कोई अंग्रेजी बोलता है तो उसमें डर अंग्रेज से डर, गोरे से डर, सबसे डर।"[2] डॉ० लोहिया का उपर्युक्त कथन उनके अपने समय के लिए भले ही सत्य हो किन्तु अब स्थिति शनैः शनैः बदल रही है। अब सामान्य जनता को अच्छे कपड़े पहनने वालों, अंग्रेजी भाषा बोलने वालों अथवा शासकीय कर्मचारियों से उतना भय नहीं रह गया है जितना कि डॉ० लोहिया बतलाते हैं। शासन की नीतियाँ भी शोषकों के प्रति आक्रामक और शोषितों के प्रति सहानुभूतिमय होती जा रही हैं।

द्वितीय श्रेणी अथवा उच्च मध्यम वर्ग में ऐसे व्यक्ति सम्मिलित हैं जिनमें तीन के बजाय दो ही गुण होते हैं—उच्च वर्ण और अंग्रेजी भाषा। उच्च वर्ण और सम्पत्ति, या सम्पत्ति तथा अंग्रेजी। इस मेल का व्यक्ति अपने आप शासक वर्ग में नहीं हो जाया करता। उसे इस हद तक प्रयत्न करना पड़ता है जिस हद तक उसमें इन विशेष गुणों का अभाव है। कुछ वर्षों के अनवरत प्रयत्नों में वह निश्चित रूप से तीसरा गुण भी प्राप्त कर शासक वर्ग में आ जाता है। इस वर्ग को उत्थान करने के अपार अवसर प्राप्त होते रहते हैं, क्योंकि शासक अथवा सर्वोच्च वर्ग को इन द्वितीय श्रेणी के शासकों पर निर्भर रहना पड़ता है। परिणामतः सर्वोच्च वर्ग से इस वर्ग का सम्पर्क स्वाभाविक है।

तृतीय श्रेणी अथवा निम्न मध्यम वर्ग में ऐसे व्यक्ति आते हैं जिनमें केवल एक ही गुण होता है—उच्च जाति या अंग्रेजी अथवा सम्पत्ति। इस वर्ग को आगे बढ़ने या उठने की कोई आशा नहीं। इनके प्रयत्न निष्फल होते हैं। जन्म ब्राह्मण कुल में क्यों न हुआ हो, पर यदि धन या अंग्रेजी उसे प्राप्त नहीं है तो

* * * * *

1—लोहिया-भाषण, 19 जुलाई सन् 1969 हैदराबाद
2—लोहिया-भाषण, 30 सितम्बर सन् 1962, हैदराबाद

उसके लिए गाँव के मन्दिर में पुजारी बनने के अतिरिक्त दूसरा कोई चारा नहीं होता।[1] ऐसा व्यक्ति अपने बेटे बेटियों को अच्छी शिक्षा नहीं दिला सकता। इसी तरह यदि किसी मेहतर के पास पाँच हजार रुपये हों तो ये रुपये उसे आगे बढ़ाने में कारगर नहीं हो सकते। इन रुपयों को बढ़ाना तो दूर रहा, वह उन्हें रख भी नहीं सकेगा। पटवारी पुलिस सिपाही, मजिस्ट्रेट और वकील उससे रुपया हड़प लेंगे।

चतुर्थ श्रेणी अथवा विशुद्ध सर्वहारा वर्ग के पास तीनों गुणों में से कोई एक भी नहीं न सम्पत्ति न जाति न अंग्रेजी। इस वर्ग का व्यक्ति उठने की आशा नहीं कर सकता प्रयत्न करने की भी नहीं। वह अपने या अपनी सन्तान के लिए आराम और सुविधा की जिन्दगी का सपना भी नहीं देख सकता। जब वह प्रथम बार समाजवाद के बारे में कुछ सुनता है तो उसे आपकी बातों पर विश्वास ही नहीं होता। इसलिए कानून, योजना और राजनीति कार्यक्रम के औचित्य को सर्वहारा वर्ग के उत्थान की कसौटी पर कसा जाना चाहिए। समाजवाद को इस वर्ग का रक्षक लाभ देने वाला और जागृत करने वाला होना चाहिए।

वर्ग उन्मूलन सम्बन्धी विचार —संसार के प्रत्येक समाजवादी विचारक ने वर्ग-उन्मूलन की समस्या को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। डॉ० लोहिया ने वर्ग निर्माण के लिए उत्तरदायी तत्वों की स्पष्ट व्याख्या की है। यदि इन तत्वों एवं आधारों का उन्मूलन कर दिया जाय तो वर्ग उन्मूलन के उद्देश्य की आसानी से प्राप्ति हो जायगी। इसलिए डॉ० लोहिया ने विशेषाधिकार-स्वरूप—भाषा, जाति, सम्पत्ति की समाप्ति पर भी विचार किया।

भाषा सम्बन्धी विशेषाधिकार को समाप्त करने के लिए डॉ० लोहिया ने अत्यधिक प्रयत्न किये। उनका विश्वास था कि भाषा नीति के बिना सामाजिक [illegible] की स्थापना नहीं हो सकती और [illegible] अथवा [illegible] सम्मानित वर्ग उत्पन्न कर सकती है। इसलिए उन्होंने 'अंग्रेजी हटाओ' अभियान पर सर्वाधिक बल दिया। अंग्रेजी हटाओ अभियान के [illegible] उनकी सांस्कृतिक [illegible] अथवा सांस्कृतिक वर्ग उन्मूलन की [illegible] स्पष्ट [illegible] है 'मैं चाहता हूँ कि अंग्रेजी का सार्वजनिक इस्तेमाल [illegible] बन्द हो जाना चाहिए। विधायिकाओं, सरकारी [illegible] अदालतों [illegible] समाचारपत्रों और [illegible] में अंग्रेजी का इस्तेमाल [illegible] होना चाहिए और अंग्रेजी की [illegible]

* * * * *

1—डॉ० लोहिया [illegible] पृष्ठ 12

न्द होनी चाहिए।'[1] अंग्रेजी के प्रयोग की समाप्ति के लिए न्यायालयों में हुई डॉ० लोहिया की मुठभेड़ सर्वत्र और सभी को ज्ञात है।

जाति सम्बन्धी ऊँच नीच की भावना अथवा जाति पर आधारित वर्गों की समाप्ति के लिए डॉ० लोहिया आजीवन प्रयत्नशील रहे। इस सम्बन्ध में श्री चारुचन्द्र त्रिपाठी ने उचित ही लिखा है कि डॉ० लोहिया ने "भारतीय संस्कृति इतिहास और परम्पराओं की भूमि पर मार्क्स के वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त को वर्ण-संघर्ष में संशोधित किया।'[2] वास्तव में डॉ० लोहिया ने जाति प्रथा पर गहरा प्रहार करते हुए कहा कि हिन्दुस्तान में बुर्जुआ वर्ग ने दीन हीन मानवता के लहराते हुए समुद्र को सोखने के लिए अगस्त्य ऋषि का कार्य किया। उनके मत में निम्न जातियों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक ढंग से सशक्त बनाकर जाति पर आधारित वर्गों को विनष्ट किया जा सकता है। बिना जाति प्रथा का अन्त किये समाजवाद की कल्पना नहीं की जा सकती। उनका मत था जो आदमी हिन्दुस्तान की जाति प्रथा को अपने दिमाग में नहीं रखेगा जो कि एक वस्तु स्थिति है, एक खास बात है और हरेक चीज के लिए वह नीव है वह कभी भी पूंजीवाद-समाजवाद के चक्कर को समझ ही नहीं पायेगा।'[3]

डा० लोहिया के अनुसार समाजवाद की स्थापना के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के मंत्री जिलाधीश कमिश्नर आदि के खर्चीले और विलासितापूर्ण जीवन का दमन करना उतना ही अनिवार्य है जितना कि निजी क्षेत्र के सेठों करोड़पतियों के ऐश, आराम और फैशन वाले जीवन का। इस प्रकार आर्थिक विषमता को समाप्त करने के लिए डा० लोहिया ने अत्यधिक प्रयास किया। इस हेतु उन्होंने कुछ ठोस नीतियाँ रखी थीं। आय-समता के लिए उन्होंने १ १० का अनुपात निश्चित किया था और इसी प्रकार शोषण रहित मूल्य-नीति भी निर्धारित की थी।

इस प्रकार डॉ० लोहिया ने केवल सम्पत्ति पर आधारित वर्गों की ही नहीं अपितु सांस्कृतिक और सामाजिक तत्वों पर आधारित वर्गों की विशद व्याख्या की और उनके उन्मूलन के लिए भी हल निकाले। इसके अतिरिक्त डॉ० लोहिया का ध्यान स्थानीय वर्गों की ओर गया। इस सम्बन्ध में उनका विचार था कि बड़े पूंजीपतियों के शोषण के खिलाफ पर्याप्त काम भले ही न हो, किन्तु

* * * * *

1—डॉ० लोहिया भाषा पृष्ठ 75-76
2—हिन्दी विश्व कोश खण्ड 10 (नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी) पृष्ठ 365
3—डॉ० लोहिया समाजवाद की अर्थनीति पृष्ठ 4

शिकायत तो है लेकिन किसी स्थान विशेष पर शक्तिशाली और कमजोर के बीच होने वाले जबरदस्त शोषण के खिलाफ न तो कोई शोर गुल ही है और न कोई शिकायत ही। भारी किराया लेने वाले और दुकानदार, महाजन और कर्ज लेने वाले कारीगर, जमींदार और खेतिहर मजदूर, उपभोक्ता और सरकार तथा व्यापारी, एवं पुलिस और जनता में आपसी शोषणयुक्त सम्बन्धों को खोलकर आम लोगों के सामने रखा जाना चाहिए। इन स्थितियों में सुधार लाने के लिए संगठन बना कर आन्दोलन चलाये जाने चाहिए। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि डॉ० लोहिया ने समाजवाद के स्थापनार्थ वर्ग-समाप्ति की अपरिहार्यता स्पष्ट की और वर्ग विहीनता की स्थिति के लिए विभिन्न प्रयत्नों का क्रियात्मक ढंग से समग्र देश के सम्मुख सशक्त रूप से रखा।

(२) आय-नीति

आर्थिक विषमता राष्ट्र के लिए कैंसर के समान भयावह होती है। इसकी उपस्थिति में राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक आदि समताएँ व्यर्थ हो जाती हैं। आय-नीति का आर्थिक समता सुनिश्चित करने में बड़ा हाथ रहता है। यही कारण है कि डॉ० लोहिया के समाजवादी दर्शन में इस नीति को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। जब किसी देश के लोगों की न्यूनतम और अधिकतम आय में जमीन आसमान का अन्तर हो तो वहाँ समाजवादी का प्रथम कर्तव्य इस अन्तर को उचित और आवश्यक मात्रा में कम करना है। क्योंकि आय विषमता के परिणामस्वरूप सामाजिक चेतना मृत हो जाती है और शोषित जन समूह अधिकाधिक शक्तिहीन हो जाता है। डॉ० लोहिया ने उचित ही लिखा है कि 'चरम दारिद्र्य की अवस्था में सामाजिक चेतना मर जाती है या कम से कम, क्षीण हो जाती है। समृद्धि और सुख में रहने वाले व्यक्ति वर्ग और दरिद्र जनता के बीच विषमता की दीवारें खड़ी कर देते हैं। सामाजिक चेतना का पुनर्जागरण तभी सम्भव है जब इन दीवारों को ढहाया जाय और ये दीवारें तभी गिर सकती हैं जब कि आमदनियों का वर्तमान अन्तर निश्चित सीमा के अन्दर रखा जाय।[1]

आय विषमता का विश्लेषण —भारतवर्ष में न्यूनतम और अधिकतम आमदनी में बेहद अन्तर है। एक ओर तो उच्च पदाधिकारियों का ढेर सारा वेतन मिलता है दूसरी ओर ऐसे कर्मचारी विद्यमान हैं जो अपने वेतन से अपना परिवार का पेट भी नहीं भर सकते। एक ओर बड़े-बड़े उद्योगपति और

• • • • •

1— [illegible]

पूजीपति लक्ष्मी के लाडले बनकर मजे से जीवन व्यतीत करते हैं तो दूसरी ओर बेकार और गरीब लोगो की कमी नही। केन्द्रीय राज्य के कर्मचारियो के वेतन राज्य के कर्मचारियो के वेतन की अपेक्षा अधिक होता है। यद्यपि दोनो प्रकार के कर्मचारियो को मँहगाई एक ही आँख से देखती है, परन्तु उनके मँहगाई भत्ते मे अन्तर है। स्थायी और अस्थायी कर्मचारियो की मजदूरी मे अच्छा खासा अन्तर होता है। स्थायी कर्मचारियो को अधिक और अस्थायी कर्मचारियो को बहुत कम मजदूरी प्राप्त होती है। डॉ० लोहिया ने लोक सभा मे कहा था कि निम्न वर्ग के लोगो की आय तीन आना प्रति दिन है यद्यपि सरकार उनके इस कथन से सहमत नही हुई, परन्तु उसके अनुसार भी निम्न वर्ग के लोगो की आमदनी साढे सात आना प्रतिदिन से अधिक नही बतायी गई।

देश मे व्याप्त आय विषमताओ का विश्लेषण करने मे डॉ० लोहिया ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि का प्रयोग किया था। ऊँचे ऊँचे सरकारी पदाधिकारियो की सुविधाओं पर डा० लोहिया के दृष्टिकोण से किसी ने भी विचार नहीं किया था। इन लोगो के बँगला, नौकरो आवागमन और सचार-साधनो पर जो खर्च होता है उसे इन लोगो के वेतनो के बगल मे रखकर देखना चाहिए। जब ये लोग ड्यूटी पर यात्रा करते हैं तो इनके स्वागत-सत्कार, ठाट बाट और आराम पर बेहिसाब खर्च होता है। इसमें कोई सन्देह नही कि इस सबका भार गरीब जनता को वहन करना पडता है। इन लोगो को मिलने वाली ये सुविधाएँ आय-विषमता को और बढा देती हैं। डा० लोहिया ने एक स्थान पर कहा है कि आय और सम्मान की विषमताओ के कारण भारतीय समाज मे ऊँच-नीच की लगभग दस लाख श्रेणियाँ बन गई हैं।

डॉ० लोहिया के अनुसार भारतवर्ष की वार्षिक राष्ट्रीय आय लगभग डेढ खरब होती है जिसमें से आधा खरब (पचास अरब रुपया) बडे लोग ले लेते हैं जिनकी सख्या ५० लाख है। शेष एक खरब (सौ अरब) रुपया छोटे लोग पाते हैं जिनकी सख्या ४४ करोड है। इस प्रकार '४४ करोड छोटे लोग बराबर हैं एक करोड बड़े लोगों के। १ और ४४ का औसत फर्क है। यू व्यक्तिगत फर्क तो और ज्यादा है—३० हजार का, दस हजार का, एक हजार का, पच्चीस हजार का फर्क है।[1]

डॉ० लोहिया की आय-नीति और उसे प्राप्त करने के उपाय —आय नीति के सदर्भ मे डॉ० लोहिया ने ऐसा कभी नही कहा कि सब लोगो की आमदनी

* * * * *

1—डॉ० लोहिया देश गरमाओ पृष्ठ 36

समान हो। निम्नतम और अधिकतम आय मे क्या अनुपात हो इस विषय म निश्चयपूर्वक कुछ नही कहा जा सकता। ऐसा अनुपात निर्धारित करने से पहले देश-काल और परिस्थिति पर ध्यान देना आवश्यक है। उनका कहना था कि जो देश काल मे सम्भव हो उससे कम को हासिल करने की कोशिश तो अवसरवादिता है और उससे ज्यादा को हासिल करने की कोशिश पागलपन है।'[1] सपना का प्राचीन आदर्श आज के समता आदर्श से जिस प्रकार भिन्न है उसी प्रकार भविष्य का समता आदर्श आज के समता-आदर्श से भिन्न हो सकता है।

डॉ॰ लोहिया के अनुसार आधुनिक भारत म न्यूनतम और अधिकतम आय मे १ १० का अनुपात सम्भव है। इससे कम अर्थात बीस गुना पचास गुना अथवा सौ गुना का अन्तर प्राप्त करने का प्रयास अवसरवादिता है और *इससे अधिक अर्थात पाँच गुना तीन गुना और दो गुना अनुपात का प्रयास* पागलपन है। सम्पूर्ण समता तो एकदम पागलपन है। डॉ॰ लोहिया का विचार था कि भविष्य म एक ऐसा समय आ सकता है जब कि १ १० के अनुपात को १ ३ या १ २ तक लाया जा सकता है।

डॉ॰ लोहिया चाहते थे कि केवल सरकारी कर्मचारियों की आय म सम्भव समता लाने से काम नही चलेगा। गैर सरकारी लोगों को भी इस अनुशासन म लाना पड़ेगा। *उद्योगपतियों सेठों, वकीलों राजनीतिज्ञों, किसानों आदि* सभी की आय नियन्त्रित करनी होगी। डॉ॰ लोहिया का कहना था, 'यह कभी हो नही सकता कि सारे समाज म तो लालच का समुद्र बहता रहे और बीच म सिर्फ सरकारी नौकरों के लिए फर्ज का टापू बना डाला जाय यह नामुमकिन चीज है। लालच की लहरें उसेन मारेगी। अगर किसी तरह स सरकारी नौकरी के लिए कर्तव्य का द्वीप बना भी लिया, तो वह टापू लालच के समुद्र म बह जायगा। रोक लगानी है तो सभी आमदनियों पर सरकारी नौकरों की, कारखाने वालों की, वकीलों की, राजनीति करने वालों की।'[2] सम्पत्ति की आमदनी से काम की आमदनी बढ़ती है और काम की आमदनी से सम्पत्ति की आमदनी। यदि गैर सरकारी लोगों की आय का अनियन्त्रित रखा तो वे सम्पत्ति की आमदनी के साथ-साथ काम की भी आमदनी बढ़ाने लगेंगे। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री ए॰ सी॰ पीगू न भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं A man with a large property income is enabled by

• • • • •

1—डॉ॰ लोहिया समाजवाद की अर्थनीति पृष्ठ 25
2—डॉ॰ लोहिया [illegible] पृष्ठ 3

that to invest in a good education for his son That means that he can provide for him not only a good income from property, but also a good one from work Again a man with a good work income is able to buy property and get a second income from that Any thing that tends to make a man rich in the one sort of income tends to make him rich in the other sort also, and conversely '[1]

डा० लोहिया समता के साथ साथ सम्पन्नता भी चाहते थे। आमदनी के १ १० के अनुपात के साथ साथ वे आमदनी का उच्च स्तर भी चाहते थे। उनका विश्वास था कि औसत आय किसी राष्ट्र की प्रचुरता का द्योतक है, किन्तु औसत आय की वृद्धि अन्य कारकों के साथ साथ प्रधान रूप से श्रमिक की क्षमता पर निर्भर करती है। डॉ० लोहिया के मत मे श्रमिक अथवा निम्न वर्ग की न्यूनतम आय ३ आने प्रति दिन है और ३ आने प्रतिदिन पर आधारित जीवन अच्छी तरह परिश्रम कैसे कर सकता है ? इधर जाति प्रथा के कारण जनसंख्या के दूसरे वर्गों की शताब्दियों से हाथ से काम करने की आदत ही नही है संस्कार ही नही है। न मिट्टी खोदने की न झाड़ू देने की, न बोझ उठाने की, यानी अपना खुद का काम करने की भी उनकी आदत छूट गयी है, दूसरो का काम करना तो छोड दो।'[2] इसलिए जब तक तीन आने वाले वर्ग की आय नही बढाई जाती और उसे परिश्रम करने के लिए सक्षम नही बनाया जाता, तब तक औसत आय नही बढ सकती। 'न्यूनतम आमदनी बुनियादी सवाल है। वह तय करती है कि कुल आमदनी कितनी हो। तीन आना तय करता है कि कुल आमदनी या औसत आमदनी १५ आने से ज्यादा न जाय। १५ आना नही तय करता कि वह तीन आना हो।'[3]

डा० लोहिया ने न्यूनतम आमदनी मे वृद्धि करने के लिए कुछ सुझाव भी दिये। सर्वप्रथम धनिक वर्ग के खर्च पर सीमा बाँधना चाहिए ताकि उनकी विलासिता पर खर्च होने वाले पैसे को बचाया जा सके। द्वितीय, उच्च पदाधिकारियो की आय और सुविधाएँ घटानी चाहिए। तृतीय, अनावश्यक

* * * * *

1—A C. Pigou, Essays in Economics p 75-76 (London Macmillan & Co Ltd. 1952)
2—डॉ० लोहिया समाजवाद की अर्थनीति पृष्ठ 7
3—वही पृष्ठ 11

कर्मचारियों की छँटनी कर देनी चाहिए अथवा उनके लिए विकल्प रोजगार (जैसे अन्न सेना) की व्यवस्था करनी चाहिए। चतुर्थ, विदेशी वस्तुओं का आयात कम कर देश मे निर्मित वस्तुओं का ही प्रयोग किया जाना चाहिए, चाहे देशी वस्तुएँ तुलनात्मक ढग मे कुछ घटिया किस्म की ही क्यो न हो। इससे विदेश जाने वाली मुद्रा की बचत होगी और देश निर्मित वस्तुओं को प्रोत्साहन तथा गुण प्राप्त होंगे।[1] उनका पाँचवाँ सुझाव था कि करोड़पतियों के कारखानो का राष्ट्रीयकरण अनिवार्यतः होना चाहिए। डॉ॰ लोहिया के मत मे, उपर्युक्त साधनो से पैसा बचाकर तीन आने वालो मे बाँटा न जाय, क्योंकि बाँटने से तीन आना चार आना अथवा और कुछ हो जाएगा जिसका कोई ठोस परिणाम नही होता। इस 'रुपये को पगावार की आधुनिकीकरण म लगाओ पूजी के स्वरूप मे लगाओ। इससे नए नए कारखाने कायम करो।'[2] इन कारखानो से जो आय हो उसका पूजी की तरह पुन प्रयोग कर दूसरे कारखाने खोलने, कृषि सुधारने आदि मे लगाया जाय। केवल तभी प्रचुरता आयगी और तीन आने वालों की आमदनी बढेगी।

(३) मूल्य-नीति

आय नीति के उचित निर्धारण के साथ यदि कीमत (मूल्य) की वर्तमान स्थिति म औचित्यपूर्ण परिवर्तन नही होता, तो उचित आय नीति भी लगभग निष्फल हो जाती है। क्योंकि तुलनात्मक ढग से अधिक धनी व्यक्ति बाजार का लाभ उठाता है। वह कम कीमत म वस्तुओं को खरीदता है और कुछ समय रोक कर क्रय की हुई वस्तुओं को बहुत अधिक मूल्य म विक्रय कर अत्यधिक मुनाफा कमाता है। इसी प्रकार उद्योगपति अपने कारखाना म निर्मित वस्तुओं को लागत दाम से कई गुनी कीमत म बेच कर अधिक और अनुचित लाभ कमाता है। परिणामतः आय की उचित नीति कीमत जनित शोषण के कारण स्थिर नहीं रह पाती जिस कारण आर्थिक विषमता की पुन वृद्धि होने लगती है। इसलिए डॉ॰ लोहिया ने कहा था "जिस्मानी अथवा खाली वगैरह का अर्थ है कि जिन्दगी की जरूरी चीजों के दाम का रिश्ता आमदनी के साथ जुड़ा हुआ हो।[3]

मूल्य-वृद्धि और मूल्य विषमता का विश्लेषण —भारतवर्ष म मूल्य-वृद्धि अत्यधिक हो गयी है। इस कारण खरीददार और उपभोक्ता को किसी प्रकार

* * * * *

1—डॉ॰ लोहिया [illegible] पृष्ठ 19
2—डॉ॰ लोहिया समाजवाद की अर्थनीति पृष्ठ 12
3—डॉ॰ लोहिया [illegible], भाग 1 पृष्ठ 185

की कोई रुपा नही। यदि कच्चे माल का उत्पादक अपनी उत्पादित वस्तु के मूल्य और प्रयोग म लाने वाली वस्तुओ के मूल्य म लुट रहा है तो शहरी उपभोक्ता कच्चे माल के मूल्य और इस्तेमाल के सामान दोनो मे लुट रहा है। कमचारी वग भी महँगाई की चक्की मे पिसता चला जा रहा है। मूल्यो मे जिस गति से वृद्धि होती है, उस गति स महँगाई भत्ते मे वृद्धि नही होती। परिणामत कमचारियो के द्वारा महँगाइ भत्ते मे और अधिक वृद्धि की माँग की जाती है जिसे पूरा करने के लिए शासन को नये नोट छापने पडते है, घाटे के बजट बनाने पडते हैं। मुद्रा प्रसार के कारण वस्तुओ का मूल्य स्तर और ऊँचा हो जाता है और कमचारियो तथा श्रमिको की वास्तविक आय घट जाती है जिस कारण वे पुन महँगाई भत्ते मे वृद्धि की माँग करते है। महँगाई-वृद्धि तथा मूल्य-वृद्धि का क्रम इसी प्रकार चलता रहता है।

दो ऋतुओ के बीच मूल्य की विषमता के कारण उत्पादक और विशेष कर छोटे उत्पादक का शोषण होता है। कच्चे और तयार माल के बीच मूल्यो का गहरी असमानता रहती है। कच्चे माल की अपेक्षा तयार माल (मशीनों से निर्मित वस्तुओ) की कीमत अधिक रहती है। इससे कच्चे माल के उत्पादक का दोहरा शोषण होता है, क्योंकि पहले तो उसे अपना कच्चा माल कम मूल्य म मशीनो के मालिको को वेचना पडता ह और पुन मशीनो से निर्मित वस्तुओ को अधिकाधिक मूल्य मे खरीदना पडता है। उदाहरण के लिए गन्ने का कम मूल्य और चीनी का अधिक मूल्य दृष्टव्य है। राष्ट्रो के आपसी व्यवहार मे भी यही दशा रहती है। खेती या खान का या कच्चा माल बचने वाले देशो को कम मूल्य मिलता है और मशीन का माल या मशीन वेचने वाले दश को अधिक मूल्य मिलता है। लोहिया के मत म मकानो के किराये की कीमत भी विषम है। सरकारी कमचारियो को आय के दशाश म मकान किराय पर मिल जाता है चाहे उस मकान का किराया वास्तव म कितना भी अधिक होता हो। दूसरी ओर पूजीपति गर सरकारी कमचारियो से अपने मकानो का मनमाना किराया लेकर उनका शोषण करते है।[1]

डा० लोहिया की मूल्य-नीति और उसे स्थिर करने के उपाय —डॉ० लोहिया ने प्रत्येक क्षेत्र म ठोस और शोषण मुक्त मूल्य नीति निर्धारित की। उनके अनुसार मूल्य म दो फसलो के बीच मे एक आना सेर या सोलह प्रतिशत से अधिक का उतार-चढाव नही होना चाहिए, जिससे कि किसान को अपने श्रम

* * * * *

1—डॉ० लोहिया समाजवाद की अर्थ नीति पृष्ठ 18

के लिए अपनी विकास-नीति के कार्यान्वयन मे सरकार आंशिक ढग से उत्तरदायी हो सकती है परन्तु पूर्णरूपेण उसे ही उत्तरदायी नही ठहराया जा सकता। योजनाओ म जनता मे ही कर्मचारियो की नियुक्ति होती है वे ही योजनाओ के कार्यान्वयन मे भ्रष्टाचार के दोषी हैं। अत जनता का चरित्र भी दोषी है। प्रशासन का कोई भी स्वरूप सफल नही हो सकता, यदि जनता का चरित्र उच्च नही है।

डॉ० लोहिया ने भारतीय कृषि के पिछड़ेपन पर केवल चिन्ता ही व्यक्त नही की, अपितु उसके निराकरण भी प्रस्तुत किये। इस हेतु उन्होंने कहा था कि "व्यक्तिगत खेती सामूहिक खेती और तीसरी चीज भी, उद्योग भी जो गाँव के लायक उद्योग हो, जो बनाये जा सकें इन तीनो के समावेश से चीज होगी।[1] सामूहिक कृषि उनकी दृष्टि मे, केवल कृषको द्वारा ही चलाई जानी चाहिए। उसमे किसी भी शर्त पर ऐसे व्यक्ति सम्मिलित न किए जायँ जो हाथ से कृषि न करते हो। चाहे प्रबन्ध भले ही कुछ खराब रहे। उनकी योजना थी कि इस प्रकार का कृषि-कार्यक्रम कुछ व्यापक रूप मे चलाया जाना चाहिए और कृषि से उत्पन्न वस्तुओ का वितरण भी परिश्रम के आधार पर निष्पक्ष ढग से होना चाहिए। उनके कार्यक्रमानुसार कृषि-कार्य को विकास देने के लिए अधिकाधिक भूमि को कृषि योग्य बनाया जाना चाहिए। डॉ० लोहिया ने सन १९६४ ई० मे कहा था कि इस समय भारत म १८ करोड एकड भूमि परती पडी है जिसको सुधार कर खेती की जा सकती है। इस भूमि मे लगभग ३ ४ करोड एकड भूमि बहुत कम खर्च मे ही कृषि योग्य बनायी जा सकती है। दो करोड से चार करोड एकड भूमि जल डूब जमीन है जिसे वैज्ञानिक शोध द्वारा जल-मग्नता से छुडाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त गगा-जमुना मे कटने वाली जमीन भी लाखो एकड है। इस कटती हुई जमीन को बचाने के लिए भी उपाय किए जाने चाहिए।[2]

अन एव भू-सेना की योजना —भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिए डॉ० लोहिया न अन एव भू-सेना की योजना निर्मित की थी। भू-सेना के बारे मे उन्होंने कहा था जैसे बन्दूक वाली सेना वैसे ही हल वाली सेना। मोटी तरह से सोच तो हल वाली सेना जो नई जमीन को तोड़े, आबाद करे।[3] उनकी सलाह मे खाद्य-सामग्री के आयात मे जो व्यय होता है उसे

* * * * *

1—डॉ० लोहिया समाजवाद की अर्थनीति पृष्ठ 30
2—वही पृष्ठ 36-37
3—डॉ० लोहिया : भाषण बम्बई जनवरी 16 सन 1964 ई०

भू-सेना पर व्यय करना चाहिए। आज के भारत में ऐसी जमीनें गाँव से दूर चक के रूप में यत्र-तत्र पड़ी हुई हैं जिनमें निकट भविष्य में खेती होने की आशा दृष्टिगत नहीं होती। ऐसी भूमि पर वर्तमान कृषि व्यवस्था को हानि पहुँचाए बिना खेती कर देश का नव निर्माण किया जा सकता है। भू-सेना की योजना केवल कल्पना मात्र नहीं है। ब्रिटेन ने द्वितीय विश्वयुद्ध के समय इस प्रकार की योजना द्वारा ही अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ किया था।

डॉ० लोहिया की योजना थी कि भारतीय कृषि व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए दस लाख व्यक्तियों की भू-सेना का निर्माण किया जाना चाहिए। इस अन्न-सेना के द्वारा १५ करोड़ एकड़ उपलब्ध परती जमीन में से प्रति वर्ष एक करोड़ एकड़ भूमि को कृषि योग्य बनाया जा सकता है। भारत में जो भी औजार कृषि करने के लिए बनते हैं उनके द्वारा भू-सेना सुसज्जित की जानी चाहिए। शासन को चाहिए कि वह सर्वप्रथम कृषि सम्बन्धी औजारों के निर्माण के लिए लोहा दे, तदुपरान्त दूसरे औजारों के लिए। इसके अतिरिक्त डॉ० लोहिया ने भारत में बनाये जाने वाले लोहे के कृषि औजारों के स्तर में सुधार की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने यह भी कहा कि शासन को भू-सेना के सदस्यों के भोजन, वस्त्र और निवास का व्यय वहन करना चाहिए। अन्न-सेना के सैनिकों के लिए सामान्य वेतन भी दिया जाना चाहिए। उनकी योजनानुसार अन्न-सेना की वास्तविक भर्ती का कार्य भारत के विभिन्न राज्यों में निहित होगा। ये राज्य इन स्थानों की पूर्ति जिला, शहर अथवा ग्राम पंचायतों की सलाह लेकर करेंगे लेकिन ऐसी भर्ती की दर समय-समय पर केन्द्रीय शासन द्वारा निर्धारित की जायगी। यह अन्न-सेना पहले परती भूमि को कृषि योग्य बनायगी और तदुपरान्त उस पर खेती करेगी। अत्यावश्यक होने पर बुलडोजर्स और ट्रैक्टर्स का प्रयोग किया जायेगा।

डॉ० लोहिया का कहना था कि इस प्रकार की योजना के कार्यान्वियन में इस बात का ध्यान रखा जायगा कि अधिक खर्च न हो बल्कि उचित सीमा के अन्तर्गत पूँजी को लगाया जाय। प्रति एकड़ १५० रुपये की निर्धारित राशि (पूँजी) के आधार पर एक करोड़ एकड़ भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिए १५० करोड़ रुपये व्यय होंगे। इस कार्य को पूरा करने के लिए १० लाख सैनिकों की एक वर्ष के लिए आवश्यकता है और एक सैनिक पर प्रतिवर्ष १००० रुपये का खर्च होगा। इस प्रकार एक वर्ष में एक करोड़ एकड़ भूमि को २५० करोड़ रुपये में सैनिकों के खर्च समेत कृषि योग्य बनाया जा सकता है। पुनः प्रति सैनिक प्रति वर्ष १००० रुपये के व्यय के हिसाब से कृषियोग्य बनाई गयी भूमि

पर खेती करने के लिए एक वर्ष के लिए १० लाख सैनिक चाहिए जिन पर प्रतिवर्ष १०० करोड़ रुपया खर्च होगा। ५० करोड़ आकस्मिक आवश्यकता अथवा विविध खर्चों के लिए रखा जा सकता है। इस प्रकार प्रथम वर्ष में ढाई सौ करोड़ रुपये का खर्च और दूसरे वर्ष में १५० करोड़ रुपये का खर्च होगा। चूंकि दो वर्षों के अन्त में अन्न सेना इस खेती के द्वारा लगभग ४० लाख टन अन्न पैदा करेगी, अतः अपना मार्ग प्रशस्त करने में वह स्वयं समर्थ हो जायगी और सरकार द्वारा किये गये प्रारम्भिक खर्चे का यह उचित प्रतिफल दे सकेगी। अपने लागत खर्चे की उचित वापसी को सरकार विकास की अन्य योजनाओं में लगा सकेगी।

भू-सेना का महत्व — डॉ० लोहिया ने अन्न एवं भू-सेना को केवल आर्थिक विकास के लिए ही लाभदायक नहीं माना, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में भी उसके महत्वपूर्ण योगदान की ओर संकेत किया। उनके मतानुसार अन्न-सेना ४०-५० लाख व्यक्तियों की जीविका का केन्द्र बिन्दु होगी। इसके द्वारा आर्थिक विषमता तथा वर्ग और जाति के भेद समूल नष्ट होंगे। ग्रामीण व्यक्तियों के लिए यह सेना प्रोत्साहन और प्रेरणा का काम करेगी। इस योजना से उत्पादन में तो वृद्धि होगी ही साथ ही व्यक्तियों के तकनीकी ज्ञान का विकास होगा। यह सेना देश को अधिक सशक्त और सुरक्षित बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकेगी। इस प्रकार डॉ० लोहिया ने अन्न-सेना एवं भू-सेना को भारत के सर्वांगीण विकास में एक महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

डॉ० लोहिया की अन्न एवं भू-सेना की योजना बहुत ही वैज्ञानिक और व्यावहारिक है। इस योजना का कार्यान्वयन यदि न्यायप्रियता, कर्मठता और ईमानदारी के साथ किया जाये तो असफलता की कहीं कोई कल्पना नहीं की जा सकती। यह सेना डॉ० लोहिया के मौलिक विचारों का सृजन है। उनकी इस योजना से स्पष्ट होता है कि उनमें आत्म निर्भरता की भावना कूट-कूट कर भरी थी। उनकी इस योजना से ही नहीं अपितु उनके समस्त आर्थिक दर्शन से उनका यह विश्वास झलकता है कि अपने राष्ट्र में उपलब्ध उत्पादन साधनों के द्वारा ही राष्ट्र का आर्थिक विकास किया जा सकता है। वे विदेशी सहायता को पसन्द नहीं करते थे। यू० पी० आई० के हैदराबाद स्थित संवाददाता के प्रश्न का उत्तर देते हुए डॉ० लोहिया ने ६ सितम्बर सन् १९५८ ई० को कहा था, 'विदेशी सहायता के प्रति मैं बहुत आशंकित हूँ। मेरा निश्चित मत है कि विदेशी सहायता चाहे ब्रिटेन, रूस अथवा अमरीका से मिले केवल

मशीन बनाने वाली बडी मशीनो के रूप मे मिलने वाली सहायता को छोड कर भ्रष्ट, बेकार, आलसी, घूसखोर और खूनी प्रशासन का बढावा देती है।"[1]

अन्न के समुचित वितरण के अस्थायी हल —अन्न एव भू सेना अन्न-समस्या का स्थायी हल है। इसके अतिरिक्त अन्न-समस्या अथवा भुखमरी की स्थिति को नियन्त्रित करने के लिए डॉ० लोहिया ने कुछ प्रमुख कार्यक्रम दिये थे जिनमे 'घेरा डालो आन्दोलन', 'अन्न बाँटो आन्दोलन' आदि प्रमुख हैं। 'घेरा डालो आन्दोलन' में *भूखे लोग बडी सख्या मे सरकारी दफ्तरो सरकारी गोदामो या* अनाज के बडे व्यापारियो की गोदामो को घेर लेते हैं। यह घेरा वे उस समय तक डाले रहते हैं जब तक उन्हे अन्न अथवा जेल नही मिल जाती। इस आन्दोलन का उद्देश्य 'रोटी दो या जेल दो' ही है। डा० लोहिया के सयुक्त समाजवादी दल ने इस प्रकार के घेरे बिहार के डालटनगज तथा उत्तर प्रदेश के बस्ती और देवरिया जिले मे क्रमश जून जुलाई और अगस्त सन १९५८ ई० मे डाले जिसके परिणामस्वरूप भूखे लोगो को राशनकार्ड बाँटे गये।[2] डॉ० लोहिया ने इस आन्दोलन की प्रकृति को स्पष्ट करते हुए लिखा था, "घेरा डालो आन्दोलन चुने हुए लोगों का सत्याग्रह नही है, जो कानून तोडकर जेल जायें। यह भाजन के लिए लोगो का व्यापक जन-आन्दोलन है।"[3]

दूसरे तरह का आन्दोलन 'अन्न बाँटो आन्दोलन' है। इस प्रकार के आन्दोलन मे लोग अनाज की गोदामो को घेर लेते है और उन पर शातिपूर्ण ढग से कब्जा करके अनाज तौलकर बाँट लेते हैं और उसकी लिखा पढी करके छोड जाते हैं कि उनके पास पैसा या अनाज होने पर वे सवा गुना वापिस कर जायेंगे। सीधी और सरगुजा मे इस प्रकार के आन्दोलन चलाये गये।[4] तीसरे प्रकार का 'अन्न बाँटो आन्दोलन' ऐसा है जिसमे पुलिस की मार पीट अथवा पकड धकड के कारण घेरा डालने वाला को शान्ति-पूवक अनाज बाँटने अथवा सूची आदि बनाने का अवसर नही मिलता। इस कारण अनाज जल्दी जल्दी बाँटने म लिखा पढी पूण नही हो पाती। भूखे लोग बिना लिखा पढी के आवश्यकतानुसार अपना पेट भरने के लिए अनाज इस भावना के साथ ले लेते हैं कि उनके पास होने पर वापस लौटा देगे।

* * * * *

1—डॉ० लोहिया अन्न-समस्या पृष्ठ 20
2—वही पृष्ठ 17
3—वही पृष्ठ 14
4—वही पृष्ठ 14

इस प्रकार के आन्दोलनों की शासन ने डकैती और लूट की संज्ञा देकर अत्यधिक आलोचना की किन्तु वास्तविकता यह है कि "भोजन लोगों का अधिकार है। और भूखे लोगों को भोजन पहुँचाना लूट नहीं कहा जा सकता। अपराध की भावना होने पर ही इसे लूट या डकैती कहा जा सकता है।"[1] आज से ३० वर्ष पहले तो जर्मनी में यह कानून था कि यदि कोई अपनी जरूरत भर को लेता है, तो वह अपराधी नहीं है। डा० लोहिया ने 'घेरा डालो आन्दोलन' को सबसे अच्छा आन्दोलन कहा है। उनकी दृष्टि में दूसरे और तीसरे प्रकार के आन्दोलन क्रमशः कुछ कम अच्छे हैं लेकिन तीनों ही आन्दोलन उचित हैं। डा० लोहिया ने इन आन्दोलनों की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए कहा है कि 'केवल अपनी ओर से कभी हिंसा नहीं होनी चाहिए और न छोटे दूकानदारों और कच्चे आढ़तियों की गोदामों पर कब्जा करना चाहिए। कोशिश करके अनाज का हिसाब भी रखना चाहिए।"[2]

मुफ्त रसोई घर एवं अनाज के व्यापार का समाजीकरण—अन्न-संकट अथवा भुखमरी की परिस्थिति से मुक्ति पाने के लिए उपर्युक्त आन्दोलनों के अतिरिक्त डा० लोहिया ने मुफ्त रसोई घरों का खोलना और अनाज के व्यक्तिगत व्यापार को समाप्त करना आवश्यक माना। उनकी दृष्टि में ये दोनों कार्यक्रम अकाल जैसी स्थिति में अत्यावश्यक रूप में किये जाने चाहिये। मुफ्त रसोई घरों की चर्चा करते हुए सितम्बर सन् १९५८ ई० के लखनऊ भाषण में डॉ० लोहिया ने कहा था कि जहाँ कहीं लोगों को दो दिन में रोटी मिलती है वहाँ मुफ्त रोटी बँटनी चाहिए। भूख की ज्वाला शान्त करने के लिए कम से कम चार आने तक की रोटी दाल और सब्जी देनी चाहिए। इस तरह भूख से झुलस रहे देश के चार करोड़ लोगों को एक करोड़ प्रतिदिन के व्यय से मृत्यु के मुँह से बचाया जा सकता है। उनके मतानुसार २७ करोड़ रुपये प्रतिदिन व्यय करने वाली भारतीय सरकार के लिए भूखे लोगों के पेट भरने के पुण्यतम कार्य में एक करोड़ रुपये का व्यय भार-स्वरूप न होना चाहिए। इस प्रकार के रसोई घरों के कार्यक्रम की इस आधार पर आलोचना की जा सकती है कि भोजन की निःशुल्क प्राप्ति के कारण बहुत से व्यक्ति भोजन करने आ सकते हैं। इस आलोचना के लिए डॉ० लोहिया मनो

• • • • •

1—डॉ लोहिया अन्न-समस्या पृष्ठ 15
2—वही पृष्ठ 15

विज्ञान का सहारा लेते हुए कहते हैं, "गरीब स्वाभिमानी होता है। जब तक वह लाचार नहीं हो जाता, हाथ फलाने नहीं आता है।"[1]

भुखमरी को बचाने के लिए डॉ० लोहिया ने अनाज के व्यक्तिगत व्यापार को समाप्त करने की भी सलाह दी थी, क्योंकि व्यक्तिगत व्यापारी अनाज के व्यापार से अत्यधिक लाभ कमाकर भूखे को और अधिक भूखा बना देते है। डॉ० लोहिया का विचार था कि अनाज-व्यापार का समाजीकरण कर देने से अनाज की कीमतों में अधिक उतार-चढ़ाव नहीं होगा। इससे उपभोक्ताओं की सुरक्षा होगी और अनाज की कीमत स्थायी होने से किसान को भी लाभ होगा जिससे कृषि का विकास होगा। डॉ० आर० वी० राव भी इसी प्रकार का मत व्यक्त करते हुए कहते हैं, "Any agricultural plan should aim at the stabilisation of agricultural prices so that it becomes a profitable business "[2] डॉ० लोहिया अनाज के व्यापार को सरकार द्वारा चलाया जाना भी अनुचित और हानिकर मानते थे। उनकी धारणा थी कि "अनाज में भ्रष्टाचार, घूसखोरी और मुनाफाखोरी बड़े कारखानेदारों सरकारी अफसरों और राजनीतिक नेताओं के त्रिकोण के परिणाम स्वरूप है। अतएव अन्न व्यापार और मुफ्त रसोई घर को चलाने के लिए इससे कहीं ज्यादा लोगों की संस्था खड़ी करनी होगी।'[3] इस संस्था का सामान ढोने या तुरन्त कोई वस्तु निर्मित करने के लिए सरकारी यन्त्र और सेना उपलब्ध होना चाहिए।

घेरा डालो' और 'अन्न बाटो आन्दोलन तथा मुफ्त रसोई घर और अनाज व्यापार की सामूहिक संस्था आदि के कार्यक्रम यह सिद्ध करते है कि डॉ० लोहिया राजनीति को भोजन से पृथक नहीं रखना चाहते। उनकी स्पष्टोक्ति थी कि 'जो लोग यह कहते है कि राजनीति को भोजन से अलग रखो वे या तो अज्ञानी है, या बेईमान। राजनीति का मतलब और पहला काम लोगों का पेट भरना है। जिस राजनीति मे लोगो का पेट नहीं भरता वह राजनीति भ्रष्ट, पापी और नीच है।'[4] डा० लोहिया के उपर्युक्त कार्यक्रम केवल अन्न के असमान वितरण की समस्या का समाधान करते है। ये कार्यक्रम देश में अन्नाभाव की स्थिति में प्रभावशून्य हैं क्योंकि इन कार्यक्रमों का उद्देश्य

* * * *

1—डॉ० लोहिया अन्न-समस्या पृष्ठ 24
2—Dr R V Rao Current Economic Problems p 47 (Kitab Mahal Allahabad Bombay 1949)
3—डॉ लोहिया अन्न-समस्या पृष्ठ 19
4—वही पृष्ठ 12

अन्न का समान वितरण है न कि उसका उत्पादन। ये आन्दोलन समान वितरण भी उस सीमा तक चाहते हैं जिस सीमा तक भुखमरी और अनुचित मुनाफा खोरी से लोगो की बचत हो सके। अतः ये कार्यक्रम (घेरा डालो 'अन्न बाटो 'मुफ्त रसोई घर', अनाज-व्यापार की सामूहिक संस्था आदि) देश के भरे पूरे भण्डार से भूखे लोगो को अस्थायी रूप से पेट पूर्ति कराने के माध्यम मात्र हैं। डॉ० लोहिया के घिराव आन्दोलन के सम्बन्ध मे इतना तो कहा जा सकता है कि भले ही आन्दोलन का आरम्भ अहिंसात्मक ढग मे हो उसकी परिणति हिंसात्मक रूप मे बदल जायगी और प्रशासन के समक्ष नई समस्या उत्पन्न होगी। इसलिए वर्तमान परिस्थितियो मे इस प्रकार के आन्दोलनो का पूर्णत समर्थन नही किया जा सकता। किन्तु डॉ० लोहिया की अन्न और भू सेना देश की केवल अन्न समस्या का नही अपितु विविध कठिन समस्याओ का एक मात्र स्थायी समाधान है। अब प्रश्न केवल यह है कि भारतीय जन डॉ० लोहिया के द्वारा दी गयी अन्न एव भू सेना की योजना का कितने प्रभावशाली ढग से कार्यान्वयन करते हैं।

(५) भूमि का पुनर्वितरण

टी० एच० ग्रीन के समान डॉ० लोहिया का भी विश्वास था कि असमानता की जड भूमि का असमान वितरण है। बड़े बड़े सामन्त भूमि के एक बड़े भाग पर अपना स्वामित्व रखते हैं। वे भूमिहीनो को अपनी ज़मीन मे कार्य करने के लिए लगाते है और उनके श्रम का उचित पारिश्रमिक न देकर उनका शोषण करते हैं। बटाईदारी के नियम के कारण खेत की उपज का एक बहुत बडा हिस्सा खेत के मालिक को प्राप्त होता है। डा० लोहिया के अनुमान मे मालिक का ७५ प्रतिशत और खेतिहर किसान को २५ प्रतिशत मिलता है। कभी-कभी उसे उपज का हिस्सा बहुत कम या कभी-कभी नही के बराबर मिलता है।[1] डा० लोहिया का विचार था कि ज़मीन मालिक और बँटाईदार के बीच उपज का उचित वितरण होना चाहिए। उनके मत मे २५ प्रतिशत उपज मालिक का और ७५ प्रतिशत बँटाइदार को मिलना चाहिए। इस सम्बन्ध मे उनकी इच्छा थी "बँटाईदार का सगठित करके मजबूत करना है। मजबूत करने का अर्थ है कि जब फसल मे से गैर मुनासिब हिस्सा लेने मालिक या सरकार आय, तो अन्न जाय लेटें जेल जायें मार खाय। मै तो यही पसन्द करूँगा। लेकिन अगर यह नही कर सकते तो इतना तो कर ही सकते हो कि खड़े होओ पर फसल मत जाने

* * * * *

1—डॉ लोहिया क्रान्ति के लिए संगठन (भाग 1) पृष्ठ 209

दी।[1] डॉ० लाहिया की जमीन सम्बन्धी पुनर्वितरण की नीति थी, "कि अधिक से अधिक और कम से कम जमीन के स्वामित्व में एक और तीन का रिश्ता हो।"[2]

डा० लाहिया की सूक्ष्म दृष्टि ने राष्ट्रीय सीमाओं से बद्ध उपयुक्त जमीदारी व्यवस्था को अन्तर्राष्ट्रीय जगत में भी देखा। राष्ट्र के अन्दर जमीदारी प्रथा को मिटाने के साथ साथ वे अन्तर्राष्ट्रीय जमींदारी को भी समाप्त करना चाहते थे। उनके मतानुसार यह केवल आकस्मिक घटना मात्र है कि किसी राष्ट्र को अधिक जमीन प्राप्त हो गयी और किसी को कम। जमीन को किसी भी राष्ट्र ने कहीं से पट्टा नहीं कराया। कभी किसी जमीन में दूसरी जातियों के ऊपर कब्जा करने का, उन्हें प्राय नष्ट करने का कुछ जातियों को अधिक अवसर मिल गया। अमरीका में गोरों ने लाल हिन्दुस्तानियों को समाप्त कर उनकी जमीनें हड़प ली। रूस में जो कोई भी प्रारम्भ में आये उन लोगों ने वहाँ की जमीन अपने कब्जे में कर ली। अन्तर्राष्ट्रीय जमींदारी के अन्याय की व्याख्या करते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि साइबेरिया या आस्ट्रेलिया या कैनडा के बहुत बड़े हिस्से में एक वर्ग मील पर प्राय एक कैलीफोर्निया में एक वर्ग मील पर ७ या ८ व्यक्ति और हिन्दुस्तान में लगभग ३५० व्यक्ति रहते हैं और पूर्वी उत्तर प्रदेश या केरल में एक हजार। उनका विचार था कि विश्व के समस्त राष्ट्रों में जमीन का लगभग समान वितरण होना चाहिए।

डा० लोहिया का उपयुक्त विचार उचित प्रतीत होता है कि राष्ट्रों के जमीदार जिस प्रकार आकस्मिक रूप से जमीन के एक बड़े भाग को घेरने में सफल हुए उसी प्रकार विभिन्न राष्ट्र अपने-अपने क्षेत्रों को भी। किन्तु इस विश्व में कब्जे को करना, उसे निरन्तर बनाये रखना ही मूलाधार है जिस पर किसी व्यक्ति अथवा राष्ट्र की शक्ति खड़ी होती है और इसीलिए जमीदार राष्ट्रों से यह आशा करना व्यर्थ है कि वे अपने प्रदेश को किसी छोटे जमींदार राष्ट्र को अपने समान जमीदार बनाने के लिए त्याग दें। जमीन का सम्भव समान पुनर्वितरण किसी राज्य विशेष के अन्तर्गत व्यक्तियों के बीच सम्भव हो भी सकता है क्योंकि राज्य अपनी सप्रभु शक्ति का प्रयोग कर ऐसा करने में सक्षम है। किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय सम्प्रभुता की अनुपस्थिति में राष्ट्रों के बीच जमीन के समान पुनर्वितरण की आशा करना कल्पनातीत प्रतीत होता है।

* * * * *

1—डॉ० लोहिया क्रान्ति के लिए संगठन (भाग 1) पृष्ठ 210
2—वही पृष्ठ 186

(६) आर्थिक विकेन्द्रीकरण

सरकार की उच्च स्तरीय संस्थाओं में केन्द्रित शक्ति का निम्न स्तरीय संस्थाओं में वितरण ही विकेन्द्रीकरण है। यह आर्थिक विधायिनी या प्रशासनिक आदि क्षेत्रों में शक्ति के बिखराव की एक प्रक्रिया है। इनसाइक्लोपीडिया आफ सोशल साइन्सेज में लिखा गया है 'The process of decentralization denotes the transference of authority, legislative, judicial or administrative from a higher level of government to a lower [1] डा० लोहिया विकेन्द्रीकरण के प्रबल समर्थक थे। उनका विश्वास था कि आर्थिक, विधायिनी और प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण को सार्थक बनाने के लिए आर्थिक विकेन्द्रीकरण अत्यन्त आवश्यक है।

भारत में आर्थिक विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता —डा० लोहिया का विचार था कि औद्योगिक क्रिया की प्रगति अत्यधिक केन्द्रित होने के कारण राष्ट्रीय योजना की निर्विघ्न क्रियाशीलता में भारी रुकावट पड़ती है। भारत में दीर्घकाल तक उद्यमकर्त्ताओं को उद्योगों की स्थापना के सम्बन्ध में पूर्ण स्वतन्त्रता का परिणाम यह हुआ है कि देश के कुछ मुट्ठी भर व्यक्तियों और शहरों में उद्योग केन्द्रित हो गये हैं। ग्रामीण क्षेत्रों, छोटे कस्बों और अनेक नगरों में कोई उद्योग नहीं है। इसके अतिरिक्त कुछ गिने गिनाये धनिकों के अधिकार में उद्योग सीमित हो गये हैं। श्रमिक, गरीब और साधनहीन जनता शोषण का शिकार है। विशालकाय यन्त्र लालच के परिणाम और शोषण के माध्यम हैं। विशालकाय यन्त्रों द्वारा ही केन्द्रित और ऊंचे स्तर पर चलने वाला औद्योगीकरण जन्म लेता है। ये विशाल केन्द्रीकृत उद्योग नैतिक पतन, शारीरिक क्षति एवं मानसिक दुर्बलता को उत्पन्न करते हैं। इसलिए डा० लोहिया ने कहा था कि छोटी मशीनों पर आधारित उद्योग पद्धति मुल्क के लिए सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से भी आवश्यक है।'[2]

डा० लोहिया के मतानुसार भारत को अन्य देशों का अन्धानुकरण नहीं करना चाहिए। प्रत्येक देश की अपनी पृथक समस्याएँ होती हैं, जिनका समाधान वह अपनी परिस्थितियों और साधनों के अनुसार करता है। अन्य देशों से कुछ सीखने के उपरान्त भी हमें अपनी समस्याओं को अपने ही ढंग से

* * * * *

1—Encyclopaedia of Social Sciences Vol. 5-6 p 43
2—इन्दुमति केलकर लोहिया सिद्धान्त और कर्म पृष्ठ 196

हल करना चाहिए। भारत मे छोटी मशीनो की उपादेयता निरूपित करते हुए उन्होंने कहा था कि योरुप और अमरीका जसे धनी देशो के विपरीत भारत मे कच्चे माल और मानव शक्ति का बाहुल्य तथा धन का अभाव है। ऐसी स्थिति म राष्ट्रीय विकास के लिए छोटी मशीनें अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इनके द्वारा ही आर्थिक विकेन्द्रीकरण और उत्पादन म वृद्धि की जा सकती है। छोटी मशीनो की कल्पना का विवरण देते हुए डॉ० लोहिया न कहा था, म उस जमाने का चित्र आँखो के सामने देख रहा हूँ जबकि देश के सभी गाँवो म और शहरो मे विद्युतचालित छोटी मशीनों का एक बहुत बडा जाल बुनकर लोगो को काम दिया गया है और देश की सम्पत्ति बढ रही है।'[1]

डॉ० लोहिया की छोटी मशीनो की कल्पना —डॉ० लोहिया ने स्वर्णिम मध्यम मार्ग का अनुसरण करते हुए न तो गाधी के चरखा जसे प्राचीन सुस्त उपकरण अपनाए है और न ही आधुनिक विशालकाय यन्त्र। उनका मत था कि गाधी का अम्बर चर्खा नवीन छोटी मशीनो के लिए आधार हो सकता है, किन्तु केवल वही पर्याप्त नही। वे चाहते थे कि चर्खे जसी हाथ की मशीनो का कुछ और आधुनिकीकरण होना चाहिए। उन्हे बिजली पेट्रोल अथवा तेल आदि स परिचालित होना चाहिए। नवीन छोटी मशीनो के स्वरूप पर विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा था, "The small unit machine run by electricity or oil is the answer Only a few such machines exist, many more will have to be invented Technology, which the modern age has kept ever changing will have to make a revolutionary break with the present The problem will not be solved by going back to earlier machines discarded by modern civilisation, but by inventing new ones with a definite principle and aim [2]

छोटी मशीनों के निर्माण का निश्चित सिद्धान्त और निश्चित उद्देश्य — डॉ० लोहिया की योजना थी कि छोटी मशीनो का निर्माण साक्षात्कार सिद्धात के आधार पर होना चाहिए। वे भारतीय वज्ञानिको को छोटी मशीनें निर्मित करने की ओर उन्मुख करना चाहते थे। उनका विश्वास था कि पिछड़े देशो के स्वर्णिम भविष्य की कुन्जी कुशल वज्ञानिको के हाथ म है। यदि वे

* * * * *

1—इन्दुमति केलकर लोहिया सिद्धान्त और कर्म पृष्ठ 195

2—Dr Lohia Marx, Gandhi and Socialism p 326

छोटी मशीनों के आविष्कार में अपनी प्रतिभा का प्रयोग करें तो एक ओर आविष्कारों की सूची में उनका नाम लिया जाने लगेगा और दूसरी ओर राष्ट्रीय विकास भी दिनों दिन होगा। वे जानते थे कि विदेशी आविष्कारों के सहारे देश की आर्थिक व्यवस्था पुनर्जीवित नहीं की जा सकती। इसलिए वे भारतीय वज्ञानिकों को ही कुशल और सक्षम बनाना चाहते थे। इस हेतु डॉ० लोहिया की योजना थी कि भारतीय छात्रों की विदेशों में शिक्षा की व्यवस्था और राज्य द्वारा उसका नियन्त्रण होना चाहिए जिससे कि सार्वजनिक व निजी धन व्यर्थ नष्ट न होने पावे। इससे भी अधिक उन्हें यह पसन्द था कि विदेशों से शिक्षक इन्जीनियर और फोरमैन शिक्षा देने के लिए भारत आमंत्रित किए जायें। केवल तभी छोटी मशीनों का निर्माण शीघ्रता से हो सकेगा।

नवीन मशीनों के निर्माण के सम्बन्ध में डॉ० लोहिया की ध्यान देने योग्य दूसरी बात यह है कि इन मशीनों का निर्माण निश्चित उद्देश्य के लिए होगा। अजीब और मनमाने विषय को लेकर शोध करना उनका ध्येय था। उन्होंने स्पष्ट कहा था फिर आजकल की यह रफ्तार बदलनी पड़ेगी कि किसी भी अजीब और मनमाने विषय को लेकर खोज करने दी जाय। इसे छोड़ना पड़ेगा और उसके स्थान पर योजना बनाकर खोज करानी पड़ेगी ।[1] इन मशीनों के निर्माण का उद्देश्य केवल आर्थिक विकास ही नहीं अपितु समाज के सामान्य लक्ष्यों की प्राप्ति है। लक्ष्य की ओर संकेत करते हुए डॉ० लोहिया ने कहा था, 'This Machine will not only solve the economic problem of the under developed world, it will also enable a new exploration and achievements of the general aims of society'[2]

छोटी मशीनों का महत्व —उद्योगों का अधिकाधिक मात्रा में सभी वर्गों और सभी क्षेत्रों में वितरण ही आर्थिक विकेन्द्रीकरण है जिसकी प्राप्ति केवल छोटी मशीनों द्वारा ही हो सकती है। ये मशीन कम पूंजी में निर्मित होने के कारण जनता के अधिकांश भाग को प्राप्त हो सकती हैं। इन मशीनों की प्राप्ति से कुटियाँ, ग्राम कस्बा और शहर सभी अपने उपलब्ध कच्चे माल और मानव-शक्ति का सदुपयोग करने में समर्थ हो सकते हैं। इन मशीनों की सुलभता पर प्रकाश डालते हुए डॉ० लोहिया ने कहा था, 'This Machine shall be available to hamlet and town as much as to city it may be

* * * * *

1—लोहिया-भाषण रीवा 26 जनवरी 1950

2—Dr Lohia Marx Gandhi and Socialism p 3/6

maid of all work or as many kinds as possible [1] उनका मत था कि यथा-सम्भव कम लागत के उत्पादन यन्त्र और विशेष आवश्यकतानुसार भारी सामूहिक उत्पादन ही ऐसा सूत्र है जिससे अधिक वास्तविक कुछ भी सम्भव नहीं। कदाचित इसी आधार पर मानव कांचन मुक्ति के अधिक से अधिक समीप पहुच सकता है। यह एक ऐसा आधार तो अवश्य ही है जो मानव को एक ओर तो ऐसी आध्यात्मिकता से मुक्त कर देगा जो सदा भौतिकता की चिन्ताओं से त्रस्त रहती है और दूसरी ओर ऐसी भौतिकता से भी उसका पीछा छुड़ायेगा जो निरंतर आध्यात्मिक बनने की विफल चेष्टा में व्यस्त है।

छोटी मशीनों के औचित्य को सिद्ध करते हुए डा० लोहिया ने कहा कि ये मशीनें भारतीय स्थिति की विशिष्ट आवश्यकता के अनुरूप हैं। इन मशीनों से भारत को बहुत से लाभ हैं, जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं —

(१) छोटी मशीनों की व्यवस्था से निर्धन भी अपने कुटीर और लघु उद्योग धन्धे चला सकता है और भोजन, वस्त्र जैसे जीवन की आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है। गरीब या अपर्याप्तता का जीवन पर्याप्तता में परिणत हो सकता है।

(२) बड़ी मशीनें भारत के सामान्य जन के लिए समझ और प्रबन्ध के परे है।

(३) बड़ी मशीनों का प्रयोग धनी व्यक्ति अपने हित में कर निर्धन का शोषण करते हैं।

(४) व्यक्ति को छोटी मशीनों द्वारा अपने श्रम का उचित प्रतिफल प्राप्त होता है, क्योंकि श्रमिक के श्रम का शोषण नहीं हो पाता।

(५) इन मशीनों द्वारा समाजवाद का प्रमुख उद्देश्य 'कमेरा आयेगा लुटेरा जायेगा' पूर्ण होता है।

(६) आर्थिक विकेन्द्रीकरण इन्हीं छोटी मशीनों का परिणाम होता है। आर्थिक विकेन्द्रीकरण से देश के सभी क्षेत्रों और सभी वर्गों का विकास होता है।

(७) कृषि-जगत में भी आधुनिक छोटी मशीनों का निर्माण अधिकाधिक लाभदायक होगा।

यद्यपि डॉ० लोहिया छोटी मशीनों पर आधारित औद्योगिक व्यवस्था के प्रबल समर्थक थे, तथापि विशिष्ट उद्योगों के लिए अपरिहार्य बड़ी मशीनों के

* * * * *

1—Dr Lohia Marx Gandhi and Socialism p 326

निर्माण आदि महत्वपूर्ण और अनिवार्य उद्योगों के लिए हमें विदेशों से विशाल मशीनों को मँगाना आवश्यक है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि डॉ० लोहिया ने बड़ी और छोटी दोनों ही मशीनों के प्रयोग पर आवश्यकतानुसार बल दिया है। उन्होंने बड़े-बड़े और अनिवार्य उद्योगों में विशाल मशीनों का सहयोग चाहते हुए भी तेल, पेट्रोल, बिजली आदि से परिचालित छोटी मशीनों के विस्तार का सशक्त प्रतिपादन किया है। औद्योगीकरण की उनकी इस नीति से स्पष्ट होता है कि व जहाँ केन्द्रीकरण आवश्यक है वहाँ केन्द्रीकरण, और जहाँ विकेन्द्रीकरण आवश्यक है वहाँ विकेन्द्रीकरण चाहते थे। उनकी छोटी मशीनों की योजना से उनका यह विश्वास झलकता है कि समाजवादी समाज की रचना केवल आर्थिक विकेन्द्रीकरण द्वारा ही हो सकती है और भारतवर्ष में आर्थिक विकेन्द्रीकरण छोटी मशीनों के बिना सम्भव नहीं है, क्योंकि साधनहीन भारतीय जनता को एक ओर शोषक विशाल उद्योगों से मुक्ति चाहिए और दूसरी ओर स्वयं का विकास करने के लिए छोटे-छोटे नियन्त्रित उपकरण चाहिए।

(७) राष्ट्रीयकरण अथवा समाजीकरण

मानव के प्रत्येक क्रिया-कलाप में सम्पत्ति महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। सम्पत्ति के स्वामित्व की इच्छा स्वाभाविक रूप से सामान्य मानव में निहित रहती है। जीवन में सम्पत्ति का महत्व को हमेशा से ही स्वीकार किया जाता रहा है। सम्पत्ति को अच्छाई और बुराई दोनों की जड़ कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस सम्बन्ध में सामान्य धारणा यह है कि सम्पत्ति अच्छाई की अपेक्षा बुराई को अधिक मात्रा में जन्म देती है। मार्क्सवाद और साम्यवाद तो इस तथ्य को अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से रखते ही हैं साथ ही साथ उपनिषदों ने भी इसे स्वीकार किया है। डा० लोहिया का भी मत है "शायद सभी लोग मानते हैं कि सम्पत्ति है जड़ चाहे अच्छाइयों की भी हो, लेकिन बदमाशियों की तो जरूर है।[1] इसलिए समाजवादी चिन्तन में यह प्रश्न बहुत महत्व का है कि सम्पत्ति का स्वामी कौन हो (व्यक्ति अथवा समाज), और किस सीमा तक हो। आर्थिक व्यवस्था समाज की अन्य व्यवस्थाओं को बहुत हद तक प्रभावित करती है। अतः सम्पत्ति पर व्यक्तिगत स्वामित्व की दलील देने वाले विचारक भी सम्पत्ति का प्रयोग सामाजिक हित में चाहते हैं। सम्पत्ति पर

* * * * *

1—डॉ॰ लोहिया : समाजवाद की अर्थनीति पृष्ठ 23

समाज अथवा राष्ट्र के स्वामित्व का तो सीधा उद्देश्य ही समाज कल्याण है। सम्पत्ति के प्रयोग में ही नहीं, अपितु समस्त जीवन मूल्यों में व्यक्तिगत स्वार्थ की समाप्ति ही समाजवाद का लक्ष्य है, जिसकी अभिव्यक्ति उपनिषद् के निम्नलिखित श्लोक में द्रष्टव्य है —

'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चिज्जगत्यां जगत।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम्॥ [1]

अर्थात् संसार में जो कुछ है, उसमें ईश्वर का वास है, अतः त्यागपूर्वक भोग करना चाहिए। किसी के धन की इच्छा मत करो। श्लोक की इस कल्याणकारी भावना को विधि का रूप देने के लिए ही समाजवाद सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण अथवा समाजीकरण का सशक्त प्रतिपादन करता है।

डा० लोहिया की राष्ट्रीयकरण की नीति —डा० लोहिया का विचार था कि व्यक्ति अथवा उसके परिवार के पास केवल उतने उत्पादन के साधन चाहिए जितने से परिवार स्वयं हाथ से काम कर अच्छा जीवन यापन कर सकता हो। उनके मत में, श्रम के शोषण पर आधारित समस्त उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण होना चाहिए। खेतिहर मजदूरों के द्वारा कराई जाने वाली कृषि का भी राष्ट्रीयकरण आवश्यक है। वे चाहते थे कि व्यक्ति के पास दो-चार कमरों वाला और बिना किसी लम्बे चौड़े बगीचे का केवल एक घर निवास हेतु हो और शेष मकानों का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाय। डॉ० लोहिया के ही शब्दों में " जिस किसी कारखाने या खेत में इन्सान और उसका कुटुम्ब किसी दूसरे इन्सान को मजदूर रखे उसका राष्ट्रीयकरण करना आवश्यक है, केवल उतनी ही सम्पत्ति आदमी के पास रहनी चाहिए जो उसके लिए है या जिसकी पैदावार खुद अपने कुटुम्ब में इस्तेमाल कर सके। जिस मकान में जो रहता है—अकेला एक मकान, बिना किसी लम्बे-चौड़े बगीचे के, दो-चार कमरोंवाला—उसमें वह रहेगा। इसके अलावा जितने भी मकान और कारखाने वगैरह हैं उनका राष्ट्रीयकरण होना चाहिए। [2]

डा० लोहिया की निजी विभाग पर कोई आस्था नहीं रह गयी थी, उसमें व्याप्त लाभ का लालच और शोषण का साम्राज्य भारत की आर्थिक विषमता का मूल कारण है। अतः व्यक्तिगत सम्पत्ति का उन्मूलन होना चाहिए। उन्होंने स्पष्ट कहा था, "Private property must of course go except

* * * * *

1—ईशावास्योपनिषद् का प्रथम मन्त्र
2—डॉ लोहिया भारत में समाजवाद पृष्ठ 22

such as does not occasion employment of one person by another'[1] उन्होंने सम्पत्ति के समाजीकरण अथवा राष्ट्रीयकरण पर अत्यधिक बल दिया था। किन्तु वे इस वहम मे नही पडना चाहते थे कि सम्पत्ति का समाजीकरण किया जाय या राष्ट्रीयकरण।

सम्पत्ति के प्रति मोह की भी समाप्ति अनिवार्य —यद्यपि डा० लोहिया सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण के पक्षपाती थे तथापि वे इस ही पर्याप्त नही मानते थे। उनकी दृष्टि मे सम्पत्ति की संस्था और सम्पत्ति के मोह दोनो का समाप्त करना पडेगा। उनकी मान्यता थी कि सम्पत्ति के प्रति मोह-समाप्ति का भारतीय प्रयास और सम्पत्ति की संस्था समाप्ति का मार्क्सवादी प्रयास एकांगी हैं। वे ऐसी व्यवस्था लाना चाहते थे जिसमे एक ओर तो सम्पत्ति के मोह का नाश हो और दूसरी ओर सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण हो।

क्षतिपूर्ति नहीं —जिन उत्पादन के साधनों को राष्ट्रीयकृत किया जाता है उनके प्रतिफल के रूप मे शासन द्वारा उन साधनों के स्वामियों को सामान्यत क्षतिपूर्ति की व्यवस्था की जाती है। परन्तु राष्ट्रीयकृत की जानेवाली सम्पत्ति के प्रतिफल मे डा० लोहिया कोई क्षतिपूर्ति नही देना चाहते। इस संबध मे उन्होंने मुख्यत दो तर्क दिये है। प्रथम तर्क के अनुसार राज्य सम्प्रभु है। अत उसे क्षतिपूर्ति के बिना व्यक्तिगत सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण का अधिकार है। द्वितीय तर्क यह है कि यदि क्षतिपूर्ति देने के उपरान्त ही व्यक्तिगत सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण किया जाय, तो किसी भी सरकार के लिए यह सम्भव न होगा कि वह अधिकांश उत्पादन के साधनों को राष्ट्रीयकृत कर सके और उसके लिए क्षतिपूर्ति दे सके। वे बिना क्षतिपूर्ति जमींदार से जमीन छीन कर जमीन जोतने वाले को देना चाहते थे। किन्तु क्षतिपूर्ति के स्थान पर वे पुनर्निवास क्षतिपूर्ति के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं जिसका अर्थ है कि राष्ट्रीयकरण के कारण जो व्यक्ति अपनी आजीविका के साधन से वंचित हो जाते है उनके लिए विकल्प रोजगार या छोटे धन-अनुदान की व्यवस्था हो।

विकेन्द्रित राष्ट्रीयकरण —यद्यपि भारत के लिए डा० लोहिया ने राष्ट्रीयकरण को अनिवार्य माना तथापि उनकी मान्यता था कि राष्ट्रीयकरण मात्र ही समाजवाद नही है। उनके मत मे सामाजिक स्वामित्व और नियंत्रण भी यथा-संभव विकेन्द्रित होना चाहिए। उन्होंने स्पष्ट कहा था 'Social

* * * * *

1—Dr Lohia Marx, Gandhi and Socialism, p 326

ownership and control must be decentralized to the maximum extent possible '[1] उनका विश्वास था कि सरकार भी एकाधिकार की असीमित शक्ति पाकर पीड़ादायक और शोषक हो सकती है। उनके मत मे जब सरकारी उद्योगो मे विलासिता अपव्यय कुव्यवस्था और केन्द्रीयकरण की वृत्ति बढ जावे तब उसे सरकारी पूजीवाद कहना चाहिये, जो कि व्यक्तिगत पूजीवाद से अधिक हानिकर होती है। इस केन्द्रीकरण का सबसे भयकर परिणाम यह भी हो सकता है कि सरकार न जाने कब राष्ट्रीयकृत सम्पत्ति को करोड पतियों के हाथ बेच दे, जैसा कि जापान म एक बार हो चुका है।[2] इसलिए उन्होने राष्ट्रीयकरण के साथ साथ विकेन्द्रीकरण की भी व्यवस्था दी है जिसके अनुसार राष्ट्रीयकृत सम्पत्ति का स्वामित्व ग्राम से लेकर केन्द्र तक की विभिन्न राजकीय इकाइयो मे निहित होगा। डॉ० लोहिया के ही शब्दो मे, "Social ownership shall be held at various levels corresponding to various structures of the State, from village to the federation "[3]

राष्ट्रीयकृत उद्योगो की व्यवस्था —डॉ० लोहिया राष्ट्रीयकरण के पक्ष मे थे किन्तु राष्ट्रीयकृत उद्योगो के कुप्रबन्ध उत्साहहीनता अक्षमता और अपव्यय के प्रति वे सजग थे। उनका कहना था कि श्रमिको म उत्साह और श्रम क्षमता बनाये रखन के लिए लाभ का उचित भाग उनको दिया जाना चाहिए। प्रबन्धको के कुप्रबन्ध और अनुत्तरदायित्व को समाप्त करने के लिए उन पर कडा नियन्त्रण रखना चाहिए। फिजूल खर्ची और विलासिता का समाप्त कर उद्योगो का सुदृढ करना चाहिए। व कहा करते थे 'खाली राष्ट्रीयकरण करन मे काम नही चलता। सम्पत्ति को सामाजिक बना दन से तो काम नही चल गया, क्योंकि उस सामाजिक सम्पत्ति पर किस तरह का नियन्त्रण है, कौन लोग हैं कैसे उसकी आमदनी का बँटवारा करते हैं जो उसमे से साल भर मे माल निकलता है उसको किस तरह से बाटते हैं इस पर बहुत कुछ निर्भर करेगा।'[4]

इस प्रकार डा० लोहिया न राष्ट्रीयकृत उद्योगो की सुव्यवस्था कठिन नियन्त्रण आय का उचित वितरण प्रबन्धको के सरल जीवन आदि पर बल देकर राष्ट्रीयकरण की सार्थकता प्रमाणित की है। इसके अतिरिक्त उन्होने राष्ट्रीयकरण के सबसे बडे दोष केन्द्रीकरण को समाप्त कर उसकी एक बहुत

* * * * *

1—Dr Lohia Marx Gandhi and Socialism p 286
2—डॉ० लोहिया भारत मे समाजवाद पृष्ठ 11
3—Dr Lohia Marx Gandhi and Socialism p 480
4—डॉ लोहिया समाजवाद की अर्थनीति पृष्ठ 13

बड़ी बुराई दूर कर दी है। वास्तव में उपर्युक्त तत्वों के बिना राष्ट्रीयकरण एक धोखा और कपट के अतिरिक्त कुछ नहीं है। नौकरशाही, फिजूलखर्ची अनुत्तर दायित्व उत्साहहीनता, कुप्रबन्ध आदि की उपस्थिति में राष्ट्रीयकृत उद्योग लाभ के स्थान में निश्चयात्मक रूप से हानि पर हानि उठाते हैं। वस राष्ट्रीयकरण के सभी प्रतिपादक अपनी नीति में उपर्युक्त गुणों का समावेश और दुर्गुणों का निष्कासन रखते हैं किन्तु देखना यह होता है कि क्या नीति का यथोचित कार्यान्वयन हो रहा है।

(८) खर्च पर सीमा

यद्यपि डॉ० लोहिया बरागी और संन्यासी जैसे त्यागी जीवन को अच्छा नहीं मानते और न ही उन्हें गांधी तथा विनोबा के आधी धोती वाले जीवन से कोई लगाव था तथापि देश, काल की परिस्थिति के अनुकूल आवश्यकताओं के संयम में उनको अचल विश्वास था। उन्हें यह पसन्द नहीं था कि गरीब भारत में कुछ व्यक्ति लाखों रुपया प्रतिदिन व्यय कर मौज उड़ावें और कठोर श्रम करने वाले अधिकांश व्यक्ति रोटी तक के लिए मुहताज हों। उनकी दृष्टि में असमान खपत के इस आधुनिकीकरण से समाज का विघटन तो होना ही है, साथ ही साथ आर्थिक उन्नति अवरुद्ध होती है क्योंकि विलासिता में व्यय होने वाला पैसा उत्पादन कार्यों में पूरी की तरह प्रयुक्त नहीं हो पाता। परिणामस्वरूप न तो उत्पादन में वृद्धि होती है और न ही वस्तुओं के मूल्य घटते हैं जिससे सामान्य जीवन कठिन होता जा रहा है। इस प्रकार की विषम स्थिति को उत्पन्न करने वाले विलासी नेताओं पर अत्यधिक रोष प्रकट करते हुए डा० लोहिया ने कहा था कि त्याग और कर्तव्य के युग ने हमें स्वतन्त्रता प्रदान की थी। इस स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए और भारतीय कृषि तथा उद्योग विकसित करने के लिए नेताओं को इसी साधनामय मार्ग का अनुसरण करना चाहिए था, लेकिन यह न करके महात्मा गांधी के त्याग और तकलीफ के युग को छोड़कर भोग के युग पर चले गये और भोग के युग पर जाकर उन्होंने सारे देश को बरबाद कर डाला।'[1]

खर्च पर सीमा का प्रस्ताव—उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर डॉ० लोहिया ने खर्च पर सीमा का सशक्त प्रतिपादन किया। जून सन् १९६७ ई० में डा० लोहिया ने खर्च पर सीमा नामक प्रसिद्ध प्रस्ताव रखा जिसमें उन्होंने १५०० रु० मासिक व्यय की अधिकतम सीमा निर्धारित करने के लिए लोक

* * * * *

1—डॉ० लोहिया सुधरो अथवा टूटो पृष्ठ 19

सभा को सचेत किया। उन्होंने यह सीमा केवल २० अथवा २५ वर्ष तक चाही थी, क्योंकि उनके कार्यक्रमों के द्वारा उस समय तक भारत की स्थिति सुदृढ़ हो जायगी।

डॉ० लोहिया ने स्पष्ट किया कि प्रति व्यक्ति नहीं, अपितु प्रति कुटुम्ब को १५०० रु० मासिक से अधिक खर्च न करने दिया जाय। इस खर्च की सीमा में वेतन और सुविधाएँ दोनों सम्मिलित हैं। केवल गुणानादि की प्रेरणा हेतु एक आदमी को ५०० या १००० रु० महीना दिया जा सकता है, अधिक नहीं। इस प्रकार निर्धारित सीमा के खर्च और गुणानादि की प्रेरणा हेतु दिये गये धन के अतिरिक्त व्यक्ति अन्य धन को एकत्रित नहीं कर सकते हैं। उन्होंने कहा कि, "इसका साफ मतलब होता है कि आमदनी करके अप्रत्यक्ष रूप से अपने पास रखने की इस प्रस्ताव में कोई गुन्जाइश नहीं है।[1] खर्च पर सीमा लगाने के ढग पर उनको कोई आपत्ति नहीं थी। यह सीमा स्पष्ट कानून द्वारा, आय-कर द्वारा अथवा किसी अन्य उपाय द्वारा बाँधी जा सकती थी। डॉ० लोहिया के मतानुसार खर्च पर सीमा बाँधने से लगभग १५ अरब रुपया वार्षिक बच सकता था। उनका कहना था कि आज के भारत को जितनी चिन्ता नीचे के नौकरों के वेतन बढ़ाने की होनी चाहिए, उससे ज्यादा चिन्ता ऊपर वालों के खर्चे और सुविधाएँ घटाने की होनी चाहिए। इस प्रस्ताव के समर्थक सर्वश्री मधु लिमये, स० मो० बनर्जी, एम० कन्डप्पन अटल बिहारी वाजपेयी, पी० राममूर्ति दिनकर देसाई तनेती विश्वनाथन रवि राय आदि और विरोधी सर्वश्री मोरारजी देसाई, अशोक मेहता, सुशीला नायर एन० के० सामानी, अमृतलाल नाहटा कमलनयन बजाज रणधीरसिंह, आचार्य कृपलानी आदि थे।

खर्च पर सीमा के आधार —डॉ० लोहिया ने खर्च पर सीमा के प्रस्ताव का निम्नलिखित आधारों पर प्रतिपादन किया—

(१) सर्वप्रथम, डॉ० लोहिया ने खर्च पर सीमा का समर्थन मनोवैज्ञानिक आधार पर किया है। उनकी दृष्टि में मंत्री, सरकारी पदाधिकारी, सेठ आदि ही विलासी जीवन व्यतीत करने और आर्थिक विषमता फैलाने के कारण हैं। खर्च पर सीमा बँधने से इनको भी आटा-दाल का भाव मालूम होगा और केवल तभी इन्हें ऊँची कीमतों से पिस रहे अपार जन समूह की चिन्ता होगी अन्यथा नहीं। इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा था "जब बड़े मन्त्रियों के घर में नमक, दाल हल्दी के दामों की फिक्र होने लग जायेगी तब

* * * * *

1—डॉ लोहिया खर्च पर सीमा (प्रस्ताव और बहस) पृष्ठ 35

बडी बुराई दूर कर दी है। वास्तव म उपर्युक्त तत्वो के बिना राष्टीयकरण एक धाखा और कपट के अतिरिक्त कुछ नही है। नौकरशाही, फिजूलखर्ची अनुत्तर दायित्व उत्साहहीनता, कुप्रबन्ध आदि की उपस्थिति म राष्ट्रीयकृत उद्योग लाभ के स्थान मे निश्चयात्मक रूप से हानि पर हानि उठाते हैं। वसे राष्ट्रीयकरण के सभी प्रतिपादक अपनी नीति मे उपयुक्त गुणो का समावेश और दुर्गुणो का निष्कासन रखते हैं किन्तु देखना यह होता है कि क्या नीति का यथोचित कार्यान्वयन हो रहा है।

(८) खच पर सीमा

यद्यपि डॉ० लोहिया बरागी और सन्यासी जसे त्यागी जीवन को अच्छा नही मानते और न ही उन्हे गाधी तथा विनोबा के आधी धोती वाले जीवन से कोई लगाव था तथापि देश, काल की परिस्थिति के अनुकूल आवश्यकताओं के सयम मे उनको अचल विश्वास था। उन्हे यह पसन्द नही था कि गरीब भारत म कुछ व्यक्ति लाखो रुपया प्रतिदिन व्यय कर मौज उडायें और कठोर श्रम करन वाने अधिकाश व्यक्ति रोटी तक के लिए मुहताज हो। उनकी दष्टि म असमान खपत के इस आधुनिकीकरण से समाज का विघटन तो होता ही है साथ ही साथ आर्थिक उन्नति अवरुद्ध होती है, क्योकि विलासिता म व्यय होन वाला पसा उत्पादन कार्यों मे पूजी की तरह प्रयुक्त नही हो पाता। परिणामस्वरूप न तो उत्पादन मे वद्धि होती है और न ही वस्तुओ के मूल्य घटते हैं जिससे सामान्य जीवन कठिन होता जा रहा है। इस प्रकार की विषम स्थिति का उत्पन्न करने वाले विलासी नेताओ पर अत्यधिक रोष प्रकट करते हुए डा० लोहिया न कहा था कि त्याग और कत्तव्य के युग ने हमे स्वतन्त्रता प्रदान की था। इस स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण बनाये रखन के लिए और भारतीय कृषि तथा उद्योग विकसित करन के लिए नेताओ को इसी साधनामय माग का अनुसरण करना चाहिए था, 'लेकिन यह न करके महात्मा गाधी के त्याग और तकलीफ के युग को छोडकर, भोग के युग पर चले गये और भोग के युग पर जाकर उन्होने सारे देश को बरबाद कर डाला।[1]

'खच पर सीमा का प्रस्ताव —उपयुक्त तथ्यो के आधार पर डॉ० लोहिया ने खच पर सीमा का सशक्त प्रतिपादन किया। जून सन् १९६७ ई० म डा० लोहिया न खच पर सीमा नामक प्रसिद्ध प्रस्ताव रखा जिसमे उन्होने १५०० रु० मासिक व्यय की अधिकतम सीमा निर्धारित करने के लिए लोक

* * * * *

1—डॉ लोहिया सुधरो अथवा टूटो पृष्ठ 19

सभा को मर्बेत किया। उन्होने यह सीमा केवल २० अथवा २५ वर्ष तक चाही थी, क्योकि उनके कार्यक्रमो के द्वारा उस समय तक भारत की स्थिति सुदृढ हो जायगी।

डा० लोहिया ने स्पष्ट किया कि प्रति व्यक्ति नही अपितु प्रति कुटुम्ब को १५०० रु० मासिक से अधिक खर्च न करने दिया जाय। इस खर्च की सीमा मे वेतन और सुविधाएँ दोनों सम्मिलित हैं। केवल सन्तानादि की प्रेरणा हेतु एक आदमी को ५०० या १००० रु० महीना दिया जा सकता है, अधिक नही। इस प्रकार निर्धारित सीमा के खर्च और सन्तानादि की प्रेरणा हेतु दिये गये धन के अतिरिक्त व्यक्ति अन्य धन का एकत्रित नही कर सकते हैं। उन्होंने कहा कि, "इसका साफ मतलब होता है कि आमदनी करके अशयश रूप से अपने पास रखने की इस प्रस्ताव मे कोई गुन्जाइश नही है।"[1] खर्च पर सीमा लगाने के ढग पर उनको कोई आपत्ति नही थी। यह सीमा स्पष्ट कानून द्वारा, आय-कर द्वारा अथवा किसी अन्य उपाय द्वारा बाँधी जा सकती थी। डॉ० लोहिया के मतानुसार खर्च पर सीमा बाँधने से लगभग १५ अरब रुपया वार्षिक बच सकता था। उनका कहना था कि आज के भारत को जितनी चिन्ता नीचे के नौकरो के बोनस बढाने की होनी चाहिए उससे ज्यादा चिन्ता ऊपर वालो के खर्चे और सुविधाएँ घटाने की होनी चाहिए। इस प्रस्ताव के समर्थक सर्वश्री मधु लिमये, स० मो० बनर्जी०, एम० कडडप्पन, अटल बिहारी वाजपेयी पी० राममूर्ति दिनकर देसाई तनती विश्वनाथन, रवि राय आदि और विरोधी सर्वश्री मोरारजी देसाई अशोक मेहता, सुशीला नायर एन० के० सोमानी, अमृत लाल नाहटा, कमलनयन बजाज, रणधीरसिंह आचार्य कृपलानी आदि थे।

'खर्च पर सीमा' के आधार —डॉ० लोहिया ने खर्च पर सीमा के प्रस्ताव का निम्नलिखित आधारो पर प्रतिपादन किया—

(१) सर्वप्रथम, डॉ० लोहिया ने खर्च पर सीमा का समर्थन मनोवैज्ञानिक आधार पर किया है। उनकी दृष्टि मे मन्त्री सरकारी पदाधिकारी, सेठ आदि ही विलासी जीवन व्यतीत करने और आर्थिक विषमता फैलाने के कारण हैं। खर्च पर सीमा बँधने से इनको भी आटा दाल का भाव मालूम होगा और केवल तभी इन्हें ऊँची कीमतो से पिस रहे अपार जन समूह की चिन्ता होगी अन्यथा नही। इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा था "जब बड़े मन्त्रियो के घर मे नमक, दाल हल्दी के दामो की फिक्र होने लग जायेगी तब

* * * * *

1—डॉ० लोहिया खर्च पर सीमा (प्रस्ताव और बहस) पृष्ठ 35

जाकर चीजों के दाम गिरेंगे, उससे पहले गिरने वाले नही है तो पहले बडे लागो के खर्चे गिराओ।"[1]

(२) द्वितीय, खच पर सीमा साम्प्रदायिकता की भावना को समाप्त करने मे महत्वपूर्ण योगदान देगी। उन्होन कहा कि बडे और विलासी लोग ईमानदार नही रह गये हैं। स्वतन्त्रता पश्चात से वतमान तक इन्होने लूट-खसोट मचायी और जो पाया सो उडाया है। इस कारण भारत की अथ-व्यवस्था विकास उन्मुख नही है और जनता को सम्पूण भारत के विकास मे विश्वास नही रह गया है। अत हर व्यक्ति अथवा समूह भाषा, प्रदेश जाति, धर्म आदि के आधार पर अपने हिस्से को बढाने के प्रयास मे लूट-खसोट कर रहा है। खच पर सीमा से विघटनात्मक के स्थान मे सगठनात्मक शक्तियों का प्रादुर्भाव होगा क्योंकि बडो और धनाढयो के सरल जीवन को देखकर नेताओ मे तथा राष्ट्र विकास में जनता को विश्वास पदा होगा।

(३) डॉ० लोहिया का मत था कि खच पर सीमा से तीन आने प्रतिदिन पर जीवन चलाने वालो के प्रति न्याय हो सकेगा जिससे उनकी कार्यक्षमता मे वद्धि होगी और परिणाम स्वरूप राष्ट्र के विकास म भी वद्धि होगी।

(४) उन्होने कहा कि अधिकाश सरकारी नौकर अनावश्यक अनुत्पादक कार्यों मे लगे हैं। इन पर होने वाला व्यय फिजूल खर्चा है। ये कमचारी मन्त्रियो और बडे सरकारी नौकरो तथा धनाढयो की सुविधाओ के स्रोत होने के कारण उनके खच मे सम्मिलित हैं जिनका निष्कासन खच पर सीमा से अनिवायत हो जायगा। उनके निकलने से बेमतलब खर्चे मे कमी होगी। इसके अतिरिक्त उन्हें अन्य उत्पादन-कार्यों मे लगाकर देश का नवनिर्माण किया जा सकता है।

(५) डॉ० लोहिया का तक था कि खच पर सीमा से देश के कणधारो विधायको धनाढयो, नौकरो आदि के खर्चे सीमित होंगे। परिणामस्वरूप स्वय अपने उदाहरण के द्वारा वे अधिकाश जनता को खच कम करने और त्याग करने की शिक्षा दे सकेंगे अन्यथा नही। इसके विपरीत यदि वे स्वय विलासी और खर्चीला जीवन बिताते हैं तो वे दूसरो को किस मुह से त्याग और देश निर्माण का पाठ पढ़ा सकेंगे?

(६) डा० लोहिया की दष्टि म सम्पूण कृषि सिंचाई की व्यवस्था करने के लिए लगभग ४० अरब से एक खरब रुपये तक की आवश्यकता होगी जिसकी पूर्ति 'अभाव की साझेदारी' अथवा खच पर सीमा के द्वारा की जा सकती है।

* * * * *

1—डॉ० लोहिया खर्चे पर सीमा (प्रस्ताव और बहस) पृष्ठ 2

(७) मार्क्स ने सम्पत्ति की संस्था का हल निकाला था। हमारे उपनिषदों ने सम्पत्ति के मोह का हल निकाला था। आज तक किसी व्यक्ति, किसी भी समाज और किसी भी देश ने सम्पत्ति की संस्था और सम्पत्ति के मोह का एक साथ हल नहीं निकाला। किन्तु डॉ० लोहिया ने सम्पत्ति के मोह और सम्पत्ति की संस्था का एक साथ हल निकाला था। उन्होंने राष्ट्रीयकरण द्वारा सम्पत्ति की संस्था का हल और खर्च पर सीमा के द्वारा सम्पत्ति के मोह का हल निकाला था। उनका कहना था, "किसी तरह से हम कोई ऐसा रास्ता निकालें कि सम्पत्ति के मोह और सम्पत्ति की संस्था, इन दोनों का हल निकाल सकें। भोग की इच्छा और भोग की व्यवस्था दोनों का हल निकाल सकें। मैंने यही बात यहाँ पर रखी है कि किसी तरह से भोग की व्यवस्था पर रुकावट लगाई जाय, भोग की इच्छा पर रुकावट लगाई जाए।'[1]

(८) उनका विचार था कि खर्च पर सीमा से पूंजी का निर्माण होगा जिसके परिणामस्वरूप विदेशी सहायता से देश को मुक्ति मिलेगी और देश आत्म निर्भर हो सकेगा। बहुत से धनिकों के पास करोड़ों रुपये, बहुत सा सोना, चाँदी, हीरा आदि बेमतलब जमा है। इनका भी उपयोग पूंजी की तरह हो सकेगा, क्योंकि खर्च पर सीमा द्वारा कोई व्यक्ति अनावश्यक माल जमा न रख सकेगा।

'खर्च पर सीमा' प्रस्ताव की समालोचना —उपर्युक्त खर्च पर सीमा प्रस्ताव की निम्नलिखित आलोचनाएँ और प्रत्यालोचनाएँ की जा सकती हैं —

(१) 'खर्च पर सीमा' सिद्धान्त पर सर्वप्रथम आपत्ति यह उठाई जा सकती है कि यह सिद्धान्त मानव-स्वभाव के सर्वथा प्रतिकूल है। धन के इकट्ठा करने और उसका अधिकाधिक रूप में उपभोग करने की इच्छा व्यक्ति में स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहती है। खर्च पर सीमा के सिद्धान्त द्वारा डॉ० लोहिया व्यक्ति को स्थितप्रज्ञ, संयामी अथवा कामना रहित बनाना चाहते हैं। इस आलोचना में कोई सार नहीं मालूम होता, क्योंकि डॉ० लोहिया, व्यक्ति को न तो पूर्ण योगी बनाना चाहते हैं और न पूर्ण भोगी। खर्च पर सीमा अस्थायी रूप से खींच कर उन्होंने मध्यम स्वर्णिम मार्ग का अनुसरण किया है। गीता के निम्नलिखित श्लोक में भी तो कहा गया है कि कछुए के समान अंग समेट लेने वाले व्यक्ति की बुद्धि स्थिर रहती है —

* * * * *

1—डॉ० लोहिया : खर्च पर सीमा (प्रस्ताव और बहस) पृष्ठ 13

"यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥"[1]

फिर भी डॉ० लोहिया ने मानव प्रकृति की चचलता को देखकर पूर्ण और स्थायी रूप से अगो के समेटने और सयम बरतने की बात नही कही। उन्होंने तो केवल अनुत्पादक खर्चों म कमी करने, अपव्यय को समाप्त करने और अनावश्यक धन इकट्ठा न करने पर बल दिया है जो मेरे विचार से मानव स्वभाव के विपरीत नही है। व्यक्तिगत सम्पत्ति के समर्थक अरस्तू ने भी सम्पत्ति प्रयोग पर उचित सीमाएँ लगाई थीं। इसके अतिरिक्त डॉ० लोहिया के इस सीमा निर्धारण से तीन आने प्रतिदिन पर रहने वाले अपार जन-समूह की आमदनी और खर्च मे वृद्धि होगी और कुछ विलासी लोगों के खर्च पर अकुश लगेगा। इससे स्पष्ट है कि धन एकत्रित करने और उपभोग करने की मानवीय स्वाभाविक प्रवृत्ति को उचित प्रश्रय मिलेगा न कि विरोध।

(२) 'खर्च पर सीमा' सिद्धान्त की दूसरी आलोचना यह की जा सकती है कि यह सिद्धान्त व्यावहारिक और वैज्ञानिक नहीं है। ग्रीन ने कहा है "Law *can only enjoin or forbid certain actions it cannot enjoin or* forbid motives" अर्थात कानून किन्हीं निश्चित कार्यों को प्रारम्भ करा सकता है और रोक भी सकता है किन्तु वह प्रेरणाओं को न तो पैदा कर सकता है और न ही समाप्त कर सकता है। खर्च की सीमाएँ कानून द्वारा लगा कर भोग की धारणा को समाप्त नही किया जा सकता। भोग की इच्छा की उपस्थिति मे कानून भोग की क्रियाओ को रोकने म समर्थ होते हुए भी उन्हें समाप्त नहीं कर सकता। क्योकि व्यक्ति चोरी छिपे खर्च कर सकते हैं और धन भी छिपा सकते हैं।

उपर्युक्त आलोचना भी उपयुक्त नही प्रतीत होती। धारणा के प्रादुर्भाव, विकास और समाप्ति मे यद्यपि स्वय व्यक्ति का सकल्प अधिक महत्वपूर्ण होता है, तथापि कानून के योगदान का इस सम्बन्ध मे घटाया नही जा सकता। यदि सब कार्य व्यक्ति की ईमानदारी पर छोड दिए जायें और कानून को एक क्षण के लिए भी उठा लिया जाय तो तुरन्त ही *हाब्स की प्राकृतिक दशा म* व्यक्ति प्रवेश करेगा। यदि कानून की कोई महत्ता न होती तो भारतीय दड सहिता की भी क्या आवश्यकता थी? खर्च-सीमा के इस प्रस्ताव का समर्थन

* * * * *

1—श्रीमद्भागवद्गीता अध्याय 2, श्लोक 58

रते हुए अटलबिहारी वाजपेयी ने कहा था कि यदि सेठ, पूंजीपति, नेता और ौकर आदि ' खुद अनुशासन, सयम से नही रह सकते, तो राज्य को कानून ना कर रखना होगा।'[1]

(३) 'खर्च पर सीमा' के प्रस्ताव पर यह भी आपत्ति उठाई जा सकती है कि उपभोग के सयम से उत्पादको और उद्योगपतियो को प्रोत्साहन नहीं मिलेगा जिसके परिणाम स्वरूप उत्पादन में गिरावट आयेगी और तब बचत निर्माण और धनवद्धि के स्रोत सूख जाएँगे और जो थोडा सा धन आज इस देश म बचा है वह भी गायब हो जायगा। इस आलोचना मे भी दम नही है क्योकि हो सकता है कि कुछ लोग मुनाफे के लिए काम करें, परन्तु इससे बडी प्रेरणा क्या हो सकती है कि इस देश म फले अज्ञान, अभाव और बीमारी को दूर करने के लिए काम करें। जिन्हें यह प्रेरणा प्रेरित नही करती उनके लिए कानून का विचार करना होगा। इसके अतिरिक्त विलासी २० लाख धनिको की प्रेरणा के जाने से यदि ५० करोड श्रमिको मे प्रेरणा-जागति हो तो क्या बुरा। डा० लोहिया ने तो यहाँ तक कहा है कि '२० लाख आदमी अगर खाली पैसा खाकर और खर्च करके ही प्रेरणा पाते हैं तो जितनी जल्दी दुनियाँ से इनका नामोनिशान मिटे अच्छा है।'[2]

(४) खर्च-सीमा प्रस्ताव की इस आधार पर भी आलोचना की जा सकती है कि इस सीमा के द्वारा भ्रष्टाचार, घूसखोरी और काले धन म वृद्धि होगी क्योंकि आय-कर अधिकारियो के हाथो मे मनचाही व्याख्या और घूसखोरी की सत्ता आ जायगी। वे किसी व्यक्ति के अधिक खर्च को कम और कम खर्च को अधिक लिखकर अपनी जेबें भरने लगेंगे। इधर कुछ घूस देकर सेठ लोग चोरी छिपे धन रखने लग सकते हैं। किन्तु यह विश्वासहीन आलोचना भी विश्वसनीय नही क्योकि कर्मचारियो के भ्रष्टाचार और घूसखोरी की समस्या खर्च-सीमा पर्यवेक्षको से ही सम्बंधित नही है। वह तो सामान्य समस्या है जिसका हल प्रशासन के सुधार द्वारा करना चाहिए। यदि कर्मचारियो के भ्रष्टाचार की सम्भावना पर खर्च-सीमाकन उचित नही तो पुलिस, आयकर, विकासखण्ड तथा अन्य सभी विभाग भी क्या समाप्त करना उचित होगा ?

(५) 'खर्च पर सीमा' की आलोचना यह भी की गयी है कि इस बात का क्या भरोसा कि खर्च-सीमाकन से बचा धन देश के निर्माण मे लग ही जाएगा।

* * * * *

1—डॉ० लोहिया खर्च पर सीमा (प्रस्ताव और बहस), पृष्ठ 21

2—वही पृष्ठ 36

यह भी हो सकता है कि खर्च से बचे धन का अपव्यय हो अथवा दुरुपयोग हो अथवा सदुपयोग न हो पावे। मेरी दृष्टि मे यह भी उचित आलोचना नही, क्योकि यदि बचे बचाये सामूहिक रुपए का सदुपयोग इन कानूनी जकडनो की स्थिति मे भी नही किया जा सकता, तो फिर अन्य किसी प्रकार की आशा ही किसी पर क्या की जाय।

सक्षेप मे हम कह सकते हैं कि उपर्युक्त खर्च-सीमा का प्रस्ताव सामयिक, उचित और सयमित है। यह केवल एक खयाली पुलाव नही है अपितु एक वास्तविकता है, जिसको शीघ्रातिशीघ्र ही अनुभव करना होगा। खर्च पर सीमा का सिद्धान्त उत्पादन मे वृद्धि उपभोग मे सयम और वितरण मे औचित्य प्रदान करता है, जिसकी आधुनिक अर्थ सकट मे अत्यधिक आवश्यकता है।

अध्याय ५

डॉ० लोहिया के समाजवादी राज्य का स्वरूप एवं उसका प्रशासनिक ढाँचा

डा० लोहिया के समाजवादी राज्य का स्वरूप एव उसके प्रशासनिक ढाँचे के अध्ययन के पूर्व समाजवादी दर्शन में राजनैतिक तत्व के महत्व को स्पष्ट कर देना आवश्यक है। समाजवादी चिन्तन में यद्यपि आर्थिक तत्व सर्वाधिक प्रभावशाली तत्व है, तथापि इसमें सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक तत्व भी अपना अलग महत्व रखते हैं। समाजवाद एक जीवन दर्शन है और जीवन में इन सभी तत्वों का यथोचित स्थान है। अनार्थिक तत्वों में राजनैतिक तत्व सर्वाधिक महत्व का है। इसके अनुसार ही राज्य का आर्थिक, सामाजिक एव सांस्कृतिक ढाँचा निर्धारित होता है। भिन्न राजनैतिक व्यवस्थाओं में नागरिकों एव राज्यों के सम्बन्ध भिन्न प्रकार के होते हैं। प्रजातान्त्रिक राजनैतिक व्यवस्थाओं के अन्तर्गत नागरिकों को अधिक अधिकार एवं स्वतन्त्रताएँ प्राप्त होती हैं जबकि राजतन्त्र, निरंकुशतन्त्र एव साम्यवादी शासन व्यवस्थाओं में अपेक्षाकृत कम। रूस और चीन के उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि किस प्रकार केन्द्रीकृत और एकाधिपत्यपूर्ण राजनैतिक व्यवस्था समाजवादी व्यवस्था को भी परतन्त्रतापूर्ण बना देती है। अतः राजनैतिक व्यवस्था कैसी हो? यह प्रश्न समाजवादी चिन्तन में बहुत महत्वपूर्ण है। यह प्रश्न ही यह निश्चित करता है कि समाजवादी दर्शन व्यक्ति को कहाँ तक स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रदान करता है।

डॉ० लोहिया एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे जो वर्ग एव वर्णविहीन हो। उनका मत था कि मार्क्सवादी विचारधारा वर्गों को समाप्त कर वर्णों को जन्म देती है और जहाँ वर्ण जन्म लेते हैं वहाँ राष्ट्र का अधःपतन प्रारम्भ हो जाता है। शासन व्यवस्था के सम्बन्ध में उनका मत था कि शासन व्यवस्था चार-स्तरीय (ग्राम, मण्डल, प्रान्त तथा केन्द्र) होने पर ही आर्थिक एव राजनैतिक शक्तियों का विकेन्द्रीकरण होगा, जिसके परिणामस्वरूप जनता में चेतना आयेगी जो कि किसी भी राष्ट्र के उत्थान की आवश्यक शर्त है। वे व्यक्ति और समाज में कोई विरोध नहीं देखते। उनकी मान्यता थी कि व्यक्ति और समाज अन्योन्याश्रित हैं। शासकीय अन्यायों का दमन करने के

लिए डॉ० लोहिया सविनय अवज्ञा आन्दोलन को ही उचित समझते थे। गांधी के समान उन्हें भी हिंसात्मक उपायों मे कोई विश्वास नही था। वे धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना करना चाहते थे। उन्होने धर्म के वाह्य पहलू को राजनीति से पृथक किया, क्योकि धर्म के साम्प्रदायिक और कट्टर स्वरूप से वे राजनीति को दूर रखना चाहते थे। किन्तु उन्होंने धर्म के आन्तरिक पहलू को राजनीति से मिलाया क्योकि वे दीर्घकालीन अच्छाई करने वाले धार्मिक स्वरूप को राजनीति के लिए अपरिहार्य समझते थे। वे अपने आदर्श राज्य मे वाणी को उन्मुक्त और कर्म को नियन्त्रित चाहते थे।

डा० लोहिया के राजनैतिक चिन्तन के प्रमुख आधार स्तम्भ निम्न लिखित हैं —

(१) राजनैतिक इतिहास की समाजवादी व्याख्या।
(२) धर्म और राजनीति का सम्बन्ध।
(३) जन शक्ति का महत्व।
(४) चौखम्भा योजना।
(५) सविनय अवज्ञा का सिद्धान्त (सिविल नाफरमानी)
(६) वाणी स्वतन्त्रता एव कर्म नियन्त्रण।
(७) व्यक्ति एव समाज के परस्पर सम्बन्ध।

राजनैतिक इतिहास की समाजवादी व्याख्या —डा० लोहिया के अनुसार इतिहास की गति निम्नलिखित तीन सिद्धान्तों से निर्धारित होती है —

(१) देशो का उत्थान पतन होता है। वैभव धन का स्थान बदलता रहता है। देश के बाहरी सम्बन्धो मे उतार चढ़ाव होता रहता है।

(२) देश के अन्दर वर्ग वर्ण का झूला झूलता है।

(३) सभी देश शारीरिक और सांस्कृतिक ढग से मिलन भी किया करते हैं।[1] इतिहास को गति देने वाले उपर्युक्त तीनों सिद्धान्त एक दूसरे से जुड़े हुए हैं क्योंकि एक दूसरे के लिए वे कार्य-कारण का कार्य करते हैं। अब हम इनमें से प्रत्येक सिद्धान्त का सक्षिप्त मे आलोचनात्मक वर्णन करेंगे।

चक्र सिद्धान्त अथवा देशों का उत्थान पतन —डॉ० लोहिया इतिहास के चक्र-सिद्धान्त मे विश्वास करते थे। उनके मतानुसार इतिहास अबाध रूप से चक्रवत गतिशील रहता है। उनका यह सिद्धान्त अरस्तू के चक्र सिद्धान्त की

* * * * *

1—डा० लोहिया क्रांतिप्रज्ञा पृष्ठ 42

याद दिलाता है जिसके अन्तगत देशों और सरकारों का चक्र की तरह उत्थान और पतन होता है। डॉ० लाहिया के मत मे इतिहास के चक्र-सिद्धान्त के प्रति पादकों मे स्पेंगलर, टायनबी, नाथरोप की अपेक्षा सोरोकिन अधिक गहन और अधिक सही है। चक्र सिद्धान्त के विचारक की तरह आवश्यक रूप से उनकी भी मान्यता थी कि "विश्व के इतिहास को प्राचीन, मध्य और आधुनिक युगों मे बाँटना, उनमे एक अबाध या एक एक कर हुआ उत्थान बताना एक मास्कनिर ववरता है जो किसी प्रकार भी दिलचस्प नही है।"[1] डॉ० लोहिया का विचार था कि यदि यह सत्य है कि "जो जन्मा है वह मरेगा अवश्य" तो यह भी सच है कि "जो मरता है वह फिर पदा होगा।" यह सिद्धान्त सम्यताओं के सम्बन्ध म भी सही है। राष्ट्रो और सम्यताओ का उत्थान और पतन सदा ही होता रहा है। ब्रिटिश साम्राज्य का उत्थान करो साम्राज्य का पतन, गुप्त साम्राज्य का उत्थान, रोमन साम्राज्य का पतन आदि उदाहरण स्पष्टत दृष्टव्य हैं।

डॉ० लाहिया का विचार था कि "शक्ति और समृद्धि हर युग में बराबर एक क्षेत्र स दूसरे मे बदलती रही है। कोइ भी सदा इतिहास की उच्चतम चोटी पर नही बठा रहा है।"[2] कभी ससार का कोइ देश वभवशाली होता है तो कभी कोई दूसरा। कोई देश हमेशा के लिए न तो वभव, शक्ति और धन युक्त हाता है और न हमेशा के लिए उनसे रहित। भारत और यूनान की सम्यताएँ किसी समय सम्पूर्ण अथवा अधिकाश विश्व मे छा चुकी थी। भारत इतिहास की उच्चतम चोटी पर बठ चुका है। सस्कृत, पाली, प्राकृत का एक और दूसरा रूप और बौद्ध धम मगोलिया से बुडापेस्ट तक फला हुआ था। वभव, धन और स्थापत्य कला की दृष्टि स भी भारत सिरमौर रह चुका है। राम, धान और अरब भी उच्चतम श्रेणी म रह चुके हैं। किन्तु शन शन इन देशों का पतन हुआ और पश्चिम योरूप न इस शिखर को प्राप्त किया तथा यह महाद्वीपो म श्रेष्ठ गिना जाने लगा। ब्रिटिश साम्राज्य का इतना विस्तार हुआ कि उस साम्राज्य म सूय ही नहीं डूबता था। अमेरिका भी इस साम्राज्य का उपनिवेश रहा। किन्तु आज स्थिति बदल गयी है। इसका स्थान अमेरिका न ले लिया है और रूस उसकी प्रतिद्वन्द्विता के जोश म है।

* * * * *

1—डॉ० लोहिया इतिहास-चक्र, पृष्ठ 17
2—वही पृष्ठ 31

वग और वण का झूला —डा० लोहिया के अनुसार ज मजात वर्गीकरण या धम द्वारा उसकी मा यता वर्णों (जातियो) का आवश्यक गुण नही है। वग से वण की भिन्नता उस स्थिरता से होती है जो वग सम्ब धा म आ जाती है कोई व्यक्ति अपन से ऊँचे वग मे नही जा सकता और कोई भी वण अपनी सामाजिक स्थिति और आमदनी मे ऊपर नही उठ सकता। 'अस्थिर वण को वग कहते हैं और स्थायी वग वण कहलाते हैं।[1] डा० लोहिया के अनुसार वग समानता की चाह की अभि०यक्ति है और वण याय की चाह की अभिव्यक्ति है। समानता की चाह अधिक स्वाभाविक और बलवती है जबकि याय अपेक्षा कृत कृत्रिम चाह है, लेकिन ये चाहे शू य म व्यक्त नही की जाती। ये किसी उठने और गिरने वाले समाज मे प्रकट होती हैं। ऐसे प्रसग मे अनिवाय ही समानता टूटकर बिखर जाती है और याय सडन म बदल जाता है। समानता स वग और तब टूट फूट याय से वण और तब सडन का विपरीत क्रम उत्पन्न होता है। और फिर दुबारा समानता। हर सभ्यता मे मनुष्य के जीवन का यही क्रम है। इसलिए डा० लोहिया न लिखा है अब तक का समस्त मान वीय इतिहास वर्गों और वर्णों के बीच आन्तरिक बदलाव वर्गों के जकड से वण बनन और वर्णों के ढीले पडन से वग बनने का ही इतिहास रहा है।[2]

माक्स के विपरीत डॉ० लोहिया का विचार था कि राष्ट्र के अ दर होने वाले वग-सघष और राष्ट्रो के बाहरी सघष मे घनिष्ठतम सबध होता है। राष्ट्रो के आपसी सघष का राष्ट्र क आन्तरिक सघष पर गहरा प्रभाव पडता है। जब राष्ट्र उ नतिशील होता है तब वण यवस्था की अनुपस्थिति और वग व्यवस्था की उपस्थिति रहती है। आमदनी, शक्ति और स्थिति मे भि न ये वग अपनी अपनी आमदनी शक्ति और स्थिति बढाने के लिए सघष करते रहते हैं। किन्तु काला तर म तकनीकी कौशल की चरम सीमा और वग-सघष की तीव्रता अ यवस्था और पतन का कारण बनती है। क्योकि ये दोनो स्थितियाँ क्रमश उत्पादन-अवरोध और हिंसा को ज म देती हैं। तब वग सघष की समाप्ति हेतु याय के आधार पर स्थिति और आमदनी स्थिर करके वर्णों का निर्माण किया जाता है जा राष्ट्र की अध पतन की स्थिति का द्योतक है। वण व्यवस्था की स्थिरता मे ऊँच-नीच छोटे बडे, अस्पृश्यता जलन और ईर्ष्या के कारण गरीबी का सडन उत्पन्न होती है जिससे उबरन के लिए पुन प्रयास

* * * * *

1—डॉ लोहिया इतिहास-चक्र पृष्ठ 30
2—वही पष्ठ 49

होते हैं, समृद्धि तथा समानता का प्रयास किया जाता है जिसके परिणाम-स्वरूप वर्ग निर्मित होने लगते हैं। इस प्रकार वर्ग से छुटकारा पाने पर वर्ण और वर्ण से छुटकारा पाने पर वर्ग देश को सदैव जकड़े रहते हैं। इसी तथ्य को डॉ॰ लोहिया ने अपने शब्दों में व्यक्त करते हुए लिखा है, "आन्तरिक वर्ण-निर्माण और वाह्य अधःपतन साथ-साथ चलता है, चाहे दोनों के बीच काल का जो भी अन्तर रहे। पूरे समाज का बढ़ता कौशल निश्चित रूप से विभिन्न वर्गों के भीतरी हरकत व उतार चढ़ाव के साथ जुड़ा हुआ है।'[1]

डॉ॰ लोहिया का वर्ग और वर्ण के आन्तरिक परिवर्तन का सिद्धान्त सर्वथा मौलिक है किन्तु इसे केवल उस समय स्वीकार किया जा सकता है, जब कि हम वर्ण को केवल गुण, कर्म और जाति से सम्बद्ध न मानकर उसे आमदनी और स्थिति की निश्चितता से भी सम्बद्ध करें। इसके अतिरिक्त उनके उस सिद्धान्त को स्वीकार करने में बड़ी कठिनाई उत्पन्न होती है जिसमें उन्होंने आन्तरिक वर्ण निर्माण का वाह्य अधःपतन के साथ और बढ़ते कौशल को वर्ग के साथ जोड़ा है। क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार डॉ॰ लोहिया के द्वारा बताए गये वर्ण जिस समूह (देश) में पाये जाते हैं, उन्हें हमको अधःपतन की स्थिति में समझना पड़ेगा जबकि वास्तविकता इसके विपरीत है। रूस हर ढंग से सशक्त और उन्नतिशील देश है किन्तु फिर भी डॉ॰ लोहिया के अनुसार या तो उसे पतित देश कहा जाय और यदि ऐसा नहीं तो उसमें वर्ण-व्यवस्था की अनुपस्थिति बताई जाय। डॉ॰ लोहिया के सिद्धान्त का पोषण करने के लिए केवल उनका वह कथन रखा जा सकता है जिसमें उन्होंने वर्ण व्यवस्था और अधःपतन के बीच काल का अन्तर माना है।

डॉ॰ लोहिया का मत था कि देश-काल की परिस्थिति के अनुसार वर्ग और वर्ण दोनों अपने स्वरूप एवं उद्देश्य में भिन्न होते हैं। असहनीय वर्ग संघर्ष के विरुद्ध पूर्ण विकसित ढांचे की सुरक्षा के लिए जर्मनी में राष्ट्रीय सोशलिस्ट आन्दोलन ने अलग-अलग वर्गों की सानुपातिक और निश्चित आमदनी और समाज में उनका निश्चित स्थान निर्धारित किया। यद्यपि इस निर्धारण में कोई शाश्वत और धार्मिक गुण न था, तथापि यह एक वर्ण आन्दोलन था अथवा वर्ण निर्माण का ही कार्य था। कृषि और उद्योग को विकसित करने के लिए रूस ने अलग-अलग मजदूरों की स्थिति और आमदनी स्थिर कर दी और

* * * * *

1—डॉ॰ लोहिया इतिहास-चक्र पृष्ठ 42

इस प्रकार वर्गों को समाप्त करने के प्रयत्न म रूस न वण व्यवस्था को जन्म दिया। भारत मे वण व्यवस्था का उद्देश्य सामाजिक न्याय की स्थापना रहा। इस प्रकार विभिन्न देशो मे वण निर्माण के उद्देश्यो मे अन्तर होता है। भारत म वण-व्यवस्था का आधार आरम्भ म गुण-कम था और कालान्तर मे इसका आधार जन्म हो गया। किन्तु वर्णों वाले अन्य देशो मे इसका आधार उनकी निश्चित की गयी आमदनी और स्थिति थी। इसके अतिरिक्त वर्णों की प्रतिष्ठा और आमदनी भी प्रत्येक देश मे साथ-साथ नही चली। भारत मे ब्राह्मण जसे उच्च वण की प्रतिष्ठा तो अधिक किन्तु आमदनी कम रही, जबकि अन्य देशो में प्रतिष्ठा और आमदनी विभिन्न वर्णों म स्तर के अनुसार एक साथ जुडी रही।

शारीरिक और सास्कृतिक मिलन —डा० लोहिया के चक्र सिद्धान्त के अनुसार सभी राष्ट्र कभी न कभी उच्चतम चोटी पर बठते है और उन्नत दिनो म अपनी सस्कृति का विकास और प्रसार करते है। इस क्रम के साथ मनुष्य जाति का पारस्परिक सास्कृतिक और शारीरिक सम्बन्ध होता है। सभी ऐतिहासिक काला म मनुष्य न पद्धति भाषा व्यवहार की वस्तुओ, उत्पादन के तरीको विचारो, धर्मो म एक दूसर की समीपता का प्रयत्न किया है।[1] अपन युग म ढाका का मलमल दुनिया म उतनी ही दूर तक फला जसे आज अमरीका का नाइलन। जिस प्रकार माक्सवाद से विश्व परिचित है उसी प्रकार गाधीवाद स। ग्रीक, सस्कृत अथवा अरबी सभी भाषाएँ समय-समय पर फली। इस्लाम हिन्दू ईसाई आदि धर्मो के अपन अपने समय रहे है। इस प्रकार तमाम सस्कृतियाँ अपन पश्चिम म या अपने पूव मे और दूसरी दिशाओ म फली हैं अगणित लोगा को अधीनस्थ किया है लेकिन सम्पूण ससार को कभी नही। अब तक शारीरिक और सास्कृतिक समीपता की यह प्रक्रिया एक सीमा तक ही सम्भव रही है और इसम कभी-कभी बिखराव भी आये हैं। डॉ० लाहिया अब इस सीमा और बिखराव को समाप्त कर सम्पूण मानवता की *सर्वांगीण समीपता लाना चाहते हैं। उनके ही शब्दों म "लेकिन अब समय* आ गया है कि स्वेच्छित समीपता आय जिसम एक समूह को दूसरे की पराधीनता न स्वीकारनी पडे और जिसके द्वारा ससार के सभी लोग गमभ्रष्टारी *स नियोजित करके मानव जाति की एक बहुरगी मिलावट निर्मित करन म* सफलता प्राप्त करें।"[2]

* * * * *

1—डा० लोहिया इतिहास-चक्र पृष्ठ 65
2—वही पृष्ठ 68

इस प्रकार डॉ० लोहिया ने आशा व्यक्त की कि आज विश्व में ऐसी परिस्थितियाँ मौजूद हैं जिनमें मनुष्य वर्णों की जड़ विषमता वर्गों की लचीली विषमता और दोनों ही स्थितियों में निहित अन्याय और शोषण, क्षेत्रीयता और हिंसा के चक्र का तोड़ कर एक सम्पूर्ण कौशल और बहुरंगी मिलन की शोषणरहित विश्व-सभ्यता का निर्माण कर सकता है जो राष्ट्रों के बाह्य संघर्ष से मुक्त हो जिसमें मनुष्य स्वतन्त्र, समृद्ध और मन में सुखी हो, और अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास कर सके। इस हेतु उन्होंने अपेक्षा की कि विश्व मानव जाति वे विलगाव के भ्रमों को भुला दे और पुनर्संगठन के कर्मों पर अपना ध्यान केन्द्रित करे। इसके लिए मानव की समझदारी और इतिहास का तृतीय चालक शक्ति उनकी दृष्टि में अधिक सहयोगी सिद्ध होगी।

डा० लोहिया द्वारा की गयी अपेक्षाओं और आशाओं के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि वे अपने ही द्वारा बताये गये इतिहास क्रम को बदलना चाहते हैं। यद्यपि इतिहास की चालक शक्तियाँ, यदि वे वास्तव में इतिहास चालक हैं समाप्त नहीं की जा सकती, तथापि ज्यादा अच्छा हो कि मानव अपनी समझदारी और इतिहास की तृतीय चालक शक्ति से शेष दो चालक शक्तियों (वर्ग और वर्ण के झूले, और राष्ट्रों के उत्थान पतन) को समाप्त कर दें। पुनः एक जटिल समस्या आगे आती है कि यदि एक चालक शक्ति शेष दो को समाप्त करने में समय हो सकती है तो शेष दो शक्तियाँ तृतीय शक्ति को समाप्त करने में और भी अधिक समय हो सकती हैं। और तब मानव का भाग्य क्या होगा? मानव की समझदारी तो तभी स्वर्णिम आशा की किरण बन सकती है, जब कि विश्व के अधिकांश व्यक्ति लोहिया हो जायें। इन सब कठिनाइयों के होते भी यदि हम डॉ० लोहिया के आशावाद पर गर्व करें तो अच्छा।

धर्म और राजनीति का सम्बन्ध

राज्य तथा धर्म को एक कड़ी में जोड़ने का प्रयास प्रारम्भिक काल से ही हुआ है। पूर्वकाल में राज्य को एक धार्मिक संस्था माना जाता था। जेम्स प्रथम ने राजाओं को पृथ्वी पर साँस लेती हुई मूर्तियाँ कहा था। प्लेटो और अरस्तू ने राज्य को नैतिकता से घनिष्ठतम रूप से जोड़ा था। हिब्रू लोगों में धर्म तन्त्र की धारणा सबसे अधिक विकसित हुई। यहूदी राज्य के औचित्य को धार्मिक आधार पर ही सिद्ध किया गया था। रोमन राज्य की उत्पत्ति तथा अस्तित्व का आधार धर्म ही था। मध्य युग की धर्म-सत्ता और राज्य-सत्ता के द्वन्द्व से कौन परिचित नहीं है? सर्व प्रथम मैकियावेली ने धर्म

से अलग किया। हाब्स ने भी धर्म को राजनीति से पृथक किया। मार्क्स ने धर्म को अफीम की गोली बता कर राजनीति से पूर्णतः विलग किया और धर्म की बड़ी भर्त्सना की। परन्तु काण्ट, हैगल, बोसान्के, ब्रेडले, ग्रीन गांधी आदि आदर्शवादी विचारकों ने राज्य को धर्म और नैतिकता से सम्बद्ध करने का प्रयत्न किया। संक्षेप में धर्म और राजनीति का क्या सम्बन्ध है? यह प्रश्न बहुत मनोरंजक और बहुत महत्वपूर्ण है। विशेषतः विचारणीय यह है कि समाजवाद के मार्ग में धर्म अवरोध है या सहयोग। अधिकांश समाजवादियों ने धर्म को हेय दृष्टि से देखा और उसकी कटु निन्दा की है। अब हम डॉ० लोहिया के धर्म और राजनीति सम्बन्धी विचारों का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत करेंगे — (१) ईश्वर सम्बन्धी विचार (२) धर्म की व्याख्या (३) धर्म निरपेक्ष राज्य (४) धर्म और राजनीति का सम्बन्ध।

ईश्वर सम्बन्धी विचार —डा० लोहिया ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते थे। प्रायः विनोद में वे कहा करते थे कि न तो मैंने कभी ईश्वर को देखा है और न मुझे कभी उसकी आवश्यकता पड़ी। लोगों के ये कहने पर कि अभी नहीं तो वृद्धावस्था में जब शरीर शिथिल होगा तब उसकी आवश्यकता अनुभव होगी वे कहते, 'अगर परमात्मा है तो सुख में भी उतना ही सक्रिय और जोरदार होना चाहिए जितना दुख में। जो सुख में नहीं आ रहा है और दुख में आयगा तो मेरे जैसा आदमी कह देगा, इसमें क्या बड़ी भारी बात है, कमजोर हो गया तब मेरे दिमाग में घुसा।[1] उनका मत था कि मन्दिर एक ढकोसला है और उसमें रखी मूर्ति भी नकली है। उनका विचार था कि भगवान ने मनुष्य को नहीं, अपितु मनुष्य ने भगवान् को बनाया है और उसे एक प्रतीक के रूप में खड़ा कर दिया।[2] यद्यपि वे ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते थे तथापि आत्मवत सर्वभूतेषु ही उनका आदर्श था। उपनिषद् के तत्वज्ञान में उन्हें आनन्द आता था। सब में अपनेपन की प्रतीति ही उनका ब्रह्मज्ञान था।[3] संसार की एकता और समता ही उनका अद्वैत था। प्रत्येक कार्य को ईमानदारी और पवित्रता के साथ करना ही उनके लिए कर्मकाण्ड था। तीर्थों का साफ-सुथरा रखना नदियों के जल की शुद्धता, अपने को साफ सुथरा और निष्कपट रखना ही उनकी दृष्टि में तीर्थ-यात्रा थी।

* * * * *

1—डॉ० लोहिया धर्म पर एक दृष्टि पृष्ठ 7
2—डॉ लोहिया भारत में समाजवाद, पृष्ठ 28
3—डॉ लोहिया धर्म पर एक दृष्टि पृष्ठ 9

धर्म की व्याख्या —गांधी जी के समान डॉ० लोहिया ने भी धर्म को दरिद्र नारायण की रोटी में पाया। उनके मत में गिरे हुओं को उठाना, प्यासे को पानी देना भूखे को रोटी और गृहहीन को निवास स्थान देना ही सच्चा धर्म है। साम्प्रदायिक धर्मों के वे कटु आलोचक थे। उन्होंने चेतावनी दी कि मानव को हिन्दू मुस्लिम, ईसाई आदि खास रिवाजों और समूहों में बँधे धर्मों से ऊपर उठकर अपनी दृष्टि को व्यापक बनाना चाहिए और निर्भयता के साथ मानव धर्म के सच्चे उपासक बनना चाहिए।[1] उनके मतानुसार धर्म आन्तरिक और सूक्ष्म है न कि बाह्य और स्थूल। इसलिए रंगों, रूढ़ियों, रीति रिवाजों, आचारों, व्यवहारों आदि की बाह्य भिन्नता के कारण द्वेष, मनमुटाव, घृणा और संघर्ष के भाव लाना उचित नहीं है। इस संदर्भ में डॉ० लोहिया ने कहा था, "मजहब तो रूहानी चीज है तो रूह की बात है, तो उसको दिमाग में रखो। लेकिन, यहाँ किसी की शक्ल देख लोगे तो कह दोगे कि वह कौन है हिन्दू है या मुसलमान ।'[2]

यद्यपि डॉ० लोहिया आत्मा परमात्मा के झगड़े में नहीं पड़े, तथापि राम, कृष्ण और शिव के व्यक्तित्व उनके लिए आकर्षण के केन्द्र थे। इन तीनों व्यक्तित्वों की ऐतिहासिकता पर उन्हें संदेह था, लेकिन उनके आदर्शों और सिद्धान्तों पर नहीं। नीति, धर्म और व्यवहार के नियमों में बँधे होने के कारण राम को उन्होंने मर्यादित व्यक्तित्व बतलाया। कृष्ण समयानुसार प्रत्येक क्षेत्र में चोरी धोखा झूठ से भी काम निकालने में न हिचके, यद्यपि वे चाले उन्होंने भय क्रोध राग से परे होकर चलीं। प्रेम और युद्ध सभी क्षेत्रों में वे बन्धन मुक्त थे। इसलिए डॉ० लोहिया ने कृष्ण को उन्मुक्त व्यक्तित्व बतलाया। डॉ० लोहिया की शिव में सर्वाधिक श्रद्धा थी। उन्होंने शिव को असीमित व्यक्तित्व की संज्ञा दी और स्पष्ट किया कि शिव की असीमितता के कारण ही ब्रह्मा विष्णु उनके सिर और पैर का पता चलाने में असमर्थ रहे। शिव के प्रत्येक कार्य का औचित्य सदैव उनके कृत्य में ही रहा। स्वयं विष पीने वाले और दूसरों को अमृत देने वाले वही हैं। गंगा को निकालकर सम्पूर्ण देश का कल्याण करने वाले त्यागी इन्जीनियर भी वही हैं। इस प्रकार डॉ० लोहिया ने राम का मर्यादित, कृष्ण को उन्मुक्त और शिव को असीमित व्यक्तित्व माना और भारत माता से प्रार्थना की 'हे भारत माता, हमें शिव

* * * * *

1—डॉ० लोहिया धर्म पर एक दृष्टि पृष्ठ 4
2—डॉ० लोहिया आज़ाद हिन्दुस्तान में नये रुझान पृष्ठ 11

का मस्तिष्क दो, कृष्ण का हृदय दो तथा राम का काय दो। हमे असीम मस्तिष्क और उन्मुक्त हृदय के साथ-साथ जीवन की मर्यादा से रचो।'[1]

डॉ० लोहिया के ईश्वर और धर्म सम्बन्धी विचारो का अध्ययन करने के उपरान्त कोई भी पाठक इस निष्कर्ष पर पहुँच सकता है कि डॉ० लोहिया कहते तो अपने आपको नास्तिक थे किन्तु वास्तव मे वे आस्तिको के भी आस्तिक थे। वही ऐसे व्यक्ति थे जिन्होने आस्तिकों को झूठे कर्मकाण्ड सकुचित ब्रह्मज्ञान और कृत्रिम एकत्ववाद से छुटकारा दिलाया। उन्होंने आस्तिको को समग्र ऐश्वर्य पुरुषार्थ, यश, सम्पत्ति, ज्ञान और वैराग्य को सच्चे रूप मे प्राप्त करने का प्रेरित किया। इन्ही तत्वो के व्यष्टि अथवा समष्टि को भग' कहते हैं जैसा कि विष्णुपुराण (६ ५ ७४) मे कहा गया है —

> 'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशस श्रिय ।
> ज्ञान वैराग्ययाश्चैव षण्णा भग इतीरणा ॥'[2]

अत इन छ गुणो से युक्त व्यक्तित्व ही भगवान् है। इसलिए इन छ गुणो को प्राप्त करने की चेष्टा करने वाला ही सच्चा ईश्वर का भक्त और आस्तिक है। इस अर्थ मे डॉ० लोहिया सच्चे आस्तिक थे। उनकी उपर्युक्त राम कृष्ण और शिव की व्याख्या से स्पष्ट होता है कि उनको राम कृष्ण और शिव आदि की झूठी उपासना पसन्द न थी। उनकी उत्कण्ठा थी कि वे राम, कृष्ण और शिव के आदर्शों को अपने जीवन म वैज्ञानिक ढग से ढाल।

धर्म निरपेक्ष राज्य —धर्म निरपेक्ष राज्य के सम्बन्ध म डॉ० लोहिया के विचार जानने के पूर्व धर्म निरपेक्ष राज्य की सही धारणा ज्ञात कर लेना आवश्यक है। धर्म निरपेक्ष राज्य न धार्मिक होता है, न अधार्मिक और न धर्म विरोधी। ऐसा राज्य धार्मिक कार्यों एव सिद्धान्तो से सर्वथा पृथक होता है और धार्मिक मामलो म पूर्णत तटस्थ हाता है। धर्म निरपेक्ष राज्य में सभी नागरिको को धार्मिक विश्वास, पूजा की स्वतन्त्रता, आत्मा की स्वतन्त्रता, धार्मिक आचरण की स्वतन्त्रता का पूर्ण अधिकार होता है। डा० लोहिया उपर्युक्त सही अर्थ के धर्म निरपेक्ष राज्य मे विश्वास करते थ। धार्मिक मामलों मे राज्य की निष्पक्षता और नागरिको की धर्म प्रचार सम्बन्धी स्वतन्त्रता पर

* * * * *

1—डॉ लोहिया राम कृष्ण और शिव पृष्ठ 20

2—लोकमान्य बा० गंगा तिलक श्रीमद्भगवद् गीता रहस्य अथवा कर्म योग शास्त्र के पृष्ठ 119 से उद्धृत

बल देते हुने उन्होंने कहा था, 'राजनीति एक आश्वासन जरूर दे कि वह आस्तिकता अथवा नास्तिकता के प्रचार में दण्ड का इस्तेमाल नहीं करेगी।'[1]

धर्म निरपेक्ष राज्य के प्रबल समर्थक होने के कारण ही हिन्दू, मुस्लिम धर्म के नाम पर भारत विभाजन का उन्होंने अत्यधिक विरोध किया था और विभाजन के पश्चात भी हिन्दू-पाक दो राष्ट्रों के सिद्धान्त को मान्यता नहीं दी थी। उन्होंने सन १९४६ ई० के हिन्दू मुस्लिम दंगे में जिस प्रकार जिन्ना के देश विभाजन के प्रयत्नों का विरोध किया था, उसी प्रकार हिन्दुओं को राजनीति में केवल हिन्दू के नाते व्यवहार करने से बचाया था। "मैं हिन्दी हूँ और बाद में हिन्दू हूँ" जैसे कथनों को भ्रमात्मक बताते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि प्रथम और बाद जैसा कथन अधूरा है। उन्होंने स्पष्ट कहा था, "राजनीति में हम हिन्दुस्तानी हैं या नहीं, यही सम्भव है,'[2] अन्य कुछ नहीं।

धर्म और राजनीति का सम्बन्ध —डॉ० लोहिया के मतानुसार धर्म मुख्यतः चार कार्य करता है। प्रथम, यह भिन्न धर्मों के बीच झगड़े और कभी-कभी रक्त रंजित झगड़े उत्पन्न करता है। द्वितीय, यह अपने अपने धर्मानुसार प्रतिष्ठित सम्पत्ति, जाति और नारी सम्बन्धी व्यवस्थाओं को यथावत बनाये रखता है जिसके परिणाम स्वरूप शोषण और विषमता को स्थायित्व मिलता है। तृतीय, धर्म अच्छे व्यवहार के लिए नैतिक और सामाजिक प्रशिक्षण देता है। चतुर्थ, अहिंसा सत्य, दयालुता न्याय, त्याग आदि के अभ्यास के द्वारा व्यक्ति को संयमित और अनुशासित करने में यह महत्वपूर्ण योगदान देता है। डॉ० लोहिया ने धर्म की उपर्युक्त दो पहली प्रकार की अभिव्यक्तियों को हेय और त्याज्य बताया। धर्म की ये अभिव्यक्तियाँ स्वयं राजनैतिक हो जाती हैं और षड्यन्त्रों में धर्मान्धता को जोड़ती हैं। धर्म का यह रूप व्यक्तियों के लिए वास्तविक रूप में अफीम है। धर्म के अन्तिम दो प्रकार के कार्यों को उन्होंने मानवता के लिए अत्यधिक लाभदायक बतलाया।[3] उन्होंने धर्म के इस प्रकार के रूप को राजनीति से सम्बद्ध किया।

डॉ० लोहिया का मत था कि सच्चा समाजवादी चाहे आस्तिक हो अथवा नास्तिक, धर्म के इस स्वरूप से असम्बद्ध नहीं रह सकता। उसका धर्म का मार्ग झगड़ालू नहीं, बल्कि कुछ ढूंढ निकालने वाला होता है। उनकी दृष्टि

* * * * *

1—डॉ० लोहिया मर्यादित उन्मुक्त और असीमित व्यक्तित्व और रामायण मेला पृष्ठ 49
2—इन्दुमति केलकर लोहिया सिद्धान्त और कर्म पृष्ठ 150
3—Dr Lohia Marx Gandhi and Socialism p 374 75

में धार्मिक और अधार्मिक का कल्पित विरोध समाप्त होना चाहिए।[1] धर्म को अपना झगडालूपन एवं वर्तमान व्यवस्था की अपनी रक्षा-वृत्ति त्यागनी चाहिए। इसे सब धर्मों की मौलिक एकता के विचार का पोषण करना चाहिए। केवल तभी इसे समाजवाद अथवा राजनीति से सम्बद्ध किया जा सकता है।[2] इस प्रकार हम देखते हैं कि डॉ० लोहिया द्वारा अपनाया गया धर्म आत्मिक, सूक्ष्म एवं सच्चा है।

धर्म और राजनीति का सम्बन्ध स्पष्ट करते हुए डॉ० लोहिया ने कहा कि धर्म का कार्य अच्छाई को करना है और राजनीति का कार्य बुराई से लडना है। धर्म यदि विधेयात्मक अथवा सकारात्मक है तो राजनीति नकारात्मक। धर्म यदि दीर्घकाल है तो राजनीति अल्प काल। धर्म यदि शान्त है तो राजनीति रुद्र। धर्म और राजनीति एक दूसरे को पूर्ण बनाते हैं। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं अथवा एक ही वस्तु के दो स्वरूप हैं। इसलिए उन्होंने धर्म को दीर्घकालीन राजनीति और राजनीति को अल्प कालीन धर्म कहा था।[3] दूसरे शब्दों में राजनीति बुराई को समाप्त कर, अल्पकाल के लिए जब तक दूसरी बुराई नहीं आती, अच्छाई का मार्ग सुगम करती है और धर्म निरन्तर अच्छाई कर बुराइयों में कमी का मार्ग सुगम करता है।

डॉ० लोहिया के मत में अच्छाई करने और बुराई से लडने में अन्तर है। जब अन्तर बढ जाता है और एक दूसरे से सम्पर्क टूट जाता है, तब अच्छे की स्तुति निर्जीव हो जाती है और बुराई की निन्दा कलहपूर्ण हो जाती है। बिना राजनीति के प्रत्येक धर्म निर्जीव हो जाता है क्योंकि बुराई से न लडने पर उसकी अच्छाई टिक नहीं पाती। इसी प्रकार बिना धर्म के राजनीति झगडालू और कलहपूर्ण हो जाती है क्योंकि अच्छाई न करने पर बुराई से लडना केवल कलह का कारण बनता है। महात्मा गांधी ने उचित ही कहा था कि केवल रचना करने वाले ही ध्वंस करने की शक्ति रखते हैं। इसलिए डॉ० लोहिया ने कहा था कि धर्म और राजनीति में से यदि एक भी भ्रष्ट हो तो दोनों ही भ्रष्ट हो जाते हैं। उन्हीं के शब्दों में, 'धर्म और राजनीति के अविवेकी मिलन से दोनों भ्रष्ट होते हैं।'[4]

* * * * *

1 2—Dr Lohia Marx Gandhi and Socialism p 374-75

3—डॉ० लोहिया मर्यादित उन्मुक्त और असीमित व्यक्तित्व और रामायण मेला पृष्ठ 48

4—वही पृष्ठ 49

जहाँ तक धर्म के बाह्य, स्थूल अथवा साम्प्रदायिक स्वरूप का प्रश्न है, डॉ० लोहिया ने स्पष्टत कहा था कि साम्प्रदायिक कट्टरता से बचने के लिए किसी एक राजनीति को किसी एक धर्म से कभी नहीं मिलना चाहिए। साम्प्रदायिक अथवा परम्परागत धर्मों से यदि राजनीति को संयुक्त किया जाता है तो राजनीति में "दकियानूसी, प्रतिक्रिया, गुलामी और अधमृत्यु' को बढ़ावा मिलता है। डॉ० लोहिया के शब्दों में, 'धर्म और राजनीति को अलग रखने का सबसे बड़ा मतलब यही है कि साम्प्रदायिक मिलन और कट्टरता से बचें। एक और मतलब यह है कि राजनीति को दण्ड और धर्म की व्यवस्थाओं को अलग रखना चाहिए। नहीं तो, दकियानूसी बढ़ सकती है और अत्याचार भी।'[1]

डॉ० लोहिया के उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट है कि वे सभी धर्मों की मौलिक एकता पर बल देते थे। वे सभी धर्मों के आदर्श सिद्धान्तों के सच्चे उपासक थे। वे सच्चे धर्म के स्वरूप को राजनीति से सबद्ध रखना चाहते थे। धर्म निरपेक्ष राज्य के वे सच्चे समर्थक थे। उनके धर्म सम्बन्धी विचार बहुत कुछ महात्मा गांधी से प्रभावित थे। अन्तर केवल इतना है कि गांधी जी मानव धर्मानुयायी होने के साथ-साथ एक सर्वव्यापी सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान परम शक्ति में विश्वास करते थे और डॉ० लोहिया केवल मानव धर्मानुयायी थे। उनके मत के अनुसार धर्म, नैतिक गुणों का पर्यायवाची मात्र होना चाहिए, इससे अधिक कुछ नहीं। यहाँ इस संदर्भ में एक शब्द कहना अनुचित न होगा कि संस्कार, वातावरण देश-काल के प्रभाव की परिधि से सर्वथा मुक्त रहना डॉ० लोहिया जैसे ही व्यक्तियों से सम्भव हो सका है।

जन शक्ति का महत्त्व

प्रजातान्त्रिक समाजवाद के प्रतिनिधि होने के कारण डॉ० लोहिया जन-शक्ति के प्रबल समर्थक थे। उनके विचारों की समता टी० एच० ग्रीन के वाक्य 'इच्छा न कि शक्ति राज्य का आधार है' से की जा सकती है। जन शक्ति की महत्ता में अगाध श्रद्धा होने के कारण ही वे भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के प्रमुख सेनानी थे। सन् १९४२ के 'भारत छोड़ो" आन्दोलन के वे नायक थे। हैरिस वफोर्ड भी उन्हें इस आन्दोलन का नायक स्वीकार करते हुए कहते हैं, He was a hero of the 1942 'Quit India Rebellion'[2]

* * * * *

1—डॉ लोहिया मर्यादित उन्मुक्त और असीमित व्यक्तित्व पृष्ठ 49

2 Harris Wofford J R —Lohia and America Meet Front page

जन इच्छा की सम्प्रभुता मे डॉ० लोहिया को जो विश्वास था, वह उनकी निम्नलिखित सात क्रान्तियो से व्यक्त होता है —

(१) नर नारी की समानता के लिए

(२) चमडी रग पर रची असमानताओ के खिलाफ

(३) जन्मजात और जाति प्रथा की विषमताओ के खिलाफ,

(४) परदेशी गुलामी के खिलाफ और विश्व-लोक-राज्य के लिए

(५) निजी पूजी की विषमताओ के खिलाफ और योजनाओ द्वारा उत्पादन बढाने के लिए

(६) निजी जीवन मे अन्यायी हस्तक्षेप के खिलाफ

(७) अस्त्र शस्त्र के खिलाफ और सत्याग्रह के लिए।[1]

जन इच्छा, राज्य और दण्ड —टी० एच० ग्रीन के समान डॉ० लोहिया का भी मत है कि अधिकार-चेतना के द्वारा ही मानव का व्यक्तित्व मुखरित होता है और व्यक्ति मे निहित अधिकार राज्य के द्वारा ही अपनी वास्तविकता प्राप्त करते हैं। अत व्यक्ति के विकास के लिए राज्य का अस्तित्व आवश्यक है और राज्य को बनाए रखने के लिए शक्ति और दण्ड का प्रयोग आवश्यक है। यद्यपि डॉ० लोहिया ऐसा सपना देखना चाहते थे जिसमें दण्ड अथवा शक्ति के बिना ही व्यक्ति अपना सामूहिक जीवन चला सके, तथापि जब तक उनका सपना पूर्ण नही होता, वे शक्ति प्रयोग के पक्ष मे थे[2], किन्तु अपराध के अनुसार ही दण्ड की मात्रा और स्वरूप होना चाहिए और दण्ड शक्ति का प्रयोग निष्पक्षता से न्याय के लिए विधि के अनुकूल होना चाहिए। इस सबध में उनका स्पष्ट कहना था, 'प्रश्न केवल इतना ही है कि दण्ड के स्वरूप और मात्रा कसे हो? दण्ड हमेशा विधि और विधान के अनुसार होना चाहिए, राज्य के वक्ती प्रबन्धकों के गुस्से के अनुसार नहीं।'[3]

डॉ० लोहिया का विचार था कि राज्य को आन्तरिक और बाह्य दानो मामलो म अपनी शक्ति का प्रयाग सदव जन इच्छा को विकास देने के लिए करना चाहिए न कि उसे दबाने के लिए। उनकी दृष्टि म निरकुश शक्ति और सेनाए जन शक्ति के समर्थन के बिना अप्रभावी और अर्थहीन हाती हैं।

* * * * *

1—डॉ लोहिया सात क्रान्तियाँ
2—डॉ० लोहिया जाति प्रथा पृष्ठ 71 72
3—डॉ० लोहिया पाकिस्तान में पलटनी शासन पृष्ठ 12

उन्होंने अपने एक लेख "विश्वासघाती जापान या आत्मसतुष्ट ब्रिटेन" मे स्पष्ट लिखा था, 'सैनिक और असैनिक अड्डे उस समय तक बेकार होते हैं जब तक उनके पीछे समर्थक जन शक्ति न हो ।"[1] टी० एच० ग्रीन ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि केवल शक्ति नही, अपितु विधि के अनुकूल और जनता के अधिकारो के लिए उसका प्रयोग, राज्य का अस्तित्व प्रदान करता है। ग्रीन के शब्दों मे "It is not, however, supreme coercive power, simply as such, but supreme coercive power exercised in a certain way and for certain ends that makes a state, viz exercised according to law, written or customary and for the maintenance of rights [2]

व्यवस्थापिका जन इच्छा के दर्पण के रूप में —दण्ड विधि विधान के अनुकूल होना चाहिए किन्तु अब प्रश्न उठता है कि विधि और विधान क्या है? उत्तर स्पष्ट है कि आधुनिक प्रजातन्त्रो मे व्यवस्थापिका की इच्छा ही विधान है। अत विधान किस सीमा तक जन इच्छा का प्रतीक है, इसका निर्णय हम व्यवस्थापिका की वास्तविक प्रकृति को ज्ञात करके कर सकते हैं। डॉ० लोहिया के उचित मत म वही व्यवस्थापिका जनता की सच्ची प्रतिनिधि सभा है जिसमे वास्तविक रूप से जन इच्छा व्यक्त होती हो। यदि जनता की इच्छा को उसमें निष्पक्ष और न्यायपूर्ण ढग से मान्यता न मिल सके तो वह जनता की सच्ची व्यवस्थापिका नही है। इस सदर्भ मे उन्होंने कहा था, "लोक सभा या विधान सभा- एक शीशा है, एक आईना है कि जिसमे जनता अपने चेहरे को देख सके। चेहरे पर किस वक्त कसी सिकुडनें हैं, कसी आफतें हैं, कसी तकलीफ है कसे अरमान हैं क्या सपने हैं, ये सब उस शीशे मे देख सकते हैं।"[3] आधुनिक व्यवस्थापिकाओं की उपयुक्त कसौटी के आधार पर उन्होंने अत्यधिक आलोचना की थी। उनके मत म आधुनिक व्यवस्थापिकाओ के अध्यक्ष इस शीशे को ढक कर रखना चाहते हैं ये उसको गन्दा हो जाने देना चाहते हैं उसम धब्बा लगा देना चाहते हैं।

व्यवस्थापिका को जन इच्छा का सही प्रतीक बनाने के लिए ही डॉ० लोहिया चाहते थे कि राष्ट्रपति चुनाव मे पराजित व्यक्ति को राज्य सभा

* * * * *

1—'हरिजन' 19 अप्रैल सन् 1942 के अनुवाद से

2 T H Green Lectures on the principles of political obligation Page 136

3—डॉ० लोहिया पाकिस्तान में पलटनी शासन पृष्ठ 12

का सदस्य न बनाया करें। उनका मत था कि सम्पूर्ण कार्यों का उद्देश्य जनता की इच्छा का संगठित और अभिव्यक्त करना तथा यथासम्भव राष्ट्रीय जीवन का पुनर्निर्माण होना चाहिए।[1] उनकी दृष्टि में जन इच्छा का समुचित सम्मान और संगठन ही प्राथमिक महत्त्व का है, इस इच्छा का उद्रेक किस माध्यम से—प्रजातान्त्रिक माध्यम से अथवा क्रान्ति और विद्रोह के माध्यम से अथवा अन्य किसी माध्यम से होता है गौण है।

उन्होंने खेद व्यक्त किया कि आज के भारत में सरकार और राजनैतिक दल दोनों में करोड़ों का एक नेता हो जाता है और अन्य छोटे छोटे नेताओं का निर्माण भी वह अपने प्रभाव द्वारा करता है। जनता द्वारा अर्जित की हुई शक्ति को वह एक नेता इस ढंग से प्रयोग करता है कि प्रदेश मण्डल और क्षेत्र के संगठन क्रमश: अपने से उच्चतर संगठन और अन्त में केवल उस एक नेता के मुख की ओर ताकते हैं। इस ढंग से निम्नतर संगठन अपना अस्तित्व उच्चतर संगठन से प्राप्त करने लगते हैं जबकि जन इच्छा को प्रभावशाली बनाने और उसे प्रभुत्व देने के लिए होना चाहिए ठीक इसके विपरीत। वे चाहते थे कि निम्नस्तरीय शक्ति के द्वारा उच्चस्तरीय शक्ति का निर्माण हो। जनता में शक्ति के वास्तविक बिखराव के लिए उन्होंने कहा था 'ताकत जनता से निकल कर ऊर्ध्वगामी बन, ऊपर की तरफ जाए पानी फूट कर ऊपर की तरफ निकलता है जनता की ताकत क्षेत्र जिला, प्रदेश और सारे देश की तरफ जाने के बजाय हमारे देश में ठीक इसका उल्टा होता है।'[2]

आत्म विनिश्चय का सिद्धान्त—डॉ० लोहिया की मान्यता थी कि प्रत्येक राजनैतिक समूह को आत्म विनिश्चय का अधिकार होना चाहिए। तिब्बत के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए उन्होंने प्रत्येक समूह की स्थिति निर्धारण करने की मुख्य छः कसौटियाँ निर्धारित की थी —(१) जमीन का ढलाव, (२) भाषा (३) लिखावट (४) धर्म और जिन्दगी का तरीका (५) प्राचीन इतिहास और संस्कारों की आपसी मर्यादायें (६) जनता की इच्छा। इन छः कसौटियों में जन इच्छा को सर्वाधिक महत्त्व देते हुए डॉ० लोहिया ने कहा, 'आधुनिक युग में और मेरे जैसा आदमी इस छठें का सबसे बड़ी कसौटी कहेगा। चाहे वे पाँचों जिस तरफ भी जाएँ अगर तिब्बत की जनता की इच्छा है किसी

* * * * *

1 Dr Lohia—Marx Gandhi and Socialism page 342

२—डॉ लोहिया क्रान्ति के लिए संगठन, पृष्ठ 198

एक विशिष्ट सगठन मे रहने की, तो उस इच्छा की पूर्ति होनी चाहिए। यही सबसे बड़ी कसौटी है।" उनके मत मे भारत-पाक समस्याओं का हल केवल हिंदू-पाक महासघ से ही सम्भव है, तथापि इस स्थिति के न आने तक कश्मीरी जनता को कश्मीर के भाग्य का निणय करने का अधिकार है।

इस प्रकार जन शक्ति के पुजारी डॉ० लोहिया का सिद्धान्त था कि सभी देश स्वतन्त्र हैं और उन्हें अपने भविष्य के निणय का स्वय अधिकार है। उनके आदश राज्य मे जनता की इच्छा को वही स्थान प्राप्त है जो राम के राज्य में था। जसे भाग्यवादी कहते है 'God s will shall be done जबकि डॉ० लाहिया कहते हैं, People s will shall be done जनता का अपने भाग्य के निणय का पूण स्वातन्त्र्य प्राप्त होना चाहिए। जहाँ तक सम्पूण देश की एक इकाई का सम्बन्ध है, इसका शत प्रतिशत आदर किया जाना चाहिए। परन्तु आशका इस बात की है और यह स्फुट या प्रच्छन्न रूप मे अपने देश म आज परिलक्षित भी होती है कि यह विचारधारा विघटन की प्रवृत्ति की जन्मदात्री सिद्ध हो सकती है।

चौखम्भा योजना

महात्मा गाँधी के समान डॉ० लोहिया ने भी आर्थिक और राजनतिक विकेन्द्रीकरण का सशक्त प्रतिपादन किया है। आर्थिक विकेन्द्रीकरण का विश्लेषण अध्याय ४ म किया जा चुका है। इस अध्याय मे केवल राजनतिक विकेन्द्रीकरण सम्बन्धी उनके विचारो का अध्ययन किया जा रहा है। डॉ० लोहिया के राजनतिक विकेन्द्रीकरण सम्बन्धी विचारो का अध्ययन निम्नलिखित भागो मे बाँट कर किया जा सकता है —(१) आधुनिक सघात्मक व्यवस्था की अपर्याप्तता, (२) चौखम्भा-योजना, (३) प्रशासकीय विकेन्द्रीकरण (४) चौखम्भा योजना का महत्त्व, (५) चौखम्भा योजना की सफलता क उपाय, (६) चौखम्भा योजना की समीक्षा।

आधुनिक सघात्मक व्यवस्था की अपर्याप्तता —राजनतिक विकेन्द्रीकरण राजनतिक समता एव सम्पन्नता का द्योतक है। जिस प्रकार आर्थिक जनतन्त्र के बिना राजनतिक जनतन्त्र असम्भव है उसी प्रकार राजनतिक जनतन्त्र के बिना आर्थिक जनतन्त्र असम्भव है। डा० लोहिया का मत है कि राजतन्त्र और कुलीनतन्त्र म राजनतिक शक्ति क्रमश एक व्यक्ति और कुछ कुलीनों में केन्द्रित रहती है। आधुनिक प्रजातन्त्रों में भी शन शन शक्ति

का केन्द्रीकरण कुछ अथवा एक के हाथ मे होता देखा जाता है।[1] परिणामत जनता का अधिकाश भाग एक केन्द्रित शक्ति के हाथ में कठपुतली मात्र रहकर अपग है जिससे प्रजातात्रिक व्यवस्था नवीन उन्मुक्त सभ्यता के लिए अपर्याप्त प्रतीत होने लगी है। प्रजातन्त्र की इस अपर्याप्तता के कारण ही सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व का जन्म हुआ।

डॉ० लोहिया की दृष्टि मे सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व और आधुनिक प्रजातत्र दोनो ही मानव की आकाक्षाओ को पूर्ण करने में असमर्थ है, क्योकि दोनो ही व्यवस्थाओ म राजनैतिक और आर्थिक शक्ति का केन्द्रीकरण कुछ मुट्ठी भर ऊपर वालो के हाथ म हो जाता है। एक ही व्यक्ति अथवा सस्था मे राजनतिक और आर्थिक शक्तियो का केन्द्रीकरण निरकुशता की दूसरी परिभाषा है। प्लेटो भी मानता था कि राज्य की राजनीतिक तथा आर्थिक शक्ति का एक ही हाथो म आ जाना किसी भी प्रकार से वाञ्छनीय नही है। इसलिए उसने अपने आदर्श राज्य के शासको को व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार से वचित करते हुए कहा था, ' None of them should have any property of his own beyond what is absolutely necessary neither should they have a private house or store closed against any one who has a mind to enter [2] इसी प्रकार उसने यदि उत्पादक वर्ग को सम्पत्ति का अधिकार दिया तो उन्हे राजनतिक अधिकार से वचित कर दिया।

राजनतिक केन्द्रीकरण के कारण डा० लोहिया के शब्दों मे 'दिमाग जकड गए हैं। विचारों का स्थान प्रचार ने ले लिया है आज विचार शक्ति का गुलाम बन गया है।'[3] केन्द्रीकरण का सबसे बडा दुष्परिणाम नौकरशाही है। शासक, सेठ और सरकारी अधिकारियो के त्रिकोण से शोषण ने अपनी जडें जमा ली हैं। शासन व्यवस्था और सामान्य व्यक्ति के बीच अन्तर की एक बडी भित्ति निर्मित हो गई है। इन सब दुष्परिणामो की पृष्ठभूमि मे आधुनिक सघात्मक व्यवस्था की भी अपर्याप्तता है। विश्व ने अभी तक केन्द्र और प्रात की दो खम्भो वाली सघात्मक व्यवस्था को ही अपनाया है। किन्तु डॉ० लोहिया के मतानुसार राज्य की सम्पूर्ण शक्तियो का विभाजन केवल दो

* * * * *

1—लोहिया-भाषण 26 फरवरी 1950 (स्मारिका चौथा राज्य सम्मेलन ऐ सो पा० म० प्र० 12 13 14 दिसम्बर 1970 के पृष्ठ 13 से)

2 Plato s Republic Translated by B Jowett M A page 127

3—इन्दुमति केलकर लोहिया सिद्धान्त और कर्म पृष्ठ 217

अङ्गो म होना जनतान्त्रिक दृष्टि से एकदम अपर्याप्त है। इस पर भी विश्व के लगभग सभी राज्यो म प्रान्तो (इकाइयो) की शक्तियाँ घटती हुई और केन्द्र की शक्तियाँ बढती हुई स्पष्टत दृष्टिगोचर होती हैं। इस प्रकार की केन्द्रित शक्ति केवल केन्द्र की ही समस्याओ का हल कर पाती है और प्रान्तीय, मडलीय तथा ग्रामीण समस्याओ का निराकरण प्राय असम्भव हो जाता है। उन्होने राजनैतिक शक्ति के बिखराव पर बल देते हुए उचित ही कहा था, 'बडी राजनीति देश के कूडे को बुहारती है छोटी राजनीति मोहल्ले अथवा गाँव के कूडे को—।"[1] अत उन्होने चौखम्भा योजना देश के सम्मुख रखी।

चौखम्भा योजना —डॉ० लोहिया के अनुसार सर्वोच्च अधिकार केवल केन्द्र तथा संघबद्ध इकाइयो मे ही न रहना चाहिए इसे तोडकर छोटे से छोटे क्षेत्रों में जहाँ नर नारियो के समूह रहते है, बिखरा देना चाहिए। संविधान बनाने की कला म अब अगला कदम चौखम्भा दिशा की ओर होना चाहिए। चौखम्भा योजना के अन्तर्गत ग्राम, मण्डल प्रान्त और केन्द्र इन चार समान प्रतिभा और सम्मान वाले खम्भो मे शक्ति का बिखराव होगा। यह चौखम्भा राज्य केवल शासन का निरा प्रबन्ध ही नही है। इसमे ऐसा न होगा कि संसद अथवा प्रान्तो की विधान सभाए कानून बनाए और ग्राम तथा मडल की संस्थाएँ इन कानूनो का केवल पालन करे। यह एक जीवन का ढग होगा जो मानव जीवन के सभी क्षेत्रो से सम्बन्ध रखेगा जैसे उत्पादन, स्वामित्व व्यवस्था, योजना शिक्षा आदि। इस व्यवस्था मे राज्य की सर्वोच्च सत्ता इस प्रकार बिखरी रहेगी कि उसके अन्दर रहने वाले प्रत्येक समुदाय उस तरह अपना जीवन चला सकेंगे जिस तरह वे चाहे। किन्तु इस प्रकार का बन्धन उनके बीच अवश्य रहेगा जो इकाइयों को एक सूत्र मे बाँधे रह सके। उनमे ये बन्धन आर्थिक, सास्कृतिक आदि सभी प्रकार के रहेग, जिससे कि वे तितर-बितर होकर राष्ट्र को छिन्न भिन्न न कर पावें। डॉ० लोहिया के शब्दो म, 'चौखम्भा राज्य की कल्पना मे स्वावलम्बी गाँव की नही, वरन समझदार और जीवित गाँव की धारणा है। यद्यपि दोनो विचार अनेक स्थानो पर एक दूसरे से मिल जाते है।[2]

चौखम्भा राज्य मे राज्य की सशस्त्र सेना केन्द्र के अधीन, सशस्त्र पुलिस प्रान्त के अधीन और अन्य पुलिस मण्डल तथा ग्राम के अधीन रहेगी। लोहे

* * * * *

1—डॉ लोहिया समाजवादी चिन्तन, पृष्ठ 101

2—डॉ० लोहिया भाषण, रीवा 26 फरवरी सन् 1950 ई

और इस्पात के उद्योग केन्द्र के नियन्त्रण में छोटी मशीनों वाले मायो कपड़े के उद्योग ग्रामो और मण्डलो के नियन्त्रण में रहेंगे। चौखम्भा राज्य में मूल्यों पर नियन्त्रण केन्द्रीय शासन रखेगा जबकि कृषि-ढांचा और उसमें पूजी तथा श्रम का अनुपात ग्राम और मण्डल की इच्छा पर निर्भर करेगा। सहकारी समितियाँ, ग्राम तथा कृषि-सुधार सिंचाई का अधिकांश भाग, बीज, भू राजस्व वसूली आदि राज्य नियन्त्रित विषय चौखम्भा राज्य में ग्राम और मडल के अधीन किए जाएँगे।[1] डॉ० लोहिया का मत था कि कर के रूप में केन्द्रीय शासन के पास जो रुपया इकट्ठा होता है उसका एक भाग ग्राम या शहर को, दूसरा भाग मण्डल को, तीसरा भाग प्रान्त को और चौथा भाग केन्द्र को प्राप्त होना चाहिए क्योंकि जब तक जनतान्त्रिक संस्थाओं के पास पैसा न होगा वे अपने कार्यों का सही ढंग से सम्पादन न कर सकेंगी।[2] राष्ट्रों के बीच समता और विश्व सभ्यता के लिए डॉ० लोहिया ने बालिग मताधिकार पर चुनी हुई और सीमित अधिकारो वाली विश्व-सरकार का पाँचवां खम्भा भी जोडने पर बल दिया था।

प्रशासकीय विकेन्द्रीकरण —चौखम्भा राज्य के अतिरिक्त डॉ० लोहिया ने प्रशासन के विकेन्द्रीकरण पर बहुत बल दिया था। उनका मत था कि जिलाधीश का पद समाप्त होना चाहिए और पुलिस तथा अन्य सेवा विभाग ग्राम और मण्डल के प्रतिनिधियो के अधीन किए जाने चाहिए।[3] जिन प्रशासकीय स्तर के प्रशिक्षण और अनुभव में वतमान जिलाधीश को प्रशिक्षित किया जाता है उन्ही के द्वारा कार्यपालिका अधिकारी का प्रशिक्षित कर मडलीय सरकार के सहयोग के लिए प्रदान किया जाना चाहिए। ये कार्यपालिका अधिकारी मडलीय सरकार के अधीन काय करेंगे। प्रशासकीय विकेन्द्रीकरण के साथ-साथ वे विधायिनी शक्ति का भी विकेन्द्रीकरण चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि मडलीय एव अन्य स्थानीय पचायतो को व्यवस्थापन के अधिकार देने का काय प्रारभ किया जाना चाहिए यद्यपि बडी सतकता के साथ।

हेराल्ड जेम्स लास्की भी विकेन्द्रित व्यवस्था के समर्थक थे। डॉ० लोहिया के समान उनकी भी मान्यता थी कि विधायिनी और प्रशासकीय केन्द्रीकरण व्यक्ति को व्यक्तित्वहीन बना देता है। केन्द्रीकरण को मानव स्वतन्त्रता के विपरीत बतलाते हुए वे कहते हैं "The individual in the modern

* * * * *

1—डॉ० लोहिया भाषण रीवा 26 फरवरी सन् 1950 ई०

2—डॉ० लोहिया क्रान्ति के लिए संगठन (भाग 1) पृष्ठ 112

3—डॉ० लोहिया क्रान्ति के लिए संगठन (भाग 1) पृष्ठ 115

state tends to feel impotent before the vast administrative machine by which he is confronted In states of the modern size the mere achievement of equality would be harm ful without the maximum decentralization [1]

डॉ० लोहिया राज्यपाल के पद को समाप्त करना चाहते थे। राज्य और केन्द्र के जो कुछ भी कम से कम सम्बन्ध होंगे उनको एक अधिकारी द्वारा व्यवहृत किया जायगा। उनका विचार था कि साक्ष्य और आपराधिक अधिनियम में इस प्रकार का परिवर्तन होना चाहिए कि जिसमें सामान्यजन को भी शीघ्र और सस्ता न्याय दिया जा सके। इसके अतिरिक्त वे वर्तमान कानूनो पर पुर्नविचार करने के लिए एक समिति निर्माण के पक्षधर थे, जिससे कि कानूनो से अप्रजातात्रिक तत्त्वो को हटाया जा सके। वे चाहते थे कि दो या तीन राज्यो के लिए एक उच्च न्यायालय और एक लोक सेवा आयोग हो ताकि उच्च न्यायालयों और लोक सेवा आयोगो की सख्या घटाई जा सके और उनके कार्य क्षेत्र का विस्तार किया जा सके।[2]

चौखम्भा योजना का महत्त्व—डॉ० लोहिया का मत था कि किसी भी देश का उत्थान वहाँ की जनता की चेतना और राजनैतिक जागृति पर निर्भर करता है। किसी देश के नागरिको को सुधारे बिना देश का सुधार करना असम्भव होता है और नागरिकों का सुधार तभी सम्भव होता है जबकि स्थानीय स्वशासन का अधिकार देकर उनके ऊपर विभिन्न उत्तरदायित्वो का मढा जाये। इस तथ्य पर बल देते हुए डॉ० लोहिया कहते हैं, 'Unless local initiative is aroused fully, by grant of powers and responsi bility, these apathetic millions of Asia cannot be roused in to action' [3] डा० लोहिया के समान जान स्टुअट मिल भी स्थानीय स्वशासन पर अत्यधिक बल देता था। स्पष्ट है कि नागरिकों में राजनैतिक चेतना बिना विकेन्द्रीकरण के सम्भव नही। इसलिए विकेन्द्रीकरण के द्वारा ही नागरिको को अपना स्थानीय शासन करने और देश विदेश की समस्याओं को समझने योग्य बना कर देश का उत्थान किया जा सकता है। डॉ० लोहिया का मत है कि व्यवस्थापन और कार्यपालिका सम्बन्धी विकेन्द्रीकरण द्वारा ही व्यक्ति को अधि

* * * * *

1 H J Laski A Grammar of Politics page 170-171
2 Dr Lohia Marx Gandhi and Socialism page 410
3 Harris Wofford J R. Lohia and America Meet page 137

कारो के पूर्ण उपभोग के योग्य बनाया जा सकता है। विकेन्द्रीकरण के द्वारा ही वे अपने भाग्य के सच्चे निर्माता बन जाते हैं। उनकी दृष्टि में पूँजीवाद व्यक्ति को राजनैतिक और सांस्कृतिक स्वतन्त्रता देने का झूठा प्रचार करता है और उसी प्रकार साम्यवाद व्यक्ति को आर्थिक अथवा रोटी की स्वतन्त्रता देने का झूठा दावा करता है। उनका चौखम्भा राज्य व्यक्ति को सांस्कृतिक और राजनैतिक दोनों ही स्वतन्त्रताएँ प्रदान करता है तथा उनका भूमि पुनर्वितरण सिद्धान्त व्यक्ति को आर्थिक स्वतन्त्रता प्रदान करता है। इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है, In striving for redivision of land together with the four pillar state in which sovereignty is exercised at all levels the socialist combines the need for bread with that for culture and is likely to win the battle for both "[1]

डा० लोहिया के मत में चौखम्भा राज्य जनता की अकर्मण्यता समाप्त कर भ्रष्ट व बोझिल व्यवस्था से उसको मुक्त करता है। यह राज्य जनतन्त्र की रूपरेखा में हमदर्दी और बराबरी का रंग भरता है। वे जनतन्त्र को जनता द्वारा जनता के लिए और जनता का शासन मानते थे, किन्तु जनतन्त्र को वास्तविक बनाने के लिए चौखम्भा राज्य को भी वे अत्यावश्यक समझते थे क्योंकि चौखम्भा राज्य के द्वारा, समुदाय द्वारा समुदाय के लिए समुदाय का शासन स्थापित होता है जो कि प्रजातन्त्र के लिए आवश्यक है।

चौखम्भा योजना की सफलता के उपाय—चौखम्भा राज्य की व्यवस्था को प्राप्त करने के लिए डा० लोहिया ने छोटी मशीनों पर आधारित उद्योग की व्यवस्था दी। इसके अतिरिक्त भूमि का पुनर्वितरण भी इस दिशा में उन्होंने उपयोगी माना। चौखम्भा राज्य को साकार करने के लिए उन्होंने अँग्रेजी हटाओ अभियान चलाया। निरक्षरता रूढ़ि परम्परा, जाति, नर नारी असमानता आदि सामाजिक बुराइयों को समाप्त करना चौखम्भा राज्य की स्थापना के लिए उन्होंने आवश्यक माना। उनका मत था कि प्रत्येक सामान्य जन को आर्थिक सामाजिक सांस्कृतिक राजनैतिक आदि ढंग से सबल बनाये जाने से ही चौखम्भा राज्य की कल्पना साकार हो सकती है। यही कारण है कि उनका समग्र दर्शन सामान्य जन के सर्वांङ्गीण विकास की ओर उन्मुख है।

* * * * *

1 Dr Lohia Marx, Gandhi and Socialism page 317

चौखम्भा योजना की समीक्षा —डॉ० लोहिया के चौखम्भा राज्य की कल्पना केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण के बीच सतुलन स्थापित करती है। इनकी चौखम्भा योजना गाधीवादी स्वावलम्बी ग्रामो और आधुनिक सघवाद के मध्य का माग है। यह राष्ट्र की एकता और अखण्डता तथा छोटे समुदायों की स्वायत्तता का सुन्दर सम्मिश्रण है। आर्थिक विचारो के समान राजनैतिक विचारों को भी उन्होंने चौखम्भा राज्य और प्रशासकीय विकेन्द्रीकरण द्वारा मूर्त और ठोस रूप देने का प्रयास किया है। उनके राजनैतिक विकेन्द्रीकरण पर गाधी जी का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। डा० लोहिया का राजनैतिक और प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण राजकीय, आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक प्रगति का द्वार है। ग्राम और नगर के मध्य अधिकारो का समान वितरण ग्रामो और नगरों की समानता का परिचायक है। उन्होंने अधिकारी वर्ग को जनता के प्रतिनिधियो के नियन्त्रण में रखकर सच्चे जनतन्त्र के निर्माण का प्रयत्न किया है। इस प्रकार के नियन्त्रण मे यद्यपि एक ओर नौकरशाही की समाप्ति मे सहायता मिल सकती है, तथापि दूसरी ओर भ्रष्टाचार और बेईमानी को बढावा मिलने के कम अवसर नही, क्योंकि सत्ताधारी दल कर्मचारियो का अनुचित प्रयोग कर सकने में समर्थ हो सकेगा। मेरी दृष्टि मे कर्मचारी राजनैतिक दबाव से उन्मुक्त रह कर ही अपना कर्त्तव्य सही ढग से पालन कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त छोटे समुदायो के शासन द्वारा की गई नियुक्तियाँ पक्षपातपूर्ण हो सकती हैं और उनके प्रत्यक्ष निर्वाचन मे भ्रष्टाचार और विघटन की भी अधिक सम्भावना है। अभी तक देखने मे यही आया है कि ग्राम-पचायतो के चुनावो ने प्रत्येक ग्राम पचायत को वमनस्य, कटुता, दलबन्दी आदि से भर दिया है।

इसके विपरीत चौखम्भा-योजना पर सोचने का एक यह भी ढग हो सकता है कि अभी तक इन छोटे समुदायो को कम अधिकार दिए गए थे। इसलिए उनमे उत्तरदायित्व की भावना उतनी अधिक नही थी। अब जब उन्हे अधिकाधिक कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका सबधी *अधिकार प्रदान किए जाएँगे*, तब उनमे उत्तरदायित्व की भावना आएगी और तब सम्भवत वे अपने वतमान दुर्गुणो और भ्रष्टाचारो से छुटकारा पाने मे समर्थ हो सकेंगे। डॉ० लोहिया का कहना था, "Give the villages and counties large constitutional powers and let us see if the people do not do something different It s worth the experi

ment Somehow we must overcome these monstrous evils of centralization '[1]

सविनय अवज्ञा का सिद्धान्त (सिविल नाफ़रमानी)

सविनय अवज्ञा का सिद्धान्त नवीन नही है। डा० लोहिया ही इसके जन्मदाता नही हैं। डॉ० लोहिया के पूर्व भी कई सत्याग्रहियो ने सविनय अवज्ञा को विश्व के समक्ष अपने कृत्यो द्वारा रखा। यूनानी विद्वान सुकरात ने झूठी परम्पराओ और धार्मिक पाखण्डो के विरुद्ध वहाँ के नवयुवको मे अनास्था और असहयोग की भावना का बीजारोपण किया। इस कारण एथेन्स के न्यायाधीशो ने सुकरात को मृत्युदण्ड दिया। सुकरात ने सहर्ष जहर के प्याले का आचमन किया, किन्तु सत्य से नही मुकरा। भारत भूमि मे प्रह्लाद ने अपने पिता के अन्यायी आदेशो की सविनय अवज्ञा की। प्रह्लाद को तलवार, तीर त्रिशूल व गदा से मारा गया पर्वत से नीचे गिराया गया अग्नि मे जलाया गया, वध करने की धमकी दी गई किन्तु उसने सत्य मार्ग को नही छोडा।[2] मीरा ने भी अपने पति के द्वारा भेजे गये जहर के प्याले को पिया और अन्य अनेक यातनाएँ सही, किन्तु अपने द्वारा चुने गए सत्य मार्ग—भक्ति को नही त्यागा।

उपर्युक्त सभी दृष्टान्त सविनय अवज्ञा के ही जीते जागते उदाहरण है। किन्तु इन सविनय अवज्ञा के कृत्यो की प्रमुख दो सीमाएँ दृष्टव्य हैं। सविनय *अवज्ञा के इन प्रयत्नो की प्रथम सीमा यह थी कि ये सब सविनय* अवज्ञा के व्यक्तिगत प्रयास थे। इनमे सामूहिक सविनय अवज्ञा का अभाव था। परिणामत सामाजिक अन्याय के विरोध की शक्ति इनमे नही थी। उपर्युक्त दृष्टान्तो मे केवल व्यक्तिगत अन्याय का विरोध था जिसका सामाजिक महत्त्व उतना नही, जितना कि सामूहिक सविनय अवज्ञा का होता है। इन सविनय अवज्ञा के दृष्टान्तो की दूसरी सीमा यह है कि उपर्युक्त सविनय अवज्ञा के प्रयत्न केवल बडे व्यक्तियो और राजकुमारो तक ही सीमित थे। सुकरात प्रह्लाद मीरा आदि सभी बडे व्यक्तित्व थे। जनसाधारण से इन प्रयासो का कोई सम्बन्ध नही था।

इस धरा पर प्रथम बार महात्मा गाधी ने सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा

* * * * *

1 Harris Wofford Lohia and America Meet, page 33

2—बाबू मक्खनलाल पंजाबी सुखसागर (श्रीमद्भागवत का हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ 354 355

की इन सीमाओं को तोडा। उन्होंने व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा को सामूहिक बनाया। महात्मा गांधी ने बड़े व्यक्तित्वों तक ही सीमित इस सविनय अवज्ञा को जनसाधारण तक विस्तृत किया। महात्मा गांधी के पश्चात यह सिद्धान्त विनोबा जी के हाथ केवल एकांगी रूप में आया। उन्होंने गांधी जी के सत्याग्रह के दो पहलुओं प्रेम और रोष में से केवल प्रेम को ही अपना भाग दर्शन चुना। इस कारण विनोबा जी का सत्याग्रह उनके अथक परिश्रम और महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों के पश्चात भी प्राय प्रभावहीन रहा। क्योंकि उनके सत्याग्रह और भू दान योजना के चलते हुए भी इस देश में भ्रष्टाचार और अन्याय ने और अधिक गहरी जड़ जमा ली हैं। निर्धनता और विषमता निरंतर बढ़ रही है। परिणामस्वरूप गांधी जी का शक्तिशाली और प्रभावपूर्ण सत्याग्रह अपनी सड़न की अवस्था में पहुंच गया। गांधी जी के कई लाड़ले शिष्यों ने सत्याग्रह करने के स्थान में उसको कुचलना प्रारंभ कर दिया। ऐसे अवसर पर डॉ० लोहिया ने सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा का पुर्नजीवित किया। उन्होंने इसे समता तथा सम्पन्नता प्राप्ति के लिए प्रमुख अस्त्र के रूप में अपनाया। अब हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत डा० लोहिया के सिविल नाफरमानी सिद्धान्त का अध्ययन करेंगे—(१) सिविल नाफरमानी की व्याख्या। (२) शाश्वत सिविल नाफरमानी। (३) सिविल नाफरमानी की सर्वव्यापकता। (४) डॉ० लोहिया द्वारा की गई सिविल नाफरमानी। (५) सिविल नाफरमानी का महत्त्व।

सिविल नाफरमानी की व्याख्या—मानव जब तक इस धरा पर है तब तक अन्याय भी रहेंगे और जब तक अन्याय हैं तब तक उनका प्रतिकार भी रहेगा। अन्याय के प्रतिकार के दो साधन है—एक हिंसात्मक और दूसरा अहिंसात्मक। अन्याय के विरोध का अहिंसात्मक मार्ग ही सत्याग्रह है जिसकी एक प्रमुख शाखा सविनय अवज्ञा है जिसे डा० लोहिया ने "सिविल नाफरमानी" का सिद्धान्त कहा है। सिविल नाफरमानी सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए डॉ० लोहिया ने स्पष्ट किया कि सविनय अवज्ञा का अर्थ अन्यायी की इच्छा के समक्ष कमजोरी से झुक जाना नहीं बल्कि अन्याचारी की इच्छा का अपनी आत्मा की समस्त शक्ति से विरोध करना है। सिविल नाफरमानी करने वाला व्यक्ति न तो गाय बनकर अन्यायी के अन्याय को सहन करता है और न वह अत्याचार के प्रतिकारार्थ शेर की तरह हिंसक बनता है। सिविल नाफरमानी गाय शेर' के बीच की चीज है। इसका अर्थ 'मामूली इंसान

की मामूली वीरता के साथ काम चलाना" है।[1] सविनय अवज्ञा के अतिरिक्त सत्याग्रह के अन्य रूप डॉ० लोहिया को पसन्द न थे।

भूख हड़ताल, उपवास तथा अनशन आदि के वे कटु आलोचक थे। इन सब रूपों को वे धोखा समझते थे। गांधी जी के अनशनों पर भी उन्हें शक था। उन्होंने गाधी जी से कहा भी था "क्या अनशन से आप मुल्क मे धोखा नही फला रहे हैं ?" गाधी जी ने उनके सन्देह को स्वीकार करते हुए और अपनी सत्यता को बताते हुए उत्तर दिया था 'सारे ससार की बेईमानी के कारण मुझे क्यो बेईमान कहते हो ?'[2] इस वार्ता से यह स्पष्ट है कि डॉ० लोहिया सत्याग्रह को भूख हड़ताल, अनशन और उपवास आदि के वाह्य आडम्बरो से मुक्ति दिलाना चाहते थे। भले ही गाधी जी एक अपवाद हों लेकिन सामान्य मानव सत्याग्रह के इन बाह्य और आडम्बर युक्त उपकरणो द्वारा दिखावा मात्र करता है सत्याग्रह नही।

सविनय अवज्ञा सिद्धान्त का विश्लेषण करते हुए डॉ० लोहिया ने कहा कि 'सिविल नाफरमानी अथवा अन्याय से शान्तिपूर्वक लडना अपने आप मे एक कर्त्तव्य है। कर्त्तव्य म आगा पीछा या नफा-नुकसान नहीं देखा जाता।[3] उपर्युक्त कथन द्वारा उन्होंने गीता के सिद्धान्त 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन, के साथ सविनय अवज्ञा सिद्धान्त को जोडकर उसे व्यापक और निष्काम बनाया है। कर्त्तव्य के इस निष्काम भाव के सम्बन्ध मे गियोर्डानो ब्रूनो का भी कथन है 'मैं जूझा हूँ, यही बहुत है विजय भाग्य के हाथो मे है।'[4] डा० लोहिया के मतानुसार सविनय अवज्ञा का उद्देश्य केवल अन्यायी के हृदय को परिवर्तित कराना ही नही अपितु असख्य जन-समूह का हृदय बदलना भी उसका परम लक्ष्य है। करोड़ो असमर्थ और कमजोर व्यक्तियों को समर्थ बनाना और उनमे अन्याय का विरोध करने के लिए असीम शक्ति भरना भी सविनय अवज्ञा सिद्धान्त का उद्देश्य है।

सविनय अवज्ञा सिद्धान्त का सच्चा अनुयायी वही है जो असख्य कठिन कष्टों को सहन करने के उपरान्त यह कहता है कि 'मरेंगे मगर मानेंगे नही, मारो अगर मार सकते हो लेकिन हम तो अपने हक पर अडे रहेंगे।'[5] डॉ०

* * * * *

1—डॉ० लोहिया नया समाज नया मन पृष्ठ 2
2—इन्दुमति केलकर लोहिया सिद्धान्त और कर्म पृष्ठ 414
3—डॉ० लोहिया सिविल नाफरमानी सिद्धान्त और अमल पृष्ठ 7
4—डॉ० राधाकृष्णन भगवद्गीता पृष्ठ 125
5—डॉ० लोहिया सिविल नाफरमानी सिद्धान्त और अमल पृष्ठ 8

लाहिया के मत म वह सत्य झूठा होता है जिसमे शक्ति नही होती । अत सच्चा सत्याग्रह वही है जो अपनी शक्ति (सत्य की प्रतिष्ठापना करके ही दम ले, उसके पूव नही । यदि अच्छे जीवन के माग में आने वाली अन्याय और असत्य की बाधाओ के लिए सत्याग्रह एक बाधा नही हो सकता, तो वह सत्याग्रह नही है । इसी से डॉ० लाहिया न कहा है, "सिविल नाफरमानी की सबसे बुनियादी बात यह है कि सच्चाई करोडो लोगो के अन्दर बठने के लिए तपस्या और तकलीफ का सहारा ले ।'[1]

डॉ० लोहिया ने सत्याग्रह के दो पहलू बतलाये हैं, पहला प्रेम और दूसरा रोप अथवा आज प्रेम । और रोप का सम्मिश्रण ही सत्याग्रह है । गरीब, अनाथ तथा असमथ व्यक्तियो के प्रति प्रेम और अत्याचारियो के प्रति रोप ही सत्याग्रह की पूणता है । यदि डॉ० लोहिया के शब्दो मे ही कहे तो "क्रांति म करुणा का मेल सिविल नाफरमानी (सविनय अवज्ञा) है ।'[2] इस आधार पर उन्होने विनोबा जी के सत्याग्रह की आलोचना की और कहा कि उनका सत्याग्रह एकांगी है । वह गरीबो के प्रति दया और सहानुभूति तो रखता है, किन्तु अन्यायियो के प्रति रोप उसमे नही है ।[3] अन्याय के प्रति सात्त्विक क्रोध अनिवाय है । यदि सात्त्विक क्रोध अन्यायी के तामसिक क्रोध का नाश करता है तो इसमें हिंसा नही, क्योकि तब तो क्रोध का देवता ही क्रोध को खा जाता है ।

डॉ० लोहिया के मतानुसार जिस प्रकार सत्याग्रह प्रेम और रोप का एक साथ योग है उसी प्रकार वह ध्वंसात्मक और रचनात्मक वत्तियो का भी एक साथ समन्वय है । सच्चा सत्याग्रही यदि एक ओर अन्यायी कुव्यवस्था को ध्वस करता है तो दूसरी ओर सुव्यवस्था की रचना और सगठनात्मक शक्ति का प्रादुर्भाव करता है ।[4] सिविल नाफरमानी तक और हथियार का एक साथ योग है । यह सिद्धान्त तक के माधुय से और हथियार के बल से सुसज्जित है । इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है कि 'मानवीय इतिहास के दो व्यूह हैं तक और हथियार । सिविल नाफरमानी मे तक और हथियार दोनो का मिश्रण है । इसमे एक ओर तो तक का माधुय है दूसरी ओर हथियार का

* * * * *

1—डॉ लोहिया सिविल नाफरमानी सिद्धान्त और अमल पृष्ठ 11
2—डॉ लोहिया इतिहास-चक्र पृष्ठ 102
3—डॉ लोहिया सिविल नाफरमानी सिद्धान्त और अमल पृष्ठ 12
4—डॉ० लोहिया सिविल नाफरमानी सिद्धान्त और अमल, पृष्ठ 20

बल भी।"[1] डॉ० लोहिया का विचार था कि दार्शनिक शुभेच्छा और राजनीतिक संघर्ष मानव क्रिया के दो पृथक भाग हैं, किन्तु इन दोनों भागों में आवागमन अनिवार्यतः होते रहना चाहिए। संघर्ष की राजनीति पर दार्शनिक शुभेच्छा का रंग हमेशा चढ़ते रहना चाहिए। दार्शनिक शुभेच्छा और राजनीतिक संघर्ष के मिलन का सर्वोच्च दृष्टान्त (सिद्धान्त) सविनय अवज्ञा है।

शाश्वत सिविल नाफरमानी —डॉ० लोहिया के मत में सत्याग्रह की सच्ची कसौटी तात्कालिक सफलता नहीं, अपितु करोड़ों का मत परिवर्तन है। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु उन्होंने निरंतर सत्याग्रह की कल्पना रखी। इस दृष्टि से वे गांधी जी से एक पग आगे बढ़े। गांधी जी के पास सत्याग्रह एक अवसर विशेष पर काम आने वाला सिद्धान्त था। किन्तु डॉ० लोहिया के हाथों में वह एक शाश्वत सिद्धान्त बन गया। उनका कहना था कि सप्ताह के सातों दिनों में प्रत्येक राजनैतिक दल को कम से कम दो-दो दिन सत्याग्रह करना चाहिए। जिस तरह किसी दौड़ में एक दौड़ाक थकता है तो दूसरा आता है और फिर तीसरा आता है कुछ रिले रेस जैसी होती है, उसी प्रकार हिन्दुस्तान में *सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा की रिले रेस होनी चाहिए। केवल तभी अन्यायी* शासन, चाहे वह किसी भी दल का हो समाप्त हो सकेगा। उनकी तीव्र उत्कंठा थी कि इस प्रकार के दल का निर्माण होना चाहिए कि जो कभी सत्ता पर न बैठे, बल्कि सत्ताधारियों के अन्यायों का अहिंसात्मक ढंग से सदैव प्रतिकार करे जिससे कि अत्याचारी शासनों को उलटते पलटते रोटी की तरह सेंक कर एक दिन पवित्र बनाया जा सके। *इस सन्दर्भ में उनके निम्नलिखित* सारगर्भित किन्तु मनोरंजक वाक्य उनकी निश्छल, पवित्र ईमानदार, सत्याग्रही, आशावादी और शाश्वत श्रमयुक्त राजनीति के परिचायक हैं, हिन्दुस्तान की सामान्य जनता, मामूली लोग अपने में भरोसा करना शुरू करें कि कल तक तो अँग्रेजी राज था, वह पाजी बन गया, उसको खतम किया। आज कांग्रेसी सरकार है यह पाजी बन गई, इसको खतम करेंगे। कल, मान लें कम्युनिस्ट सरकार बनेगी वह पाजी बन जाये तो उसका खतम करेंगे। परसों सोशलिस्ट सरकार बनेगी। मान लो वह पाजी बनी, तो उसको भी खतम करेंगे। जिस तरह तवे के ऊपर रोटी उलटते पलटते सक लेते हैं उसी तरह से हिन्दुस्तान की सरकार को उलटते-पलटते ईमानदार बनाकर छोड़ेंगे। यह

* * * * *

1—डॉ लोहिया नया समाज नया मन पृष्ठ 1

भरोसा हिंदुस्तान की जनता में अगर आ जाये किसी तरह से तो फिर रंग आ जाएगा अपनी राजनीति मे।'[1] किन्तु इस उलट पलट के क्रम मे उन्होंने हिंसा से पृथक रहने का उद्घोष किया, क्योंकि इस प्रकार के परिवर्तनात्मक कार्यक्रम की सच्ची कसौटी हिंसात्मक और दमनात्मक नीति के समक्ष अहिंसात्मक बना रहना है। इसके अतिरिक्त डा० लोहिया ने स्पष्ट किया कि विधि की सविनय अवज्ञा न्याय हेतु करना जितना अनुचित है, सामूहिक न्याय और परमाय के लिए उतना ही उचित। सिविल नाफरमानी सदव उचित उद्देश्य के लिए और उचित तरीका द्वारा की जानी चाहिए अन्यथा उससे कोई लाभ नही।[2] वे कितने अहिंसक थे और कितने ईमानदार सरकार के इच्छुक, इसका प्रमाण सन १९५४ ई० मे केरल की अपनी ही सरकार से उनका इस्तीफा मांगना है। इतना सब होते हुए भी उनके सम्बन्ध में यह तो कहा जा सकता है कि वे कभी-कभी, जसा कि उनके उपयुक्त कथन से स्पष्ट है, अशिष्ट भाषा का प्रयोग कर स्वयं हिंसात्मक वचन प्रयोग करके महसूस होते हैं।

सविनय अवज्ञा की सर्वव्यापकता —डॉ० लोहिया के मतानुसार सविनय अवज्ञा का सिद्धान्त सर्वव्यापक है। यह सिद्धान्त जिस प्रकार राष्ट्रीय अन्याय का विरोध करने के लिए सक्षम है उसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय अन्याय और अत्याचार का भी। चूंकि अन्तर्राष्ट्रीय जगत भी अन्यायो से भरपूर है, इसलिए उनके मत मे विश्व स्तर पर सविनय अवज्ञा का अभ्यास होना चाहिए। किन्तु इस हेतु प्रारम्भ राष्ट्रीय अन्यायों के ही विरोध से हो सकता है। उनका यह स्पष्ट मत था कि जब तक कोई देश अपने ही शासन के अन्यायी नियमो और कार्यों की सविनय अवज्ञा करना नही सीखता, वह देश कभी भी विदेशी अन्याय का विरोध करने मे सक्षम नही हो सकता। राष्ट्र की सबसे बडी सुरक्षा जनता द्वारा स्वयं की सरकार के विरुद्ध सविनय अवज्ञा का किया जाना है। सत्याग्रह और राष्ट्रीय सुरक्षा का घनिष्ठतम रूप से जोड़ते हुए उन्होंने कहा था, To the extent that such potential Satyagrahis increese in a nation to that extent is the nation free The best defence of freedom is the readiness of indivi

* * * * *

1—डॉ० लोहिया-पाकिस्तान मे पलटनी शासन पृष्ठ 25

2—'जन मार्च सन 1968 ई0 पृष्ठ 127

duals and of primary units of organizations to resist injustice [1]

राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय अन्यायों को समाप्त करने के लिए वे सविनय अवज्ञा का एक स्थायी मानसिक दृष्टिकोण का रूप देना चाहते थे। उनकी दृष्टि में सिविल नाफरमानी का अन्तर्राष्ट्रीय महत्व है। फ्रांस अमरीका और भारत में देशी अन्यायों के प्रति हो रहे सविनय अवज्ञा से आज या कल संसार के सभी देशों को यह सोचने मे सहायता मिलेगी कि सिविल नाफरमानी सशस्त्र विद्रोह की जगह ले सकती है। इसके अतिरिक्त कई विषयों मे देशी अन्यायों का प्रतिकार करने से अन्तर्राष्ट्रीय अन्यायों की समाप्ति स्वतः हो जाती है। *किसी एक देश के सत्याग्रही दूसरे देश पर आक्रमण करने के लिए* जा रही अपनी सेनाओं को यदि रोकते हैं तो अन्तर्राष्ट्रीय जगत में स्वतः ही अनाक्रमण की स्थिति बनती है। इस हेतु डॉ० लोहिया की इच्छा थी कि केवल भारत मे ही नहीं अपितु सम्पूर्ण संसार के राष्ट्रों में ऐसे दलों का निर्माण हो जो कभी भी सत्ता में न आवें बल्कि सत्ताधारियों के द्वारा किए जा रहे अन्यायों के प्रति सविनय अवज्ञा करें। १६ जुलाई सन १९५१ ई० को अमरीका में एक वार्ता के मध्य उन्होंने कहा था, I wish a tribe of politician arose all over the world, which would specialize in doing its job without holding offices A big problem for mankind to day is how to tame power [2]

डॉ० लोहिया द्वारा की गई सिविल नाफरमानी —डा० लोहिया ने सविनय अवज्ञा सिद्धान्त का केवल सद्धान्तिक प्रचार ही नहीं किया, अपितु कई सविनय अवज्ञा आन्दोलनों का नेतृत्व किया। गाधी जी के साथ अंग्रेजी शासन के विरुद्ध उन्होंने सविनय अवज्ञा मे तो सक्रिय भाग लिया ही अपने देशी शासन के विरुद्ध भी अन्यायों का सतत विरोध किया। उन्ही के सहयोग से ६ अगस्त सन् १९५३ ई० मे आजमगढ़ जिले के कृषकों ने शासकीय अभिलेखों की त्रुटिपूर्ण प्रविष्टि के विरोध में सविनय अवज्ञा की।[3] अवधानिक बेदखली के विरोध में मई सन् १९५१ ई० में मसूर राज्य के कृषकों ने सत्याग्रह किया जिसका नेतृत्व डा० लोहिया ने ही किया। सन् १९५४ ई० मे उत्तर

* * * * *

1—Dr Lohia Marx Gandhi and Socialism page 345
2—Harris wofford J R Lohia and Amrica Meet page 58
3—इन्दुमति केलकर, लोहिया सिद्धान्त और कर्म पृष्ठ 282

प्रदेश मे नहर रेट वद्धि के विरुद्ध उन्होने सामूहिक सविनय अवज्ञा की। उन्ही की प्रेरणा से भूमि सम्बन्धी विभिन्न माँगो को लेकर सन् १९५६ ई० मे बिहार के कृषको ने सिविल नाफरमानी चलाई।[1] सन् १९५६ ई० से सन् १९५६ ई० तक उन्ही के निर्देशन में समाजवादी दल ने बारी-बारी से देश के लगभग सभी हिस्सो मे सिविल नाफरमानी चलाई। अपने सिद्धान्तो को लेकर सन १९६० ई० म एक देश-व्यापी सविनय अवज्ञा की। सन १९६२ ई० मे चीनी आक्रमण के बाद डॉ० लोहिया ने 'देश बचाओ' आन्दोलन चलाया।[2]

सिविल नाफरमानी सिद्धान्त का महत्व —सिविल नाफरमानी का महत्व स्पष्ट करते हुए डा० लोहिया ने कहा कि हिंसात्मक क्रान्ति न तो उचित है और न सम्भव। इसके विपरीत सविनय अवज्ञा उचित भी है और सम्भव भी क्योकि डॉ० लोहिया के शब्दो मे "इसके लिए चौडी छाती के अलावा और किसी हथियार की जरूरत नही।"[3] सविनय अवज्ञा को सहयोग और असहयोग का अद्भुत सम्मिश्रण बतलाते हुए उन्होने कहा कि सविनय अवज्ञा करने वाला क्रान्तिकारी शुभ कार्यों मे सत्ताधारी को सहयोग प्रदान करता है और अशुभ तथा अन्यायी कार्यों मे असहयोग कर उसे पतित होने से बचाता है। इस प्रकार सविनय अवज्ञा म न्याय करने और अन्याय से सघर्ष करने की क्षमता होती है। किन्तु हिंसात्मक आन्दोलन मे न्याय करने की क्षमता नही और जब तक न्याय करने की शक्ति नही, तब तक उसमे अन्याय से सघर्ष करने की भी शक्ति नही आ सकती। राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से भी सविनय अवज्ञा लाभकारी है क्योकि राष्ट्रीय अन्यायो का विरोध करते-करते जन साधारण को अन्याय का विरोध करना स्वाभाविक हो जाता है जिसका प्रयोग वह विदेशी अत्याचारो के प्रति कर देश की रक्षा करता है। इसके विपरीत हिंसात्मक विरोध स्वय मे अन्याय है और देश तथा विदेश दोनो के लिए हानिकर है।

डॉ० लोहिया ने कहा कि अहिंसात्मक क्रान्ति जनसाधारण से कमजोरी हटाकर उनमे शक्ति का सचार करती है। इससे नैतिक पुनरुत्थान भी होता है। सविनय क्रान्ति नीर क्षीर विवेक करना सिखाती है। इस दृष्टि से सविनय अवज्ञा, यदि वह वास्तव मे न्याय के हेतु है पृथ्वी पर विवेक की यात्रा

* * * * *

1—इन्दुमति केलकर लोहिया सिद्धान्त और कर्म पृष्ठ 282

2—'दिनमान 20 सितम्बर सन् 1970 ई०।

3—डॉ लोहिया-सच कर्म प्रतिकार और चरित्र निर्माण आह्वान पृष्ठ 19

है। डॉ० लोहिया ने कहा भी था, "In the act of civil disobedience lies the irresistible impulse of the man without weapons to justice and equality Civil disobedience is assured reason [1] वास्तव में सविनय अवज्ञा ही विधि के सम्मान की रक्षा का एक मात्र उपाय है। यह कानून के आधारभूत नियमों और सिद्धान्तों की रक्षा करता है। हिंसात्मक क्रान्ति और सविनय अवज्ञा का कोई मेल नहीं। सविनय अवज्ञा त्याग, तपस्या और वीरता का पाठ भी पढ़ाती है। सत्याग्रह एक ऐसा अस्त्र है जो अकेले मनुष्य को बिना समूह में होते हुए, बिना हथियार की सहायता से बहादुर बनाता है। सिविल नाफ़रमानी की उपयुक्त कई उपादेयताओं के कारण डॉ० लोहिया चाहते थे कि जनता के सिविल नाफ़रमानी के अधिकार को मान्यता मिले।[2]

संक्षेप में, डॉ० लोहिया गांधी जी के पश्चात् सविनय अवज्ञा करने वाले एक मात्र भारतीय क्रान्तिकारी थे जिन्होंने देशी और विदेशी अन्यायों के विरोध में अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया। गांधी जी के द्वारा प्राप्त इस सत्याग्रह की धरोहर के वे केवल रक्षक ही नहीं बने बल्कि उसका विस्तार किया। सविनय अवज्ञा का प्रमुख उद्देश्य गांधी जी के मत में विरोधी अथवा अन्यायी का मत परिवर्तन था। किन्तु डॉ० लोहिया की दृष्टि में इसका प्रमुख लक्ष्य अन्यायी का हृदय परिवर्तन नहीं अपितु साधारण जन समूह का मत परिवर्तन है। गांधी जी समय-समय पर ही सत्याग्रह के पक्ष में थे। किन्तु डॉ० लोहिया निरन्तर सत्याग्रह चाहते थे। डॉ० लोहिया ने सविनय अवज्ञा सिद्धान्त की विशद व्याख्या की उसे वैयक्तिक और सामूहिक राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सिद्धान्त और कर्म, कार्य और फल नकारात्मक और सकारात्मक आदि सभी दृष्टियों से अवलोकन कर व्यापक बनाया है। उन्होंने सविनय अवज्ञा का सतत प्रयोग कर उसे सद्धान्तिक और व्यावहारिक स्थायित्व प्रदान किया। भले ही अत्याचार और अन्याय का शक्तिशाली राक्षस इतना भयंकर न हो परन्तु उससे भिड़न की डॉ० लोहिया की तीव्र सुधारवादी इच्छा दृष्टव्य है।

कुछ विचारकों का मत है कि सविनय अवज्ञा या सिविल नाफ़रमानी का पथ कायरों और बुजदिलों का अस्त्र है। इस विषय को लेकर गांधी जी की

* * * * *

1—Dr Lohia Marx Gandhi and Socialism Preface XXXI

2—डॉ० लोहिया सिविल नाफ़रमानी की व्याख्या पृष्ठ 15

भी बहुत आलोचना की गई है और इसी प्रकार डॉ० लोहिया के भी इस सिद्धान्त के बहुत आलोचक निकल आवेंगे। पर यह मार्ग फौलादी आत्मा वाले और भीष्म दृढ निश्चय वाले व्यक्ति या समूह ही अपना सकते हैं। इस पर खोटे सिक्के नही चल सकते। इस पर चलना तलवार की धार पर चलना है और इसी कारण यह अस्त्र कमजोरों को कमजोर मालूम पड़ता है। शस्त्र बल का भय अंग्रेजी दवाओं की तरह बुराई या अन्याय बीमारी को केवल रोक (चेक) भर सकता है सविनय अवज्ञा की आयुर्वेदिक बूटी की भाँति समूल नष्ट नहीं कर सकता हृदय परिवर्तन नहीं कर सकता। पर एक बात है। यह रास्ता बड़ा ही लम्बा और घिरावदार है और उसमें कच्चे सामान्य आदमियों का धैर्य छूट सकता है। इसलिए इसकी क्रियात्मकता और उपादेयता पर साधारण क्या विद्वानों को भी शक होने लगता है। पर धैर्य, आशावादिता और सहिष्णुता के पुजारी के लिए कुछ भी असम्भव नहीं हो सकता।

वाणी स्वतन्त्रता और कर्म नियन्त्रण

साम्यवादी देशों में तो वाणी-स्वातन्त्र्य एक कथा मात्र है ही, आधुनिक प्रजातन्त्रों में भी अनुशासन के नाम पर वाणी-स्वातन्त्र्य पर विभिन्न प्रकार के अवरोध लगाए जाते हैं। यह प्रवृत्ति केवल शासन में ही नहीं, अपितु राजनतिक दलों के संगठन में भी पायी जाती है। यद्यपि राजनतिक दल अपने सदस्यों की वाणी स्वतन्त्रता पर सैद्धान्तिक अवरोध नहीं लगाते तथापि व्यवहार में उनको वाणी की स्वतन्त्रता नहीं होती। उनके लिए अनुशासन का अर्थ उच्चतर समितियों और व्यक्तियों का आज्ञा पालन समझा जाता है। उच्चतर समितियों के निर्णयों के सम्बन्ध में स्वतन्त्र विचार व्यक्त करने वाले व्यक्ति को अनुशासनहीन समझा जाता है और उसे दल की सदस्यता तक से हाथ धोना पड़ता है। यह स्थिति लोकतान्त्रिक देशों के लिए घृणास्पद और लज्जाजनक है। सर्वभक्षी राज्यों के विपरीत लोकतान्त्रिक राज्यों में अनुशासन का अर्थ उच्चतर समितियों अथवा व्यक्तियों का आज्ञा-पालन नहीं होना चाहिए। वास्तव में अनुशासन का अर्थ है समितियों और व्यक्तियों के सीमित अधिकारों को मानना और स्वीकार करना चाहे वे बड़े हों या छोटे। डॉ० लोहिया का मत है कि जब कोई समिति या व्यक्ति विवेक और औचित्य (संविधान) द्वारा निर्धारित सीमा रेखा का अतिक्रमण करे तो उसे यह अधिकार नहीं होना चाहिए कि वह दूसरों से ऐसे निर्णयों के विरुद्ध काम न करने की आशा करे। राजनतिक दलों को यह आशा करने का अधिकार है कि

अल्पमत बहुमत के सावधानिक निर्णयों की अवहेलना नहीं करेगा, चाहे वह उन्हें गलत ही समझता रहे। लेकिन कार्य के ऊपर ही यह प्रतिबन्ध रहना चाहिए भाषण पर नहीं।[1] डॉ० लोहिया ने इसी दृष्टि से 'वाणी-स्वतन्त्रता और कर्म नियन्त्रण' का सिद्धान्त दिया।

डॉ० लोहिया का 'वाणी स्वतन्त्रता और कर्म नियन्त्रण' का सिद्धान्त

डॉ० लोहिया के सिद्धान्त 'वाणी-स्वतन्त्रता और कर्म नियन्त्रण' का अर्थ है कि वाणी स्वतन्त्रता बिल्कुल स्वच्छन्द रहे, किन्तु कर्म पूर्ण नियन्त्रित। उनका कहना था "वाणी की तो लम्बी बाँह होनी चाहिए खूब स्वतन्त्र हो, जो भी बोलो लेकिन जब कर्म करो तो बंधी हुई, संगठित अनुशासित मुठ्ठी होनी चाहिए।'[2] डा० लोहिया के इस सिद्धान्त के अनुसार यदि किसी अन्याय पूर्ण शक्ति के विरोध में वाणी-स्वातन्त्र्य का प्रयोग हो रहा हो तो उस अन्यायी शक्ति को वाणी स्वातन्त्र्य के प्रयोग कर्ता को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कभी भी दबाना नहीं चाहिए और न ही अपने पक्षवर्ती के अनियन्त्रित कार्यों को प्रश्रय देना चाहिए। डॉ० लोहिया के मतानुसार किसी राज्य या दल में अनुशासन वाणी अवरोध से नहीं बल्कि तब आता है जब उसके अंग अपने ऊपर कार्य के मनमाने सिद्धान्तों की रोक लगाते हैं विवेक हीन व्यवहार के द्वारा अपनी शक्तियों का अपव्यय नहीं होने देते और स्वतन्त्र मानसिक सम्बन्धों में बंधे प्रगति के पथ पर बढ़ते जाते हैं। वे राजनीतिक संस्थाएँ जो अपने अनुयायियों के भाषण पर अनुशासन की रोक लगाती हैं और नेतृत्व वर्ग को मनमाने काम की छूट देती हैं, उस सेना के समान होती हैं जो नहीं जानती कि उन्हें क्या करना है। डा० लोहिया के शब्दों में Political institutions which enjoin disciplined speech on their followers and permit arbitrary action to their leadership are like an army without knowledge of what it has to do[3]

वाणी स्वतन्त्रता का सशक्त प्रतिपादन करते हुए डॉ० लोहिया ने कहा कि जनतान्त्रिक देशों में प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण रूप से भाषण और अभिव्यक्ति

* * * * *

1—Dr Lohia Marx Gandhi and Socialism page 483
2—डॉ लोहिया समाजवादी आन्दोलन का इतिहास पृष्ठ 140
3—Dr Lohia Marx Gandhi and Socialism Page 484

की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। किसी के प्रति झूठ बोलना, किसी के साथ गाली गलौज करना अथवा अन्य किसी प्रकार से किसी का अपमान करना निश्चित रूप से अपराध हो सकता है किन्तु सामाजिक और राजकीय मामलों में, सिद्धान्त और कार्यक्रम के मामलों में प्रत्येक व्यक्ति को वाणी की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। जनता के इस अधिकार पर विवेकयुक्त और उचित बन्धनों का शासन एवं दल दोनों अनुचित लाभ उठाते हैं। परिणामस्वरूप वास्तविक स्वतन्त्रता का अपहरण होता है। अतः वाणी की बन्धनमुक्त स्वतन्त्रता होनी चाहिए। डॉ० लोहिया का मत है कि झूठ और सत्य पर बिना विचार किए वाणी की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए, क्योंकि सत्य-झूठ का विनिश्चय कोई उच्चतम व्यक्ति अथवा समिति नहीं कर सकती, वह तो झूठ और सत्य के संघर्ष से और परस्पर आवागमन से निखरता है। उन्होंने स्पष्ट कहा था "मैं कहना चाहता हूँ कि झूठ बोलने का भी अधिकार है क्योंकि झूठ क्या है, सच क्या है, इसका फैसला अगर कोई कार्य-कारिणी या सरकार करने बैठ जाएगी तब तो फिर वाणी की स्वतन्त्रता बिल्कुल खत्म हो जाएगी।[1]

डा० लोहिया के स्वतन्त्रता सम्बन्धी विचारों की तुलना जान स्टुअर्ट मिल से की जा सकती है। मिल ने अक्रिया प्रतिक्रिया तक को वाणी-स्वतन्त्रता प्रदान की है। उसका भी डा० लोहिया के समान मत है कि व्यक्ति का वाणी की अबाध स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। उसका तर्क था कि व्यक्ति केवल तीन ही प्रकार की बात कह सकता है-सत्य, अर्धसत्य और झूठ। उसके मतानुसार व्यक्ति के सत्य और अर्धसत्य बोलने पर किसी को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए क्योंकि उसमें क्रमशः सत्य और अर्धसत्य का ज्ञान होता है। इसी प्रकार यदि कोई झूठ बोलता है तो उसे बोलने देना चाहिए, क्योंकि उसके झूठ पर चली बहस से सत्य का ज्ञान होगा। मिल और डा० लोहिया ने वाणी स्वतन्त्रता को दबाना एक जघन्य अपराध माना। जान स्टुअर्ट मिल ने तो वाणी स्वातन्त्र्य के हनन को मानवता विनाशक और आगे आने वाली पीढ़ी तक को लूटना बतलाया। मिल ने अपने ग्रन्थ On liberty में एक जगह लिखा है "The peculiar evil of silencing the expression of an opinion is that it is robbing the human race posterity as well as the existing generation."

* * * * *

1—डॉ० लोहिया समाजवादी आन्दोलन का इतिहास पृष्ठ 139-140

डा० लोहिया के दर्शन में वाणी स्वतन्त्रता और कर्म नियंत्रण अपृथक रूप से साथ-साथ चलते हैं। उनके मतनुसार यदि दल का विधान सम्मत निर्णय किसी सदस्य को पसन्द नही है तो वाणी के द्वारा उस निर्णय का विरोध करने के लिए वह व्यक्ति स्वतन्त्र है किन्तु कर्म में उसका वास्तविक पालन करना उसे अनिवार्य है।[1] कर्म नियंत्रण के डॉ० लोहिया ने दो प्रकार बतलाये हैं —एक तो सिद्धान्त और विधान वर्जित कामो को न करें, और दूसरा सम्मेलन विधान द्वारा आदेशित कामो को करें।[2] उनके द्वारा बताए गये दोनों कर्म नियन्त्रणों मे एक नकारात्मक है और दूसरा सकारात्मक। उनका मत है कि अब तक भारत के सभी राजनैतिक दलो में वाणी परतन्त्रता और कर्म स्वच्छन्दता रही है। बडी समितियां अथवा बडे नेताओ के निर्णयो के विरुद्ध व्यक्ति मन से विरोध चाहते हुए भी नही बोल पाते किन्तु उनके कर्म निर्णयों के ठीक विपरीत होते हैं और ये दोनो ही तथ्य अनुचित हैं। इसके विपरीत जनतन्त्र मे राज्य अथवा राजनीतिक दलो दोनो के सन्दर्भ मे वाणी-स्वतन्त्रता और कर्म नियंत्रण होना चाहिए। डॉ० साहब अक्सर निम्नलिखित मनोरंजक श्लोक अपने भाषणो मे दुहराया करते थे —

वाक् स्वायतत्र्यम् कर्म नियंत्रणम् इति जनतांत्रिक अनुशासनम्।
विपरीतम् कर्म स्वातंत्र्यम् वाक् नियंत्रणम् भारते प्रचलित पथ'॥[3]

डॉ० लोहिया ने स्पष्ट किया कि 'बुद्धं शरणम् गच्छामि, संघं शरणम् गच्छामि और वादं में धर्मं शरणम् गच्छामि' का क्रम त्रुटिपूर्ण है। उन्होंने उपर्युक्त सूत्र के क्रम को पूर्णरूपेण परिवर्तित कर दिया और कहा कि व्यक्तियों को सर्वप्रथम धर्म द्वितीय संघ और अन्त मे बुद्ध की शरण मे जाना चाहिए।[4] उन्होंने धर्म को सिद्धान्त, संघ को सगठन और बुद्ध को नेता कहा है। उनका कहना था कि जिस प्रकार सगठन के लिए सिद्धान्त आवश्यक है उसी प्रकार सिद्धान्त के लिए सगठन आवश्यक है। उनके मत मे भारत मे अभी तक सगठन और सिद्धान्त दोनो अपने मार्ग से विचलित रहे है। अभी तक ऐसे ही संघ बने कि जिन्होंने धर्म को थोडा बहुत निष्प्राण किया और ऐसा ही धर्म निकाला कि जिसने अपने सगठन की समीक्षा नही की। समाजवादियो के समक्ष

* * * * *

1—डॉ लोहिया समाजवादी आन्दोलन का इतिहास पृष्ठ 141
2—डॉ लोहिया समाजवादी चिन्तन पृष्ठ 100
3—डॉ लोहिया समाजवादी चिन्तन पृष्ठ 100
4 —[illegible] लोहिया सिद्धान्त और कर्म पृष्ठ 327

धम और सगठन के समन्वय पर बल देते हुए उन्होने कहा था कि 'धम और सघ यान सिद्धान्तो और सगठन की उस परस्पर नीति और माग को आप ढूढ रहे हैं, जिससे ऐसी राजनीति मे एक नयी क्रांति पदा हो।'[1]

डॉ० लोहिया ने वाणी-स्वतन्त्रता और कम नियन्त्रण का सिद्धान्त देकर मानवता की वास्तविक सेवा की। आज तक के राजनतिक इतिहास में यह एक सतुलित और अनूठा सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त मे वैयक्तिक स्वतन्त्रता और सामाजिक हित का सुन्दर समन्वय है। उन्होने वाणी-स्वतन्त्रता में, प्रेस की स्वतन्त्रता, भाषण की स्वतन्त्रता निजी भाषा की स्वतन्त्रता आदि क्रियात्मक रूप से प्रदान करने का नारा बुलन्द किया, जब कि अन्य विचारक केवल ढिंढोरा तो स्वतन्त्रता का पीटते रहे किन्तु वास्तव में उन्मुक्त विचारो को दबाने की व्यवस्था दी। मार्क्सवाद ने मानव को एक पालतू तोता बना दिया और रोटी देकर उसकी मानसिक, सास्कृतिक, धार्मिक, वचारिक आदि मानवीय स्वतन्त्रताओं का साम्यवाद के पिजडे मे बन्दी बना लिया। गाधी जी ने अवश्य मानव-स्वतन्त्रता की चर्चा की और चरखे तथा कुटीर उद्योग धन्धे रोटी के लिए परिश्रम, अस्पृश्यता उन्मूलन, सत्य, अहिंसा, सर्वोदय आदि क्रियात्मक पहलू देकर मानव समाज म स्वतन्त्रता समानता लाने का प्रयास किया किन्तु शोषक को धराशायी करने की उनकी कोई ठोस योजना न थी। जब तक कि शोषक के विनाश के लिए कोई कानूनी व्यवस्था न दी जाय महात्मा गाधी के कुटीर-उद्योग और चरखा नही पनप सकते। फलत मानव की वाणी-स्वतन्त्रता क्या हर प्रकार की स्वतन्त्रता वास्तविक रूप मे शोषक के अधीन रहेगी। जब तक आर्थिक विषमता की गहरी खाइयाँ मौजूद हैं मानव-स्वतन्त्रता कल्पना मात्र है।

मानव स्वतन्त्रता के सबसे बडे समथक जान स्टुअर्टमिल न भी जिस व्यक्तिवाद अथवा यद्भाव्यम नीति का प्रतिपादन किया था, उसम स्वतन्त्रता के स्थान म मानव को परतन्त्रता मात्र ही हाथ लगी। इसके अतिरिक्त व्यक्ति के कार्यों को दो भागो स्व-सम्बन्धी और पर-सम्बन्धी मे विभाजित कर व्यक्ति की जिस काय सम्बन्धी स्वतन्त्रता का समथन मिल न किया है वह भी एक कल्पना मात्र है। क्योकि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप स व्यक्ति का प्रत्येक काय पर-सम्बन्धी होता है और पर-सम्बन्धी काय पर तो शासन के नियन्त्रणो

* * * * *

1—डॉ० लोहिया समाजवादी चिंतन पृष्ठ 111 12

और बन्धनो को स्वय मिल न मान्यता दी है। डा० लाहिया ही ऐसे विचारक थे जिन्होने धम और सघ, सिद्धान्त और सगठन, वाणी और कम व्यक्ति और समाज दल और उसके नेता के पारस्परिक सम्बन्धो का ऐसा उचित निर्धारण किया है कि जिसका अवलम्बन ले मानव सामाजिक हित को बनाये रखते हुए सच्ची स्वतन्त्रता का उपभोग कर सकता है।

वाणी स्वतन्त्रता का वस तो हर प्रकार के शासनतन्त्र मे महत्वपूर्ण स्थान होना चाहिए पर जहा तक प्रजातन्त्र और विशेष कर समाजवादी प्रजातन्त्र का सम्बन्ध है वाणी की स्वतन्त्रता प्रेस की स्वतन्त्रता तो उसके प्राण ही हैं। स्वस्थ प्रजातन्त्र की स्थिति और स्थायित्व के लिए इसकी समालोचना की छूट बहुत ही आवश्यक है। कोई भी तन्त्र शासन दल या सस्थान इस अकुश के बिना निरकुश हो जाता है और मनमानी करने लगता है, जिसका फल अन्त म बडा ही भयावह होता है। डा० लाहिया ने अपने आदश राज्य मे उसके नागरिको को अपने मौलिक अधिकारो के उपयोग का अवसर केवल कागज पर ही नही बल्कि वास्तविक जीवन मे करने की प्रस्तावना रखी है। अन्याय अत्याचार अहित चाहे व्यक्ति के प्रति हो समूह के प्रति हो या देश के प्रति हो, इनके विरुद्ध आवाज उठाने शासन का ध्यान आकर्षित करने की स्वतन्त्रता सबको ही व्यवहार मे होनी चाहिए जो खेद के साथ कहना पडता है कि वतमान समय मे किसी भी देश म चाहे जसी भी शासन-व्यवस्था वहाँ हो पूण रूप मे नही है।

व्यक्ति और समाज के परस्पर सम्बन्ध

राजनतिक विचारको की प्रवृत्ति एक ही सिक्के के दो पहलुओ का अलग अलग करके देखने की रही है। अभी तक अधिकाश राजनीतिक दशन विचारों के द्वद्व म पलते रहे है। यह केवल डा० लोहिया ही थे जिन्होने विचारों के द्वद्व को समाप्त कर सम्यक दृष्टि पर बल दिया है। पदाथ और आत्मा सगुण और निगुण, धम और राजनीति व्यक्ति और समाज के बीच द्वद्व को समाप्त कर जिस समदृष्टि से समाज को देखने की पहल डॉ० लाहिया के दशन म हुई केवल वही सन्तुलित दृष्टि पूणता की सृष्टि करने मे सक्षम है। इस तथ्य के सम्बन्ध म डॉ० लोहिया का कथन है कि सभवत अल्प मात्र कसौटियो पर अपने अटल विश्वास के कारण ही आधुनिक ससार के भयावह आधार की द्वि विधाओं और विरोधो को जन्म दिया है, जसे विषय और प्रवृत्ति व्यक्ति

और समाज, रोटी और संस्कृति आदि आदि। ऐसे जोड़ो मे अन्तर्निहित विरोधाभास एवं नकली और अस्वाभाविक विरोधाभास है।'[1]

चिन्तन के इस वैज्ञानिक आधार पर ही डॉ० लोहिया ने समाज के और व्यक्ति के सम्बन्ध पर दृष्टि डाली है। उन्होंने स्पष्ट किया कि व्यक्ति वातावरण से जन्मा है किन्तु वातावरण भी व्यक्ति से जन्मा है और जिस प्रकार का व्यक्ति का विकास समाज द्वारा होता है उसी प्रकार समाज का भी विकास व्यक्ति द्वारा होता है। जिस प्रकार क्षण भूतकाल की कड़ी और भविष्य का आविष्कार है, उसी प्रकार व्यक्ति वातावरण की उत्पत्ति है, किन्तु साथ ही साथ वह वातावरण परिवर्तन का एक क्रांतिमय साधन भी है। मानव साध्य और साधन दोनों है। साध्य की दृष्टि से वह असीम प्रेम का विकास करता है, तो साधन की दृष्टि से अन्याय के विरोध मे वह क्रांतिकारी क्रोध प्रकट करता है। डॉ० लोहिया के शब्दो मे, "The individual is both an end and a means, as an end he is the unfolder of love un to all, as a means, he is the tool of revolutionary anger against tyranny,[2]

———

1—डॉ० लोहिया इतिहास-चक्र पृष्ठ 88
2—Dr Lohia Marx Gandhi and Socialism page 375

अध्याय ६

भाषा और डॉ० लोहिया का समाजवाद

समाजवाद का उद्देश्य मानव का सर्वाङ्गीण विकास है जिसकी पूर्णता के लिए सास्कृतिक और मानसिक विकास अत्यन्त आवश्यक है। मानव का मानसिक और सास्कृतिक ढग से विकसित करने के लिए भाषा का सर्वाधिक महत्व है। भाषा ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति व्यक्ति तक पहुँचता है, ज्ञान का आदान प्रदान होता है और अन्तर्निहित शक्तियो का विकास होता है। मातृभाषा और सवजात भाषा के सवत्र प्रयोग से ही व्यक्ति का उत्थान होता है और व्यक्ति के उत्थान से राष्ट्र का उत्थान होता है। अपने दुख-सुख और हृदय के उद्गार मातृ भाषा मे ही अच्छी तरह से व्यक्त होते है और मातृ भाषा ही व्यक्ति को माँ की तरह पाल पोष कर आदश मानव बनाने म योग देती है। दुर्भाग्य का विषय है कि भारतवष मे जनता की भाषा म काम काज न होकर एक विदेशी और चन्द लोगो की भाषा अग्रेजी म होता है। अग्रेजी के इस अनाधिकार प्रवेश के परिणामस्वरूप साधारण व्यक्ति शासन विधान ज्ञान आदि के क्षेत्र मे वचित रहने के कारण निभय और क्रियाशील जीवन व्यतीत नही कर पाता न ही अग्रेजी से विज्ञ कार्य-कर्त्ताओ से अपना पन अनुभव कर सकने मे समर्थ है। ऐसी स्थिति म शासक और शासित एक दूसरे के लिए अपरिचित बने रहते हैं और साथ ही देशवासियो के प्रति आत्मीय सम्बन्ध का बढते हैं। अत यह एक वास्तविकता है कि अग्रेजी के हटाए बिना जनतान्त्रिक समाजवादी सस्थाए भारत म उत्पन्न होना असम्भव है। डॉ० लोहिया न उचित ही कहा है 'अग्रेजी का हटाए बिना समाजवाद, जनतत्र और ईमानदारी के पहले कदम भी असम्भव हैं। ४० करोड हिन्दुस्तानियों के लिए तीस लाख लोगो की अग्रेजी एक गुप्त विद्या है जैसे टोना टोटका या भूत भाडने के मत्र इत्यादि। गुप्त विद्याओ से किसी भी देश का नाश हुआ करता है।[1] यह विचित सतोष का विषय है कि अब इस ओर कुछ परिवतन हो रहा है।

* * * * *

[1] डॉ लोहिया भाषा पृष्ठ 7

डॉ० लोहिया का मत है कि माध्यम के रूप में अंग्रेजी के प्रयोग से र्थिक विकास अवरुद्ध होता है और शिक्षा के क्षेत्र में शोध एवं ज्ञानार्जन हुत कम होता है। प्रशासन की अक्षमता, विषमता और भ्रष्टाचार में भी ग्रेजी का बहुत कुछ हाथ है।[1] मातृ भाषा को त्याग कर विदेशी भाषा-ग्रेंजी का सत्कार राष्ट्रीय स्वाभिमान के विरुद्ध है। जनताश्रित भाषा से ष्ट्रीय सुरक्षा भी जुड़ी हुई है। सेना के प्रत्येक बड़े और छोटे पदाधिकारी ी भाषा एक ही होनी चाहिए। सैनिकों और सामान्य जनता को उसकी ाषा देकर ही राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए सक्षम और स्वाभिमानी बनाया जा कता है।[2] डॉ० लोहिया ने स्पष्ट कहा है 'हिन्दी, और अगर किसी की ातृ भाषा भिन्न हो तो उसका, इस्तेमाल किए बिना हिन्दुस्तान के लोगों में भी प्रतिष्ठा, व्यक्तित्व और आत्म-सम्मान के गुण नहीं आ सकते।'[3] परन्तु र्भाग्य यह है कि अपने देश में विदेशी भाषा प्रगति की और अपनी भाषाएँ तिक्रियावाद की प्रतीक समझी जाती हैं। अंग्रेजी के विज्ञ व्यक्ति ही उच्च दाधिकारी होते हैं और वे अपने सम्बन्धियों को नौकरियाँ दिलाकर विभिन्न ार्यालयों पर अपना अंग्रेजी प्रभुत्व जमाए रहते हैं। इन सबकी भाषा ामान्य जन की समझ के परे होती है। कानून और संविधान अंग्रेजी में होने े कारण जनता के लिए निष्प्रयोजनीय रहते हैं। न्याय और राजनैतिक ेतना उनके लिए विदेशी हो जाती है। मजदूरों की तरफ से उनके पेट के वाल ऐसी भाषा में लिखे जाते हैं जिसे वे खुद नहीं समझते। देशी भाषा का योग नहीं होता है। फलस्वरूप मजदूरों के अन्दर से नेता नहीं निकल सकते। जड़ ही कट गई। जमीन ही नहीं, जिस पर खड़े होकर मजदूर खुद नेता बनें।[4]

ऐसी विषम स्थिति में निश्चित ही अंग्रेजी दासता की प्रतीक है। सांस्कृतिक एवं मानसिक विकास की प्रतीक मातृ भाषा की अनुपस्थिति में आर्थिक समृद्धि अर्थहीन ही नहीं, असम्भव भी होती है। क्योंकि सांस्कृतिक और आर्थिक समृद्धि संस्कृति और रोटी अथवा मन और पेट एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व सम्भव नहीं। डॉ० लोहिया

* * * * *

1—डॉ० लोहिया देश विदेश नीति कुछ पहलू पृष्ठ 114
2—डॉ० लोहिया भारत चीन और उत्तरी सीमाएँ पृष्ठ 357
3—डॉ० लोहिया समाजवादी पोथी 2 133 सवालों के कुछ उत्तर पृष्ठ 44
4—डॉ० लोहिया भाषा पृष्ठ 29

का मत है "दिमाग और पेट अलग-अलग चीजें नहीं हैं, एक ही चीज के दो हिस्से हैं। एक के बिना दूसरे का सन्तोष होना मुश्किल है।'[1] अंग्रेजी देश के दिमाग और पेट दोनों के लिए हानिप्रद है। अंग्रेजी केवल विदेशी भाषा ही नहीं अपितु भारतीय प्रसंग में यह एक सामन्ती भाषा है जिसकी प्रधानता में भारतीय जनतन्त्र कभी भी फल फूल नहीं सकता।

सामन्ती भाषा और लोक भाषा —डॉ० लोहिया के मतानुसार भारत देश के सन्दर्भ में सामन्ती भाषा केवल अंग्रेजी में ही प्रतिबिम्बित नहीं, उसकी परम्परा अति प्राचीन है। भारत के १५०० वर्ष पूर्व के इतिहास अवलोकन से ज्ञात होता है कि यहाँ अनेक सामन्ती भाषाएँ और लोक भाषाएँ बनती-बिगड़ती रही तथा अपने अपने अस्तित्व की प्रतिष्ठा के परिणामस्वरूप एक दूसरे से संघर्ष करती रही। भाषा के साथ एक ओर सामन्ती भूषा सामन्ती भोजन और सामन्ती भवन रहा है तो दूसरी ओर लोक भूषा लोक भोजन *और लोक भवन रहा है। डेढ़ हजार वर्ष पहिले संस्कृत सामन्ती भाषा थी* तथा प्राकृत अपभ्रंश और पालि लोक भाषाएँ। ८०० या ७०० वर्ष पूर्व अरबी सामन्ती भाषा थी तथा २०० वर्ष पूर्व फारसी सामन्ती भाषा थी और हिन्दी उर्दू तमिल, बंगाली लोक भाषाएँ थी। अब अंग्रेजी सामन्ती भाषा है और हिन्दी हिन्दुस्तानी, तमिल तेलगू मराठी आदि लोक भाषाएँ हैं। डॉ० लोहिया की संस्कृत के प्रति अगाध आस्था थी। वे इस भाषा को देशी और अधिकांश भाषाओं की जननी स्वीकार करते थे तथापि अंग्रेजी समाप्त करके जो व्यक्ति हिन्दी और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के स्थान पर संस्कृत लाना चाहते थे उन्हें वे सामन्ती समझते थे। क्योंकि ४० करोड़ व्यक्तियों की भाषा हिन्दी की तुलना में संस्कृत तो पाँच लाख लोगों की ही भाषा है।[2] संस्कृत से अंग्रेजी अधिक हानिकारक है क्योंकि यह सामन्ती होने के साथ साथ विदेशी *भाषा भी है। डॉ० लोहिया की मान्यता थी कि अंग्रेजी विश्व भाषा नहीं है।* संसार की तीन अरब से अधिक जन संख्या में तीस या पैंतीस करोड़ व्यक्ति ही इस भाषा को सामान्य रूप में जानते हैं। संस्कृत पालि अरबी, यूनानी भाषाएँ भी अपने समय में अंग्रेजी के समान उन्नत और विस्तृत थी किन्तु जिस प्रकार ये भाषाएँ विश्व भाषाएँ बन सकी उसी प्रकार अंग्रेजी भी विश्व भाषा न बन सकेगी।

* * * * *

1—डॉ लोहिया भाषा पृष्ठ 18
2—डॉ० लोहिया पाकिस्तान में पलटनी शासन पृ० 20

डॉ० लोहिया को भारत में अंग्रेजी की प्रतिष्ठा देखकर अत्यंत आश्चर्य दुख होता था। उनका कहना था कि विश्व में कोई भी सभ्य अथवा देश ऐसा नहीं जिसकी व्यवस्थापिकाओं न्यायालयों प्रयोगशालाओं, रेलवे और तार आदि सभी विभागों में विदेशी और सामंती भाषा जी का प्रयोग होता हो और जिससे ९९ प्रतिशत व्यक्ति अनभिज्ञ हों। त की तरह सार्वजनिक कार्यों में यदि अंग्रेजी को किसी देश ने अपनाया है तो केवल उस स्थिति में जबकि उसकी स्वयं की भाषाएँ प्राय लुप्त हो हो।[1] डॉ० लोहिया का मत है कि अंग्रेजी भाषा के द्वारा नहीं बल्कि ता विशेष रूप से निम्न मध्यम वर्ग और किसानों की लम्बी लड़ाई के ही भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। इन आजादी के संघर्षों ने राष्ट्रीय या में हिन्दी का तथा प्रांतीय विषयों में अपनी-अपनी प्रांतीय भाषाओं प्रयोग किया। भारतीय जनता में स्वतंत्रता की भावना और उसके लिए दोलनों का सूत्रपात केवल महात्मा गांधी ने ही नहीं अपितु क्षेत्रीय मातृ-ाओं और हिन्दी ने किया।[2]

डॉ० लोहिया की मान्यता है कि अंग्रेजियत और सामंती प्रभाव के कारण न अंग्रेजी के साथ धन प्रतिष्ठा, सत्ता और विलासिता बँधी हुई है। यह स्थिति रतीय अपार जन-समूह के लिए एक श्राप से अधिक कुछ नहीं है। भारत जी भाषा के कारण गणित इंजीनियरिंग विज्ञान नक्षत्र ज्ञान आदि को मित कर रहा है, जबकि चीन जापान और रूस आदि देश अपनी निजी षाओं के द्वारा प्रत्येक क्षेत्र में ज्ञान का प्रसार कर रहे हैं। भाषा भेद के रण देश की राजनीति वर्ग राजनीति का गंदा रूप धारण कर लेती है, सको समाप्त करना समाजवादियों का प्रथम उद्देश्य है। डॉ० लोहिया ग्रेजी को समाप्त करना चाहते थे किन्तु उसके स्थान पर हिन्दी ही प्रति-ष्ठित हो ऐसा उनका आग्रह न था। वे बहुधा कहा करते थे कि भाषा की समस्या को 'हिन्दी बनाम अंग्रेजी' के संदर्भ में नहीं अपितु "देशी भाषाएँ नाम अंग्रेजी' के संदर्भ में देखना चाहिए।

भारतीय भाषाएँ बनाम अंग्रेजी —डॉ० लोहिया सोचा करते थे कि समस्या हिन्दी की प्रतिष्ठा की नहीं अंग्रेजी-समाप्ति की है। अंग्रेजी का द्वन्द्व केवल हिन्दी भाषा से ही नहीं, अपितु बंगाली, मराठी तेलगू उर्दू आदि सभी देशी

* * * *

1—डॉ लोहिया भाषा पृष्ठ 147
2—डॉ लोहिया भाषा पृष्ठ 159

भाषाओं से है। अंग्रेजी के कारण केवल हिन्दी का ही नहीं, अपितु उपयुक्त सभी देशी भाषाओं का विकास अवरुद्ध होता है। हिन्दी स्वयं अंग्रेजी का *स्थान नहीं चाहती और न ही वह अन्य देशी भाषाओं का विरोध करती है।* इसलिए दक्षिण भारत के कुछ स्वार्थी तत्वों की अंग्रेजी के प्रति आस्था और हिन्दी के प्रति कटुता उचित नहीं।[1] महान मराठा महान बंगाली हिन्दी को मातृ भाषा की तरह अपनाता है। किन्तु क्षुद्र तट-देशी, क्षुद्र बंगाली क्षुद्र मराठा हिन्दी को ठुकराता है। शिवाजी के दरबार में हिन्दी का प्रयोग होता था। नेता जी बोस तक ने हिन्दी का प्रयोग किया। जायसी और गांधी का हिन्दी प्रेम सर्वविदित है ही।[2] इसके अतिरिक्त हिन्दी और अन्य हिन्दुस्तानी *भाषाओं में कोई खास अन्तर नहीं है। डॉ० लोहिया ने यह सिद्ध किया है कि तमिल सहित सभी भारतीय भाषाओं की लिपियाँ नागरी लिपि का ही परिवर्तित रूप हैं।*[3] और ये सभी हिन्दुस्तानी भाषाएँ अंग्रेजी की तुलना में अधिक समृद्ध हैं।

डॉ० लोहिया का मत था कि हिन्दी तेलगू उर्दू, मराठी, गुजराती बंगाली आदि देशी भाषाओं को गरीब और असमृद्ध भाषा कहना उचित नहीं। अंग्रेजी में लगभग दो या ढाई लाख शब्द है जब कि हिन्दुस्तान की *भाषाओं में लगभग छः लाख शब्द हैं। यद्यपि ये छः लाख शब्द अपेक्षाकृत* मँजे हुए नहीं है तथापि डॉ० लोहिया की दृष्टि में, इन शब्दों का दैनिक प्रयोग प्रत्येक कार्य में तुरन्त आरम्भ होना चाहिए क्योंकि शब्द बर्तनों की तरह प्रयोग के द्वारा ही चमकीले और आकर्षक बनते हैं अन्यथा उनमें जंग लग जाती है। "न्यायालयों में विधि और बहस के मँजने के साथ भाषा और उसके शब्द भी मँजते है। आरोग्य शास्त्रों में औषधि के घुटने पिसने के साथ शब्द *घुटते पिसते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक क्षेत्र में भाषा के प्रयोग से ही भाषा* सुधरती और विकसित होती है। डॉ० लोहिया ने कहा है 'शुद्ध तक में भी किसी की भाषा में शब्द उसका व्यवहार उसके मतलब तभी मँजा करते है जब वे सब अपने-अपने अलग जिन्दगी के दायरों में इस्तेमाल होते रहते हैं। इस्तेमाल हुआ नहीं और शब्द माँज दिया कहीं किसी और जगह पर बैठकर यह बिल्कुल नामुमकिन बात है।[4] वास्तव में यह तो इतिहास को उलटा करना

* * * * *

1—डॉ लोहिया भाषा पृष्ठ 18
2—डॉ लोहिया भाषा (पृष्ठ भूमिका 8) page VIII
3—*Dr Lohia Interval During Politics Page 12*
4—डॉ० लोहिया भाषा पृष्ठ 51

है। इसलिए उनका मत था कि यदि हिन्दुस्तानी भाषाओं का प्रत्येक क्षेत्र मे अविलम्ब प्रयोग प्रारम्भ नही किया जाता, तो अग्रेजी अधिक समृद्ध तथा विकसित होगी और हिन्दुस्तानी भाषाएँ गत मे गिरती चली जायेगी।

यह अपने मे एक प्रामाणिक तथ्य है कि सभी प्रभावोत्पादक साहित्य और दर्शन मातृभाषाओ मे ही जन्मे हैं। भारतीय व्यक्ति अग्रेजी के साथ नही अपितु तेलगू, हिन्दी, उर्दू, बगाली, मराठी आदि के साथ अधिक प्रेम से खेल सकता है, उनमे नए नए ढर्रे, नए नए ढाँचे बना सकता है, वह उनमे जीवन का सचार कर सकता है और रग ला सकता है। डा० लोहिया ने लिखा है, "बच्चा अपनी माँ के साथ जितनी अच्छी तरह से खेल सकता है दूसरे की माँ के साथ उतनी अच्छी तरह से नही खेल सकता है।"[1] भारत की प्रादेशिक भाषाओ के महत्व को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि हिन्दुस्तानी भाषाओ मे सुन्दर और आकर्षक ढग से व्यक्त किए गए भाव अग्रेजी अथवा अन्य विदेशी भाषाओ मे उतने स्वाभाविक और मर्मस्पर्शी ढग से कभी भी व्यक्त नही किए जा सकते। "गद्दी पर बैठने के पहले त्यागी और गद्दी पर बैठने के बाद भोगी तथा "राधा की छटा और द्रौपदी की घटा कृष्ण के ऊपर हमेशा छायी रहती थी' जैसे दो वाक्य उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत कर डा० लोहिया ने ललकारा कि "त्यागी और भोगी' तथा "राधा की छटा और द्रौपदी की घटा' के लिए इसी तरह के एक गर्व शब्द क्या उतनी ही आकर्षक ढग से अग्रेजी भाषा मे प्रयोग किए जा सकते हैं ?[2]

डॉ० लोहिया इस बात को अत्यन्त हेय समझते थे कि हिन्दुस्तानी भाषा मे लिखी जाने वाली पुस्तको मे आवश्यक रूप से उद्धरण अग्रेजी भाषा मे दिए जायें। उनके मतानुसार लेनिन की किसी रूसी भाषा मे लिखी गई पुस्तक का अनुवादित रूप यदि अग्रेजी भाषा मे भी प्राप्त हो तो अग्रेजी भाषा की अपेक्षा रूसी भाषा मे उद्धरण देना अधिक श्रेयस्कर है। अग्रेजी से अनभिज्ञ दास्तोवस्की के किसी रूसी उपन्यास का अग्रेजी मे उद्धरण उसी प्रकार अनुचित है जिस प्रकार कि अग्रेजी से अनभिज्ञ कार्ल्स मार्क्स की जर्मन रचना का उद्धरण अग्रेजी अनुवादित उसकी पुस्तक से दिया जाना। इस प्रकार की वृत्ति को डॉ० लोहिया ने "असभ्यता नीरसता और बेवकूफी' कहा और रूसी जर्मन अथवा अन्य भाषाओ का सीधे-सीधे हिन्दुस्तानी भाषा मे

* * * * *

1—डा० लोहिया भाषण हैदराबाद 19 जुलाई सन् 1959 ई०
2—लोहिया-भाषण हैदराबाद 19 जुलाई सन 1959 ई०

अनुवाद करने को प्रेरित किया।[1] उनकी दृष्टि मे यह कहना बहुत गलत है कि अंग्रेजी भाषा के अभाव म बहुमुखी ज्ञान असम्भव है। उन्होने अपने प्राध्यापक वर्नर जोम्बार्ट नामक महान् जर्मन अर्थशास्त्री का उदाहरण रखा जो कि अंग्रेजी का अ ब स द भी नही जानते थे। डॉ० लोहिया ने भारत के समक्ष चीन रूस और जापान आदि देशो का उदाहरण रखा, जिन्होने अपने अपने देशो के विद्वानो को विदेशो म ज्ञानार्जन के लिए भेजा और फिर उस ज्ञान को भाषाविदो द्वारा भाषा कठिनाइयो के बावजूद भी अपनी-अपनी अविकसित मातृ भाषाओ मे परिवर्तित करवाया और अपना विकास किया। परिणाम भी विश्व के समक्ष है कि ये अविकसित राष्ट्र आज शीघ्र विकसित होने वाले राष्ट्रो म अग्रगण्य है।

वर्तमान भारत मे अंग्रेजी रानी का साम्राज्य डॉ० लोहिया को असह्य था। आन्ध्र प्रदेश मे मील के पत्थरो म अंग्रेजी और तेलगू भाषा को साथ देखकर उन्हे आश्चर्य और दुख का अनुभव होता था। वे इन पत्थरो को हिन्दी और तेलगू अथवा केवल तेलगू मे ही चाहते थे। इसी प्रकार 'मनी आडर फार्म' पर हिन्दी और अंग्रेजी का एक साथ स्थान उनको पसन्द न था, क्योकि इससे हिन्दी और अन्य देशी भाषाओं के बीच मन मुटाव उत्पन्न होता है और अंग्रेजी को अनुचित प्रश्रय मिलता है। वे चाहते थे कि अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी और इच्छानुसार एक देशी भाषा का प्रयोग किया जाए। देशी भाषाओ को लडाने वाली नीति से बचाने के लिए उन्होने भारतीय जनता का आह्वान किया। डॉ० लोहिया की दृष्टि म तेलगू मराठी बगाली, गुजराती हिन्दी आदि के बीच तुलनात्मक सुन्दरता और आकर्षण के विनिश्चय की बहस विनाशकारी है। उनका कहना था कि यदि हिन्दी भाषी वास्तव म बडे हैं तो उन्हे हिन्दी की छोटी बहनें—तेलगू बगला मराठी आदि की सुन्दरता स्वीकार करने म हिचक नही होनी चाहिए जिससे कि देशी भाषाएँ बनाम अंग्रेजी विषय को अंग्रेजी प्रेमी 'हिन्दी भाषा बनाम अंग्रेजी' का रूप न दे सकें।

डॉ० लोहिया का मत था कि अंग्रेजी की समाप्ति अवधि और शर्तें बाँधने से नही हो सकती। अंग्रेजी शनै शनै नही अपितु तत्काल एक झटके मे ही इस देश के सार्वजनिक जीवन से बहिष्कृत की जा सकती है। अंग्रेजी भाषा का बहिष्कार देशी भाषाओ की समृद्धता तक रोकना अस्वाभाविक

* * * * *

1—लोहिया-भाषण हैदराबाद 19 जुलाई सन् 1959 ई०

असम्भव और कुतर्कपूर्ण है क्योंकि समृद्धि सापेक्ष होती है। जब तक हिन्दुस्तानी भाषाएँ समृद्ध होंगी तब तक अंग्रेजी और समृद्ध हो जाएगी। परिणामस्वरूप हिन्दुस्तानी भाषाओं को असमृद्धता से मुक्ति कदापि नहीं मिलेगी और अंग्रेजी का बहिर्गमन इस आधार पर असम्भव होगा। अंग्रेजी को हटाए जाने के लिए समय की सीमा भी प्रभावी न होगी। संविधान में सन् १९६५ ई० तक अंग्रेजी हटाए जाने की सीमा डा० लोहिया की भविष्यवाणी के अनुसार गलत निकली। जन जागरण से ही अंग्रेजी जाएगी जैसे कि अंग्रेज गए थे।

डॉ० लोहिया की भाषा-नीति —डा० लोहिया अंग्रेजी-समाप्ति के समर्थक थे। उन्होंने सामान्य और विशेष व्यक्तियों के बालकों को अंग्रेजी पढ़ाये जाने का निषेध किया था। वे चाहते थे कि सभी प्राथमिक विद्यालयों से अँग्रेजी अनिवार्यतः हटा दी जाय और यह प्राथमिक शिक्षा पूर्णतः नगरपालिकाओं और जिला बोर्डों के अधीन कर दी जाय। जिससे विदेशी ढंग के अपव्ययी विद्यालय बन्द हों।[1] इस विचार के पीछे डा० लोहिया का तर्क था कि यदि अँग्रेजी बड़े लोगों के बालकों के विद्यालयों में चलती रहती है तो साधारण व्यक्तियों के बच्चे बड़े लोगों के बच्चों के समक्ष प्रतियोगिता में नहीं ठहर पाते और "जनता के दिमाग पर हथौड़े की तरह असर पड़ता है कि बड़े लोग तो अपने बच्चों को अँग्रेजी पढ़ा लेते हैं और हमारे बच्चे नहीं पढ़ पाते हैं।"[2] डॉ० लोहिया ने शासन की 'अँग्रेजी हटाओ' नीति की कटु आलोचना की। उन्होंने कहा कि शासन एक ओर तो हिन्दी के सार्वजनिक प्रयोग का प्रचार करता है और दूसरी ओर सिक्के, बहीखाते, तार आदि कार्य अँग्रेजी में करता है। इस हिन्दी प्रचार-नीति के द्वारा अन्य देशी भाषाओं में हिन्दी के प्रति कटुता का भाव उत्पन्न होता है और अँग्रेजी प्रयोग के कारण हिन्दी तथा अन्य देशी भाषाओं का विकास अवरुद्ध होता है।[3]

उपर्युक्त कारणों से डॉ० लोहिया ने विद्यार्थियों और विशेष रूप से असफल विद्यार्थियों उनके पालकों और भारतीय जनता को सभाओं जुलूसों तथा सविनय अवज्ञा द्वारा अँग्रेजी का बहिष्कार करने के लिए आह्वान किया।[4]

* * * * *

1—डॉ० लोहिया समाजवादी चिन्तन पृष्ठ 96
2—डॉ लोहिया समलक्ष्य समबोध। पृष्ठ 20
3—डॉ लोहिया धर्म पर एक दृष्टि पृष्ठ 17
4—डॉ०लोहिया खोज वर्णमाला विषमता एकता पृष्ठ 17

इस हेतु उन्होने स्वयसेवकों की समितियों के गठन पर बल दिया। उनके मत मे इन समितियो का काय स्थान स्थान पर अँग्रेजी के नाम पटो को मिटाकर लोक भाषा के प्रचलन का एक मानसिक वातावरण निर्मित करना है। उनका कहना था कि अग्रेजी की लिखावट का जवाब उसको मिटावट से देना चाहिए। अग्रेजी हटाव और देशी भाषाओं की प्रतिष्ठा के लिए अग्रेजी दैनिक पत्रों का पढ़ना बन्द होना चाहिए क्योंकि ये अँग्रेजी पत्र हिन्दी पत्रों को ग्रसित किए हुए है। इस ध्वसात्मक पहलू के अतिरिक्त अपनी भाषाओ के उत्थान के लिए रचनात्मक काय कर भाषा के सकुचित क्षेत्र को व्यापक बनाना चाहिए, क्योंकि अपनी भाषाओ की कमजोरियाँ भी अग्रेजी हटाने के माग मे बाधक हैं।

भारतीय भाषाओ की सकुचित मनोवृत्ति पर भी डा० लोहिया को गहरा दुख था। उनका मत था कि हिन्दी तेलगु मराठी बँगला आदि सभी भारतीय भाषाओं के अतिवाद ने अग्रेजी को बढ़ावा दिया है। किसी व्यक्ति की वाणी और व्यक्तित्व की प्रशसा के लिए अमृत वाणी और अवतारी पुरुष जैसे विशेषण भारतीय भाषाओ मे शीघ्र लगा दिए जाते हैं। इन भाषाओ मे हर वाणी अमृत वाणी है हर सन्देश अमर सन्देश है हर पुरुष महापुरुष है। किसी यथाथ स्थिति को अतिशयोक्ति मे व्यक्त करने की पण्डिताऊ और परम्परागत चारण शैली अब भी भारतीय भाषाओ म प्रचलित है। परिणामत वास्तविकता के स्थान पर हास्य का प्रादुर्भाव होता है। इस प्रकार की शैली निन्दा के लिए भी इन भाषाओ म प्रयुक्त होती है। ऐसी शैली से तक विश्लेषण और सत्य दूर भागते हैं। भाषाओ मे इस कारण अब सन्तुलन नही रह गया है। डा० लोहिया के मत मे सभी भारतीय भाषाओ को झूठी पारम्परिकता ने घेर रखा है।

उपयुक्त बुराइयो के कारण एक ओर तो भारतीय भाषाओ का विकास अवरुद्ध है और दूसरी ओर इनके सावजनिक जीवन के प्रयोग से लोगो को जनेऊ चोटीधारी पिछड़ी और पुरानी आडम्बरयुक्त सस्कृति के आगमन का भय रहता है। परिणाम यह होता है कि लोग अग्रेजी से ही चिपके रहना चाहते हैं। उक्त सदभ में डा० लोहिया ने स्पष्ट कहा था कि ' मैं अपनी तेलगू व हिन्दी और उदू म यह जो झूठी शुचिता झूठा चरित्र झूठी सफाई झूठी सच्चाई है इन सब चीजो को जगह नही देता। हिन्दी का आकार प्रकार पेट और मन तेलगू का पेट और मन इतना लम्बा-चौड़ा, बड़ा विशाल व्यापक होना चाहिए कि उसके अन्दर पतिव्रता और पत्नीव्रता और

दिलफरी और ऐय्याशी और इश्कबाजी सबको जगह रहनी चाहिए। भाषा एक माध्यम है। भाषा कोई ऐसा माध्यम नहीं है कि किसी एक ही चीज का उसका माध्यम बना कर उसे बिगाड़ डाले। उसके अन्दर से जो सच और झूठ है, सच्चे दिल से और झूठे दिल से जो चीज है, वह अपनी भाषा के माध्यम से अलग निकल पड़े।[1]

डॉ० लोहिया ने अंग्रेजी के निष्कासन हेतु उपयुक्त दोषों को निकाल फेंकने का मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने अंग्रेजी रानी के बहिर्गमन पर उसके प्रतिस्थापन के विषय में भाषा नीति के विभिन्न विकल्पों पर भी प्रकाश डाला जिनमें से एक विकल्प बहुभाषी केन्द्र था। इस विकल्प के अन्तर्गत केन्द्र के सार्वजनिक कार्यों में सभी देशी भाषाओं का प्रयोग होगा। द्वितीय विकल्प के अनुसार अहिन्दी भाषियों की सुरक्षा के साथ केन्द्र में हिन्दी भाषा का प्रयोग होगा। अहिन्दी भाषियों को हिन्दी सीखने के लिए दस वर्ष तक नौकरी की सुरक्षा रहेगी और हिन्दी भाषियों को दस वर्ष तक सेना के अतिरिक्त किसी भी प्रकार की नौकरी न मिलेगी। किन्तु अहिन्दी भाषियों को हिन्दी का अध्ययन अच्छी तरह करना होगा और हिन्दी में ही परीक्षा देनी होगी। इस सम्बन्ध में डॉ० लोहिया की धारणा थी कि 'हिन्दी इलाके वालों की छाती चौड़ी होनी चाहिए। उन्हें देश की एकता तथा हिन्दी को देश की भाषा बनाने के लिए कुछ देना भी सीखना चाहिए।'[2] तृतीय विकल्प में दो भाषी केन्द्र होगा जिसमें मध्य देश के लिए हिन्दी और तट देश के लिए अंग्रेजी की व्यवस्था होगी।[3] चतुर्थ विकल्प में हिन्दी का केन्द्र में कोई स्थान न होगा बशर्ते कि अहिन्दी भाषी क्षेत्र तलगू, बंगला आदि भाषाओं में से एक को केन्द्र की भाषा बनाने पर सहमत हों।[4] एक अन्य विकल्प के अनुसार केन्द्र की भाषा हिन्दी हो, किन्तु जनसंख्या के अनुपात से प्रत्येक राज्य का हमेशा के लिए नौकरियों की संख्या बाँध दी जाए। इस व्यवस्था को डॉ० लोहिया उसी समय चाहते थे जब कि अहिन्दी भाषी दस वर्ष की नौकरी-सुरक्षा शर्त अस्वीकार करें। यद्यपि डा० लोहिया जानते थे कि इस नीति के द्वारा जाति, क्षेत्रीयता आदि के विनाशकारी तत्व फल सकते हैं तथापि भाषा-संघर्ष की स्थिति में अंग्रेजी बहिर्गमन के लिए उन्हें यह नीति स्वीकार थी।[5]

* * * * *

1—डॉ लोहिया समलक्ष्य समबोध पृष्ठ 23
2—डॉ० लोहिया भाषा पृष्ठ 21
3—डॉ० लोहिया समलक्ष्य समबोध पृष्ठ 18
4—डॉ० लोहिया हिन्दू और मुसलमान पृष्ठ 7
5—डॉ लोहिया निजी और सार्वजनिक शत्र पृष्ठ 26-27

यद्यपि उपर्युक्त सभी विकल्प अंग्रेजी हटाने के लिए डा० लोहिया को स्वीकार थे तथापि उनकी भाषा सम्बन्धी उचित और सही नीति यह थी कि केन्द्रीय सरकार की भाषा हिन्दी हो। हिन्दी की प्रतिष्ठा के बाद ठीक दस वर्ष तक केन्द्रीय शासन की "गजटिड सेवाएं" अहिन्दी भाषियों के लिए सुरक्षित हों। केन्द्र का राज्यों से सारा व्यवहार हिन्दी में हो और अहिन्दी भाषी हिन्दी न जान लेने तक केन्द्र के साथ अपनी भाषा में व्यवहार करें। स्नातक कक्षाओं तक का अध्ययन अपनी अपनी प्रादेशिक भाषाओं में हो और स्नातकोत्तर अध्ययन हिन्दी में हो। मंडल (जिला) तक के न्यायालय अपनी-अपनी मातृ भाषा में न्यायिक कार्यवाही करने के लिए स्वतन्त्र हों किन्तु उच्च तथा सर्वोच्च न्यायालयों में न्यायिक कार्यवाही हिन्दी भाषा में हो। यद्यपि लोक सभा में हिन्दी भाषा में ही भाषण दिए जाएँ किन्तु हिन्दी से अपरिचित सदस्य अपनी मातृ भाषा में भाषण देने के लिए स्वतन्त्र हों।

डा० लोहिया का मत था कि यदि उपर्युक्त सही भाषा नीति को कोई राज्य स्वीकार नहीं करता तो उस अपनी मातृ भाषा में कार्य करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। डा० लोहिया का विश्वास था कि अपनी अपनी मातृ भाषाओं में कार्य करने की अस्थायी हठधर्मी अन्ततोगत्वा हिन्दी के प्रति प्रेम में परिवर्तित होगी। इसलिए उनकी सलाह थी कि राष्ट्रीय हित की दृष्टि से भाषा आन्दोलन का उद्देश्य 'अंग्रेजी हटाना' होना चाहिए, न कि हिन्दी प्रतिष्ठित करना।[1] उनका पूर्ण विश्वास था कि उपर्युक्त नीति के द्वारा अन्त में हिन्दी ही भारत की सार्वजनिक प्रयोग की भाषा होगी, किन्तु राष्ट्र भाषा हिन्दी का क्या स्वरूप हो इस पर भी उन्होंने प्रकाश डाला।

हिन्दी का स्वरूप—हिन्दी भाषा के मूल को स्पष्ट करते हुए डा० लोहिया ने कहा कि डेढ़ दो हजार वर्ष पूर्व दूर दक्षिण की 'इक्ष्वाकु' अथवा 'शक' राजधानियों में सर्वत्र भारतीय भाषा का प्रयोग होता था। यही स्थिति बंगाल और महाराष्ट्र में भी थी। जिस प्रकार प्रत्येक युग में संस्कृत और पालि की तरह कोई न कोई सर्वमान्य अपभ्रंश रहा, उसी प्रकार हिन्दी भी उपर्युक्त भारतीय परम्परा की भाषा है। अतः व्यापक दृष्टिकोण से हिन्दी को सर्वमान्य अपभ्रंश अथवा प्राकृत मानना चाहिए। डॉ० लोहिया के शब्दों में, 'यही उसका उद्गम है। यही उसका चरित्र है। यही उसकी तकदीर के कुछ पहलू

* * * * *

1—डॉ० लोहिया : भाषा पृष्ठ 23

और करवटें हैं।'[1] यह भाषा छावनियों में चली। दक्खिनी के रूप में दक्षिण की छावनियों में चली। आज हिन्दी के रूप के प्रश्न पर मतक्य नहीं है। कोई चाहता है सस्कृतनिष्ठ तो कोई अरबीनिष्ठ, कोई चालू तो कोई गड़बड़झाला वाली तट-दशी प्रयोग से लदी। हिन्दी की प्रतिभा यही है कि उसके इतने रूप हैं। कोई न कोई रूप अपने आप सवमान्य होता रहता है। डॉ० लोहिया का मत था कि यदि फिर से यह देश एक हुआ तो इसकी भाषा वही होगी जो डॉ० लोहिया बोला करते थे। अपभ्रंश से निकली हुई चालू भाषा ही डॉ० लोहिया की भाषा थी। हिन्दी की परिभाषा देते हुए उन्होंने कहा था, "कि वह पालि और सस्कृत की औलाद है लेकिन वह अपभ्रंश वाली जो जनता में टूट टाट गयी। अपभ्रंश में तो फारसी के भी शब्द आ जाते हैं, अरबी के भी आ जाते हैं। जो चालू भाषा है, ताकतवर भाषा है, उसमें लोग अपने ईमान और जान का एक ठोस भाषा में इस्तेमाल करते हैं। उसी से देश को बनाना है।"[2]

डॉ० लोहिया के मतानुसार हिन्दी सटीक, रगीन, पारिभाषिक, ठेठ सशक्त और रोचक होनी चाहिए। किसी भाषा में कितनी पुस्तकें हैं यह एक गौण प्रश्न है। उनका मत था कि अंग्रेजी हटाने के सदर्भ में हिन्दी-पुस्तकों के अभाव की चर्चा करना मूर्खतापूर्ण और बदमाशी है। इस अभाव को महाविद्यालयों के प्राध्यापकों का ग्रीष्मकालीन अवकाश में एक एक पुस्तक का हिन्दी अनुवाद अनिवार्य बनाकर पूरा किया जा सकता है। इन अनुवादित पुस्तकों में सटीकता और रंगीनी तथा सुनिश्चित अर्थ का अभाव रह सकता है, किन्तु अभावों की पूर्ति पारिभाषिक शब्दों और शब्द-कोश के बढ़ने से नहीं हो सकती। डा० लोहिया की दृष्टि में इन्हें "दूर करने का एक मात्र उपाय है कि भाषा रूपी रथ को सब सामान ढोने के लिए फौरन इस्तेमाल करना शुरू किया जाए और सब तरह की बुद्धियाँ सब क्षेत्रों में खिलें।"[3]

भाषा को सँवारने-सुधारने का काम जितना भाषा शास्त्री या शब्द-कोश निर्माता करते हैं उससे ज्यादा वकील राज-पुरुष, अध्यापक, लेखक, वक्ता, वैज्ञानिक इत्यादि भाषा प्रयोग द्वारा किया करते हैं। इनके प्रयोग से भाषा सुधरती है, न कि सुधर जाने के बाद ये लोग इसको प्रयोग करने बैठते हैं।

* * * * *

1—डॉ० लोहिया भाषा पृष्ठ 6 (भूमिका)
2—डॉ० लोहिया हिन्दू और मुसलमान पृष्ठ 7
3—डॉ० लोहिया भाषा पृष्ठ 7 (भूमिका)

डा० लोहिया के शब्दों मे 'डुबडुवाने और छपछपाने पर ही तरना आता है। प्रयोग के बाद ही भाषा समृद्ध होती है। विधायका, न्यायालयो विज्ञान मशीन शालाओ धधा रणक्षेत्रो इत्यादि मे जब हिन्दी डुबडुबाएगी, छपछपाएगी तभी समृद्ध बनेगी उसके पहले हरगिज नही।'[1] हिन्दी या हिन्दुस्तान की किसी भी भाषा का प्रश्न वस्तुनिष्ठ है ही नहीं। साहित्य, विश्लेषण, और वस्तु निष्ठा तक से इस प्रश्न का कोई सम्बन्ध नही। यह केवल विशुद्ध राजनीतिक सकल्प और इच्छा का प्रश्न है। यदि अंग्रजी हटाने और हिन्दी अथवा अन्य हिन्दुस्तानी भाषाए लाने की इच्छा बलवती हो जाए, तो मूक वाचाल हो जाएँ सब बोलने लगें और सब कुछ बोला जा सके।

डॉ० लोहिया का विचार था कि हिन्दी को पवित्र बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील व्यक्ति ही हिन्दी की प्रगति म बाधक है। ये व्यक्ति हिन्दी का पल्ला जनेऊ और चोटीधारियो के साथ जोड देते हैं। वे अग्रजी के घोर विरोधी थे, किन्तु उतने ही जनेऊ चोटी के भी। वे चाहते थे कि यदि नवीन विश्व के नेतृत्व हेतु हिन्दी को समर्थ बनाना है तो उसे सभी भाषाओ से सीखना, अपने को बदलने और सब ओर से अपने को धनी बनाने के लिए तयार रहना चाहिए। हिन्दी की प्रतिष्ठा के लिए हिन्दी भाषियो को अंग्रेजी छोडने के साथ-साथ पुरानी दुनिया को भी छोडना चाहिए। उनका मत था कि भाषा मिला भी सकती है और अलग भी कर सकती है। इतिहास के अलग अलग कालो म भाषा ने अलग अलग काय किये हैं। वतमान म भाषा को मिलाने का काय करना चाहिए। हिन्दी को चाहिए कि वह तेलगू तामिल, मराठी बगला आदि देशी भाषाओ को अपने म समाहित कर अपना क्षेत्र व्यापक बनाए। इस सामजस्यवादी सिद्धात का विश्लेषण करते हुए उन्होने कहा, 'मैं एक सिद्धात और जोड देना चाहूँगा कि हिन्दी तमिल और अन्य हिन्दुस्तानी भाषाएँ मिश्रण करें। जनसाधारण समय बीतने पर विदेशी शब्दो को अपनी भाषा के योग्य बना लेंगे अथवा उन्हे छोड देंगे। हिन्दी को तेलगू तमिल, मराठी बगला और अन्य भाषाओ से मिश्रण करना चाहिए।[2]

डा० लोहिया का मत था कि विचार अभिव्यक्ति हेतु यदि देशी भाषाओ का कोई शब्द न मिले तो उस अवसर पर सफाई की झझट म पडकर घटो काई अपना शब्द ढूढते रहना उचित नही। जिस भाषा का वक्ता स्वय जाता

* * * * *

1—डॉ० लोहिया भाषा पृष्ठ 10 (भूमिका)

2—डॉ० लोहिया समाजवादी चौखी 2 133 लेखको के कुछ उत्तर, पृष्ठ 45

हो और जिसको सुनने वाला थोड़ा-बहुत समझ सकता हो उस भाषा के शब्दों का प्रयोग यदाकदा वेहिचक करना चाहिए । "हाइड्रोजन" शब्द के लिए यद्यपि हिन्दी में 'उदजन बम' शब्द है तथापि "हाइड्रोजन" शब्द का प्रयोग किया जा सकता है, यदि सामान्य व्यक्ति उसे समझता है। इसी प्रकार 'आक्सीजन" शब्द का भी प्रयोग किया जा सकता है। इन विदेशी शब्दों के प्रयोग अपनी भाषा में करते रहने से शनैः शनैः ये शब्द अपनी भाषा के बन सकते हैं।

डा० लोहिया का मत था कि विदेशी भाषाओं के शब्दों को तोड़ना मरोड़ना घिसना पीटना देहाती और बपढ़े लोगों को अधिक आता है अपेक्षाकृत पढ़े लोगों के। हिन्दुस्तान की भाषाओं की ध्वनि और उनके शब्दों के स्वरूप के अनुसार देहाती और वेपढ़े लोग विदेशी भाषा के शब्दों का तोड़ मरोड़ देते हैं। डॉ० लोहिया देहातियों द्वारा प्रयुक्त "लाट फारम", 'सिगल', 'लालटेन', "मजिस्टर, 'टिकस' और 'टीशन' आदि शब्दों को शुद्ध हिन्दी शब्द समझते थे जो कि क्रमशः "प्लेटफाम', 'सिगनल' 'लनटन", मजिस्ट्रेट, 'टिकिट" और "स्टेशन' शब्दों से बनाए गए हैं। वे सवत्र रुचि पूर्वक देहातियों द्वारा बनाए गए उपयुक्त शब्दों का ही प्रयोग करते थे। वे कहा करते थे कि दूसरी भाषाओं के शब्दों को आत्मसात करने की शक्ति देकर बेपढ़े लोग अपनी भाषा के पेट को गहरा और छाती को चौड़ा करते हैं। बपढ़े लोग नयी भाषा के स्रष्टा होते हैं और पढ़े लोग मांजने वाले। काश ! सभी वग मिलकर हिन्दी का विकास करें।

उर्दू और डॉ० लोहिया —उर्दू के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए डा० लोहिया ने कहा कि उर्दू भाषा भी हिन्दुस्तान की भाषा है और इसकी वही प्रतिष्ठा होनी चाहिए जो हिन्दी की है। उर्दू भाषा की मधुरता, सादगी और गहराई की वे बहुत प्रशंसा करते थे। उनकी दृष्टि में हिन्दी और उर्दू पार्वती और सती की तरह एक हैं। किन्तु फिर भी जब तक हिन्दी और उर्दू एक नहीं हो जाती तब तक अरबी लिपि में लिखी उर्दू को सरकारी तौर पर इलाकाई जबान का स्थान मिलना चाहिए।[1] डॉ० लोहिया ने आशा व्यक्त की कि शीघ्र ही वह समय आएगा जब हिन्दी और उर्दू में कोई अंतर न रहेगा। उनकी इच्छा थी कि शीघ्र ही उर्दू की सब बड़ी पुस्तकें नागरी लिपि

* * * * *

1—डा० लोहिया भाषा पृष्ठ 6

म छप जानी चाहिए, किन्तु उर्दू के विकास के लिए उन्होने फारसी और अरबी के विकास की आवश्यकता अनुभव नही की।

समीक्षा —डा० लोहिया के भाषा सम्बन्धी विचारो से स्पष्ट होता है कि वे भाषा और समाजवाद को घनिष्ठतम रूप से सम्बन्धित समझते थे। वे ही ऐसे समाजवादी थे जिन्होने समाज को अर्थ की संकीर्णता से मुक्ति दिलाकर विशुद्ध सांस्कृतिक और मानसिक वातावरण मे विचरण करने का सुअवसर दिया। मन पेट, रोटी-संस्कृति, विषय प्रवृत्ति के अन्योन्याश्रित सम्बन्धो को सुस्पष्ट करने का श्रेय डा० लोहिया को ही है। अर्थ के क्षेत्र म होन वाले मार्क्सवादी वर्ग-संघर्ष को उन्होने भाषा के क्षेत्र मे भी देखा। उन्होने बताया कि भारत मे १५०० वर्ष से सामन्ती भाषा और लोक भाषा के बीच निरन्तर संघर्ष चला आ रहा है। आज अंग्रेजी सामन्ती भाषा और भारतीय भाषाएँ अपने शुद्ध रूप म लोक भाषाए हैं। डॉ० लोहिया का भाषा सम्बन्धी यह संघर्ष मार्क्स के स्वामी दास, सामन्त कृषक और पूजीपति श्रमिक के बीच आर्थिक संघर्ष की याद दिलाता है।

डॉ० लोहिया न दक्षिण भारत म हिन्दी के प्रति व्याप्त कटुता को यह यथार्थ स्थिति स्पष्ट करके समाप्त किया कि वर्तमान सामन्ती भाषा अंग्रेजी का द्वन्द्व केवल हिन्दी से नही, अपितु समस्त भारतीय भाषाओ से है। उन्होने सप्रमाण कहा कि कभी किसी देश न विदेशी भाषा के द्वारा अपना उत्थान नही किया। अंग्रेजी से होने वाली तन, मन धन की भारी क्षति को उन्होन समस्त जनता के सम्मुख रखा और बताया कि अंग्रेजी के रहते भारत मे जन-तान्त्रिक समाजवादी व्यवस्था असम्भव है। उन्होन अंग्रेजी बहिर्गमन के पश्चात देश की भाषा-नीति के लिए कई ईमानदार समझौतावादी एव सर्वकल्याण कारी विकल्प दिए, जिनमे हिन्दी को राष्ट्र भाषा के रूप मे प्रतिष्ठित करने के लिए हिन्दी भाषियो को कुछ त्याग करन का आह्वान किया।

बहुभाषी केन्द्र की स्थापना सम्बन्धी उनके विकल्प से यद्यपि किसी साधारण बुद्धि को देश के बिखराव और फूटन की झलक दृष्टिगोचर हो सकती है, तथापि वास्तविकता इस सदेह से कोसो दूर है। उनका यह विकल्प अंग्रेजी निष्कासन सामयिक व्यवस्था मातृभाषा प्रेम और अन्ततोगत्वा राष्ट्र-भाषा हिन्दी होने मे विश्वास मे सना हुआ था। उन्होने सिद्ध किया कि समस्त भारतीय लिपियाँ नागरी लिपि के ही परिवर्तित रूप हैं। हिन्दी और भारतीय भाषाएँ एक दूसरे की पूरक है विरोधी नही। इस प्रकार उन्होने हिन्दी और

अन्य हिन्दुस्तानी भाषाओं के बीच चले आ रहे द्वन्द्व को समाप्त कर सामंजस्य और सहयोग का वातावरण निर्मित करने का प्रयास किया।

डॉ० लोहिया ने अपभ्रंश से निकली हुई चालू भाषा को ही हिन्दी भाषा माना। उन्होंने हिन्दी भाषा को सटीक, रंगीन पारिभाषिक, सशक्त, ठेठ और रोचक बनाने का प्रतिपादन कर उसे सजीवता प्रदान करने का प्रयास किया। उन्होंने झूठी सच्चाई, झूठी सफाई, झूठी शुचिता और आडम्बरयुक्त पांडित्य से हिन्दी का छुटकारा दिलाया। हिन्दी भाषा से उन्होंने आग्रह किया कि वह समस्त भारतीय भाषाओं के रोचक, प्रचलित और सामान्य जन की समझ में आने वाले शब्दों को पचावे। साधारण जनता में प्रयोग होने वाले अंग्रेजी के परिवर्तित शब्दों को हिन्दी भाषा में स्थान देकर उन्होंने हिन्दी भाषा को व्यापक एवं उदारवादी बनाने का प्रयास किया।

उर्दू और हिन्दी भाषा की एकता पर बल देकर डॉ० लोहिया ने हिन्दू और मुसलमान की एकता मजबूत की है। अपनी भाषा की समृद्धि और विकास के लिए प्रत्येक वर्ग में चेतना होती है। इस भावना को डॉ० लोहिया ने समझा और उर्दू का उचित स्थान देकर मुसलमानों के मन की आशंका को दूर किया। इस एकता के अपने प्रयास में उन्होंने हिन्दी और हिन्दुस्तान की आत्मा को भी समझा और उसे व्यापक बनाने का प्रयास किया। वे ही तो थे जो भविष्य में हिन्दी और उर्दू की लिपियों की एकता के लिए आशान्वित थे। यही प्रमुख कारण था कि वे हिन्दी के पेट को इतना अधिक व्यापक बनाना चाहते थे कि जिसमें उर्दू अंग्रेजी तथा अन्य समस्त भारतीय भाषाएँ समा जायें। वे हिन्दी को सच्ची जनतान्त्रिक भाषा बनाना चाहते थे।

भाषा सम्बन्धी उनका दृष्टिकोण केवल सिद्धान्त का ही विषय नहीं, उसका अपना व्यावहारिक महत्व है। उनके द्वारा प्रचारित भाषा का अवलम्बन करने से भावात्मक एकता अति शीघ्र उत्पन्न उत्पन्न हो सकती है क्योंकि उस भाषा में भारत के सभी वर्ग अपनी अपनी भाषाओं के सुग्राह्य रूप के दर्शन करते हैं। उदाहरण के लिए स्वयं डा० लोहिया द्वारा प्रयुक्त भाषा रखी जा सकती है। उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा से परिचित व्यक्ति निष्पक्ष रूप से कह सकता है कि वे सिद्धान्त और कर्म में एक थे। उनकी भाषा में अंग्रेजी, उर्दू हिन्दी तथा अन्य देशी भाषाओं के सुग्राह्य चालू और रोचक शब्दों के अतिरिक्त और कुछ नहीं। उनकी भाषा में कहीं कोई कृत्रिमता नहीं। उनकी भाषा उनके दिल और दिमाग की अभिव्यक्ति है। वह बतलाती है कि डॉ०

लोहिया कितने जन प्रेमी समाजवादी, एकत्ववादी और सुग्राह्य थे। वास्तव म उन्होने हिन्दी भाषा के रथ को इतना सशक्त बना दिया कि वह ऊँच-नीच सुख दुख, छोटे बडे पवित्र और अपवित्र सत्यता असत्यता के भावो को बिना भेद भाव के ढो सकता है। हिन्दी भाषा को सतुलित और सवग्राह्य बनाने का श्रेय डॉ० लोहिया को ही है।

लोहिया की भाषा सम्बन्धी नीति बहुत उदारवादी है। अंग्रेजी निष्कासन की उनकी प्रबल उत्कण्ठा को यद्यपि सामान्य जन कट्टर, प्रतिक्रियावादी और सकुचित कह कर उपहास कर सकते हैं किन्तु सत्यता इसके विपरीत है। अपनी मातृ भाषा म प्रेम करने का अथ दूसरे की मातृ भाषा स घृणा करना लगाया जाना सवथा अनुचित है और यदि ऐसा नहीं तो अँग्रेज सर्वाधिक कट्टर प्रतिक्रियावादी और सकुचित दृष्टिकोण वाले थे। डा० लोहिया को अँग्रेजी के प्रति घृणा नही अपितु हिन्दी तथा समस्त भारतीय भाषाओ के प्रति अगाध प्रेम था। स्वय उन्होने कहा है राज्य की भाषाओं और हिन्दी का समथन करते हुए इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि दिमाग भाषा स जकड न जाय। बहुत स लोग खास कर मध्यम वग के समझते है कि एक भाषा से प्रेम करने का अथ है दूसरी भाषा को नष्ट करना। यह बडा ही विवेकहीन और आत्मनाशी विचार है।[1]

सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि सामाजिक विचारो के आदान प्रदान का एकमात्र साधन सास्कृतिक भाषा है। सास्कृतिक भाषा म देश की भावात्मक एकता निवास करती है और भावात्मक एकता स्थापित होने पर ही समाजवादी विचारधारा पल्लवित, पुष्पित और फलित हो सकती है। लगभग १६ भाषाए बोले जाने वाले इस भारतवष मे हिन्दी ही इस काय को कर सकने मे समथ है। डा० लोहिया न उक्त तथ्य को समझा और उन्होने ऐसा विचार किया कि जब तक भारत की एक सव सम्मत भाषा नही होगी तब तक उसका समाजवादी विचारधारा भारतीय जीवन के सन्दभ मे निष्प्र योजनीय है। उनकी दृष्टि हिन्दी भाषा पर पडी। उन्होंने एक सच्चे भाषा वैज्ञानिक की दृष्टि स इस भाषा का अध्ययन किया। विचार मन्थन के पश्चात उन्होने हिन्दी भाषा का एक सरल सुलझा हुआ लोक प्रिय रूप प्रस्तुत किया। भाषा का यह विधान निश्चित रूप म डॉ० लोहिया का समाजवादी विचार-धारा को एकरूपता की गति प्रदान कर सकता है। अस्तु,

* * * * *

1 डा० लोहिया समाजवादी पोथी 2 133 लेखकों के कुछ उत्तर पृष्ठ 44

अध्याय ७

मौलिक अधिकार और डॉ० लोहिया

मौलिक अधिकार पर डा० लोहिया के विचार और आचार को समझने के पूर्व हम मौलिक अधिकार के तात्पर्य और महत्व को समझना पड़ेगा, अन्यान्य विचारकों के मतो को भी दृष्टि मे रखना होगा। जब से मानवीय चेतना प्रबुद्ध हुई वह 'कोऽहम्' जैसे गूढ़तम् प्रश्न पर विचार करती चली आई यथा मनि सताप और मशाधन करती रही। सुकरात ने भी 'know thyself' जमा उपदेश दिया और उसस भी पूर्व उपनिषद मे भी "कोऽहम" के प्रश्न को 'तत्वमसि' के द्वारा समाहित किया गया। किन्तु अपने आप को जानने और अपना विकास करने के लिए अपने म अन्तर्निहित शक्तियों का विकास करना होता ह जिसके लिए मानव को कुछ ऐसी अनिवार्य अनुकूलताओं की आवश्यकता होती है जिनके बिना उसका सम्पूर्ण विकास अवरुद्ध हो जाता है। इसी सत्य को निरूपित करते हुए प्रो० एच० जे० लास्की ने कहा है कि मौलिक अधिकार सामाजिक जीवन की वे परिस्थितियाँ हैं जिनके बिना साधारणत कोई मनुष्य अपना विकास नही कर सकता "Rights, in fact, are those conditions of social life without which no man can seek in general to be himself at his best'[1] मौलिक अधिकारों को प्रतिभूत करने का उद्देश्य मानव का परिवर्तनशील राजनीतिक प्रतिवादो से मुक्त तथा विधान मंडलीय बहुमत एव शासन-कर्मचारियों के हस्तक्षेप से बाहर रखना है ताकि वे वैधानिक सिद्धान्तो के रूप मे न्यायालयों द्वारा प्रयुक्त हों।

मानव के 'मूल' पर मार्क्स और लोहिया —अब प्रश्न उठता है कि कौन सा समाज अथवा विचारक किन किन परिस्थितियों और सुविधाओं को मानव विकास के लिए मौलिक मानता है। स्पष्ट है कि 'मूल' और 'मौलिक' जैसे गम्भीर शब्दों की व्याख्या पर ही विचारकों की मौलिक अधिकार सम्बन्धी धारणा आधारित होगी। मार्क्स मानव का मूल पेट में मानता है जब कि

* * * * *

1 H J Laski A Grammer of Politics page 91

लोहिया मानव को केवल 'पेटू पशु' मानने से साफ इन्कार करते हैं। वे मानव का "मूल हृदय और उसके भी ऊपर मस्तिष्क मे मानते हैं जिसे आज का शरीर विज्ञान प्रमाणित करता है और यही उपनिषद भी मानता है। विज्ञान बताता है कि गर्भ मे बीज सर्व प्रथम सिर या मस्तिष्क रूप मे ही व्यक्त होता है फिर इस बीज से हाथ, पाँव, आदि अकुर की शाखाओं की तरह फूटते हैं। इसी रहस्य को गीता मे ऊर्ध्वमूलमध शाखम् कहा है—इस जीव का मूल ऊपर है, शाखाएँ नीचे हैं।

मार्क्स और डॉ० लोहिया के इस गहरे अन्तर का कारण दोनो के समाज और संस्कृति के विरासत का अन्तराल है। विचारो और व्यक्तित्व के निर्माण मे सास्कृतिक सम्पदा के गुरुत्व का अनिवार्य योग होता है। कितना ही क्रान्तिकारी पुरुष क्यो न हो वह अपने ऐतिहासिक गौरव को नकार नहीं सकता। मिट्टी की महत्ता तो फूल मे होती ही है भले ही उसका सिर आकाश मे सुदूर घुस जाए। लोहिया उस राम की धरती का फूल है जो सरजू और गगा से सिंचित है। वह उस माता का लाल है जिसने उपनिषद के स्वरो मे मानव को केवल 'अन्नमय' मानने से इन्कार किया था। इसके विपरीत भौतिकवादी पाश्चात्य धरती के विचारक मार्क्स ने सम्पूर्ण मानव जाति के इतिहास को ही पेट के लिए *शिकार की संघर्षमयी कहानी साबित करने का प्रयत्न किया।* मार्क्स का यह प्रयास विश्व के समस्त महामानवो के व्यक्तित्व और कृतित्व के द्वारा ही नही अपितु स्वय उसके अपने भी महान जीवन के द्वारा निरस्त हो जाता है। कौन कह सकता है कि मार्क्स ने अपना जीवन पेट भरने के लिए खतम किया। विश्व के सभी महापुरुषो ने परार्थ और परमार्थ के लिए ही अपना जीवन उत्सर्ग किया है और इसी हेतु उन्होंने मौलिक अधिकारो पर भी बल दिया। इसी शृङ्खला की एक कड़ी डा० लोहिया हैं जो मानव के मूल अधिकारों के लिए आजीवन संघर्षरत रहे।

मौलिक अधिकारों के लिए डॉ० लोहिया के संघर्ष का अध्ययन करने के पूर्व यह ज्ञात कर लेना आवश्यक है कि वे नागरिकों को कौन कौन से अधिकार प्रदान करना चाहते थे। इस सन्दर्भ मे अद्यावधि लोकतान्त्रिक देशो मे सामान्यत और सिद्धान्तत स्वीकृत मौलिक अधिकारो को, जिन्हें लोहिया ने भी अनुमोदित किया है अनुशासित किया है हम छोड देंगे क्योकि वे लोहिया की अपनी देन नही हैं अपितु मात्र स्वीकृति हैं। हम यहाँ लोहिया की उन मान्यताओ की चर्चा करेंगे जो उनकी मौलिक अधिकारो को मौलिक देन हैं। इन अधिकारो को हम निम्नलिखित ढग से रख सकते हैं।

बौद्धिक स्वातन्त्रय का अधिकार—'ज्ञान हि तेषामधिको विशेष' का पक्ष लेते हुए वे मानते थे कि मानव पशु से अधिक विकसित प्राणी है। उसकी प्रकृति मे स्वतन्त्रता है। उनकी बौद्धिक स्वतन्त्रय सम्बन्धी धारणा तिलक की उस उक्ति से मेल खाती है जिसमे उन्होने कहा था कि स्वतन्त्रता मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है। लोहिया की बौद्धिक स्वतन्त्रता सम्बन्धी धारणा ग्रीन के उस विचार से भी पुष्ट होती है जिसमे उसने माना है कि मानव चेतना मे स्वतन्त्रता अन्तर्निहित रहती है और स्वतन्त्रता मे अधिकार निहित रहते हैं जिस हेतु राज्य की आवश्यकता पडती है। टी० एच० ग्रीन ने स्पष्टत लिखा है कि राज्य अधिकारो का जन्म नही देता, ये तो मानव प्रकृति मे पहले मे ही विद्यमान रहते हैं राज्य तो केवल इन अधिकारो को वास्तविकता प्रदान करता है। Thus the state does not create rights, but it gives fuller reality to rights already existing "[1]

डा० लोहिया का विश्वास है कि जब तक मानव के 'मूल' का ज्ञान प्राप्त नही किया जा सकता तब तक क्रान्ति पूर्ण नही हो सकती। आखिर जल तो अपना तल पाने पर ही प्रशात होता है। मानव का तल क्या है ? उसका लक्ष्य क्या है ? इसका उत्तर प्राचीन भारतीय शब्द 'मोक्ष' जिसका राजनैतिक सदर्भ मे अनुवाद होता है—स्वराज्य और जिसकी व्यावहारिक व्याख्या होगी—विकास के लिए आचार और विचार का सम्पूर्ण स्वातन्त्र्य इस सदर्भ स्वातन्त्रय का ही एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण अग बौद्धिक स्वातन्त्र्य है। बौद्धिक स्वातन्त्र्य का अर्थ है पठन-पाठन लेखन और अभिव्यक्ति का स्वातन्त्रय यह स्वातन्त्र्य वह अधिकार है जो प्रत्येक व्यक्ति को मानव के सम्पूर्ण विकास मे बाधक तत्वों को हटाने का और साधक तत्वो को जुटाने का अधिकार प्रदान करता है। साम्यवादी देशो म कला और साहित्य अथवा अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्य पर अत्यधिक अकुश रहते हैं। आधुनिक युग मे जनतान्त्रिक देशो मे भी नतिकता और सार्वजनिक स्वास्थ्य आदि के बन्धन कला, साहित्यक एव अभिव्यक्ति पर आरोपित किए जाते हैं। डा० लोहिया इस सम्बन्ध मे पूर्ण स्वतन्त्रता चाहते थे। उन्होने अश्लील साहित्य तक को प्रकाशन की स्वतन्त्रता दी थी। उनका स्पष्ट कहना था कि इतना तो मैं साफ कह देना चाहता हूँ कि समाजवादी हिन्दुस्तान मे किसी भी व्यक्ति की साहित्य या कला की अभिव्यक्ति किसी भी हालत मे

* * * * *

1—T H Green Lectures on the Principles of Political obligation page 138

अपराध नहीं रहेगी और जिसे अश्लील वगैरह कहते हैं, उसके बारे में भी यही कहना चाहता हूँ"[1] व्यक्तिगत दृष्टि से वे कला को पूर्ण निर्बन्ध रखना ही पसन्द करते थे किन्तु वे समाजवादी समाज में एक ऐसी परिस्थिति की सम्भावना की कल्पना करते थे जब कलाकार से लोकमंगल के दायित्व के निर्वाह का निवेदन किया जा सकता है।

बौद्धिक स्वातन्त्र्य के आधार पर ही डा० लोहिया समाजवादी व्यवस्था की कटु आलोचना करते थे। वे इस व्यवस्था को साम्राज्यवादी कहते थे क्योंकि इस व्यवस्था में मानव को मौलिक अधिकारों से वंचित रखा जाता है उसे मूक मूढ और अनपढ समझा जाता है मानो उसकी आवश्यकताएँ पशुवत केवल आहार, निद्रा भय और मैथुन" की सुरक्षा स्वरूप अन्न आवास दण्ड और काम ही है। इस व्यवस्था में मनुष्य को बौद्धिक विचारशील प्राणी न मानकर केवल "पेट प्राणी" ही माना जाता है। इसलिए डा० लोहिया साम्यवादी विचार को सम्पूर्ण मानव जाति का "पतन' निरूपित करते हुए उसके विरोध में आह्वान करते हैं 'It must be unbearable to sensitive mind and indeed reprsents a deterioration for the whole of mankind"[2] अध्याय ५ के उपशीर्षक 'वाणी स्वतन्त्रता एवं कर्म नियन्त्रण' में डॉ० लोहिया के बौद्धिक स्वातन्त्र्य सबधी विचारों पर पर्याप्त चर्चा की जा चुकी है। इसलिए यहाँ पुनरुक्ति परिहार्य है।

सविनय अवज्ञा का अधिकार —डॉ० लोहिया अहिंसा और बौद्धिक स्वातन्त्र्य दोनों में विश्वास रखते थे। अतः वे चाहते थे कि मानव का अत्याचारी और अन्यायी कानूनों की शान्तिमय और अहिंसात्मक अवज्ञा का अधिकार होना चाहिए।[3] टी० एच० ग्रीन के समान उनकी भी मान्यता है कि शासन जैसी संस्था का लक्ष्य व्यक्ति के विकास में बाधक समस्त तत्वों को दूर करके उन समस्त आनुकूलताओं को पैदा करना उन्हें पोषित करना है जिनसे मानव का सहज और पूर्ण विकास हो। वे मानते हैं कि कदाचित ये संस्थाएँ ही विकास में बाधक बन सकती हैं। जो शोषण एवं पूंजीपति करता है, वही शासण एक गुट राजनैतिक दल अथवा शासक भी कर सकता है। रक्षक भक्षक बन सकता है। जब ऐसा हो तब जनता का यह अधिकार है कि वह उसे

* * * * *

1—डा लोहिया समाजवादी आन्दोलन की इतिहास पृष्ठ 124
2—Dr Lohia Marx Gandhi and socialism page 468
3—डॉ० लोहिया सिविल नाफरमानी की व्यापकता पृष्ठ 15

उखाट फेंके। किन्तु महात्मा गाधी और टी० एच० ग्रीन के समान लोहिया साधन की शुद्धि, अहिंसा और सविनय अवज्ञा द्वारा ही ऐसा करना चाहते थे, न कि मार्क्स के हिंसात्मक तरीका द्वारा।

अंग्रेजो के विरुद्ध गाधी क्यो उठे ? लोहिया का स्पष्ट मत है कि गाधी जी जाति विद्वेषी नही थे न ही वे राष्ट्रवादी थे। अग्रेज स्वय जातिवादी और राष्ट्रवादी थे। अत उनका शासन भी जन शोषक था और इसलिए उसको हटाना जनता का मौलिक अधिकार था। और यदि यही शोषण कांग्रेस या अन्य दल करता है तो जनता को उसकी व्यवस्था के विरुद्ध सविनय अवज्ञा का मौलिक अधिकार है।

प्राण दण्ड और आत्म हत्या —डॉ० लोहिया का मत था कि व्यक्ति को आत्म हत्या का अधिकार मिलना चाहिए किन्तु प्राण दण्ड सवथा अविहित हो। अपराधी के उच्छेदन से अपराध उन्मूलित नही हो सकता। अपराधी का वध गाधीवाद के भी विपरीत है। प्राणदण्ड मानव की सम्भावनीय महत्ता की हत्या है। सचमुच मे यह कितनी विचित्र बात है कि एक अपराध के लिए व्यक्ति स्वय को तो दण्डित नही कर सकता, किन्तु शासन दण्डित करे। जब व्यक्ति स्वय अपने अपराध का अनुभव कर रहा है, उसे मान रहा है और तदनु स्वय दण्डित होना चाहता है तब इस आत्म स्वीकृति और आत्म दण्ड को तो शासन दण्डय माने और जब व्यक्ति अपने को निरपराधी कहे तब शासन उसे अपराधी कह कर दण्डित करे। यह न्याय का भयकर और जघन्य उपहास है। अतएव लोहिया ने आत्म-हत्या को अदण्डय और प्राण दण्ड को अवध कहा है।[1] यदि कोई सामाजिक आधार को लेकर आत्म हत्या के अधिकार को विहित करना नही चाहता तो उसके लिए यह प्रतितक होगा कि ऐसे आत्म ग्लानि और अन्तर उत्पीडन से अभिभूत प्राणियो को बलात जीवित रख कर समाज क्यो सिर दर्द मोल लेना चाहता है। ऐसे अद्ध विक्षिप्त व्यक्ति अपने परिवार, पास-पडोस के वातावरण को विषाक्त कर देते हैं। ये व्यक्ति समाज को कुछ देन के बजाय समाज के ऊपर एक अभिशप्त भार होते हैं और इस भार से जितनी ही जल्दी समाज मुक्त हो जाय, समाज का ही नहीं, उन व्यक्तियो का भी कल्याण है किन्तु मानवीयता के आधार पर समाज स्वय उन्हें न खतम करे। लेकिन यदि वह स्वय खतम होना चाहता है तो समाज उन्हें मौन और सधन्यवाद स्वीकृति दे।

* * * * *

1 डॉ० लोहिया सात क्रान्तियाँ पृष्ठ 28

जहाँ तक प्राण दण्ड न देने के सम्बन्ध मे लोहिया के कथन का प्रश्न है, वह तो सर्वथा मानवतावादी दृष्टिकोण है साथ ही साथ समाज के लिए भी लाभदायक है। एक तो मानव अथवा शासन की मानवता इसी मे है कि हत्या अथवा अन्य जघन्य अपराध करने वाले के साथ भी मानवोचित व्यवहार करे। लोहिया ने उचित ही कहा है "चाहे जिन्दगी भर जेल म डाल रखो, पर फासी न हो, क्योंकि गला घोट कर मार डालना इन्सानियत की बात नही है। हम कसे जानवर हैं जो आदमी को गला घोट कर मार डालते हैं।"[1] जिसने हत्या अथवा अन्य जघन्य अपराध किया है, यह आवश्यक नही कि उसकी प्रवृत्ति अपराध करने की ही है। अच्छा से अच्छा व्यक्ति भी कदाचित परिस्थितिवश बडा से बडा अपराध कर सकता है। इसके विपरीत यह भी हो सकता है कि कोई व्यक्ति अपराध करने की प्रवृत्ति मे ही आ गया हो तो भी उसको मृत्यु दण्ड देकर समाज केवल नकारात्मक लाभ ही उठाता है। इससे अधिक अच्छा तो यह है कि उसे जेल मे रखा जाय शिक्षा देकर उसकी प्रवृत्तियो को सँभाला जाय और उससे काय लेकर समाज को लाभ पहुँचाया जाय। इससे उस व्यक्ति और समाज दोनो को लाभ होगा। अत लोहिया का कहना सामाजिक दृष्टिकोण से भी उचित ही प्रतीत होता है।

व्यक्तिगत जीवन की स्वतन्त्रता —डॉ० लोहिया किसी के व्यक्तिगत जीवन म कोई भी दखल पसन्द नही करते। उनका कहना था हर व्यक्ति को एक हद तक अपने जीवन को अपने मन के मुताबिक चलाने का अधिकार होना चाहिए।"[2] वह घर म कैसे रह किससे कब शादी करे, किस राजनीतिक दल में रहे आदि प्रश्न विशुद्ध व्यक्तिगत हैं जिनमे किसी भी शासन अथवा दल को हस्तक्षेप करने का अधिकार नही होना चाहिए। नर-नारी के सम्बन्धो के सन्दभ में तो डॉ० लोहिया ने यहाँ तक कहा है कि यदि एक मद अथवा औरत शादी करके सात आठ बच्चे पदा करते हैं तो वे उनसे ज्यादा खराब हैं जो बिना शादी किए हुए एक भी नही या एक बच्चा पदा करते हैं।[3] इस कथन के पीछे उनका उद्देश्य व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को बनाए रखना तो था ही साथ साथ नर-नारी शुचिता को परम्परावादी दृष्टिकोण से हटाना और उसे बुद्धि, वीरता सयम साहस निश्छलता स्पष्टता से जोडना था। उनका यह

* * * * *

1 ओंकार शरद लोहिया पृष्ठ 290

2 डा० लोहिया जात क्रांतियाँ पृष्ठ 29

3 डा० लोहिया सात-क्रांतियाँ पृष्ठ 30

दष्टिकोण भारतीय संस्कृति के विरुद्ध है। बहुत प्राचीन काल से चली आ रही नर-नारी सम्बन्धों की पवित्रता पर भी यह कुठाराघात करता है। हाँ, जहाँ तक व्यक्ति के गुणो की प्रशसा का प्रश्न है अथवा व्यक्तिगत आजादी का प्रश्न है वह अवश्य उस सीमा तक दी जा सकती है जिस सीमा तक किसी दूसरे व्यक्ति के ऐसे अधिकार मे हस्तक्षेप न करती हो।

इसी प्रकार डॉ० लोहिया दहेज देकर की गई अच्छी शादी से उस लडकी को अच्छा समझते है जो बिना दहेज दिये और बिना शादी किए आत्म सम्मान के साथ स्वतन्त्र रूप से रहती है भले ही गन्दा समाज उसे छिनाल कहे।[1] भले ही डा० लोहिया के विचारो से सामाजिक जीवन में अस्थायी अव्यवस्था फलने की आशका हो किन्तु व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के दष्टिकोण से और दहेज जसी बोझिल सामाजिक कुरीति से मुक्ति पाने की दष्टि से उचित प्रतीत होते हैं। कुछ भी हो इतना तो स्पष्ट है कि वे मानव के व्यक्तिगत जीवन की स्वतन्त्रता मे अगाध आस्था रखते थे, उसमे हस्तक्षेप उन्हे बरदाश्त नहीं था वह चाहे कानून का हो अथवा सामाजिक कुरीतियो का। उन्होने साफ कहा था, "जीवन के ऐसे कुछ दायरे होने चाहिए कि जिनमे राज्य का, सरकार का सगठन का गिरोह का दखल न हो। जिस तरह हमारी जमीन की बेदखलियाँ हो जाती हैं उसी तरह सरकार और राजनीतिक पार्टियाँ हमारे जीवन मे बेदखली कर डालती हैं।"[2]

सरकारी नौकरी और आजादी—चूकि समाजवाद मे सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार से शासकीय कमचारियों की सख्या में वद्धि होती है अत अधिकाश जन-सख्या शासकीय कमचारी बन जाती है। यदि उसको राजनतिक कार्यों म भाग लेने, सगठन बनाने उनमें सक्रिय काय करने का अधिकार नहीं दिया जाएगा, तो अधिकाश जनता पराधीनता की जजीरो मे जकड जाएगी। उसके मुह सिल जाएँगे जो मानवता के विपरीत है। परिणाम-स्वरूप ऐसी स्थिति मे समाजवाद पराधीनता का ही पर्याय हो जायगा। इसके अतिरिक्त वाणी और अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्य के अभाव मे सावजनिक क्षेत्र के कमचारी स्वार्थी, अनुत्तरदायी और भ्रष्ट हो जाते हैं जबकि उन्मुक्त कमचारी अधिक ईमानदार और उत्तरदायी होते हैं। इसीलिए डा० लोहिया सनिको को छोडकर समस्त सावजनिक कमचारियो के राजनतिक स्वातन्त्र्य के पक्षधर थे। सुनने

* * * * *

1—डॉ० लोहिया सात क्रान्तियाँ पृष्ठ 30
2—डॉ० लोहिया सात क्रान्तियाँ पृष्ठ 28

का अधिकार तो वे सनिकों तक को देते हैं। इतना ही नहीं, वे उन्हें आर्थिक एवं पेशे विषयक शिकायत करने का भी अधिकार देते हैं।[1]

श्रमिक और आजादी —डॉ० लोहिया का विश्वास है कि अधिकार की भावना आने से ही कर्त्तव्य की भावना आती है। महात्मा गांधी के विपरीत उनकी मान्यता थी कि "कर्त्तव्य की भावना कभी आ नहीं सकती, जब तक अधिकार की भावना नहीं आएगी।"[2] वे कहते थे कि अधिकार और स्वतन्त्रता मिलने पर मनुष्य की चेतना उदात्त होती है उसमें स्वाभिमान जागता है वह अपने को महान समझता है और फिर महान कर्म करता है। चेतना का उदात्त करने के लिए मानव को न केवल काम करने का अधिकार चाहिए अपितु आराम करने की आजादी भी चाहिए उसे शिक्षा और संगठन का, विरोध करने का भी अधिकार चाहिए। स्वतन्त्रता और विकास म समानुपातिक सम्बन्ध है। लोहिया का मत था कि यह मान्यता न केवल देश के सन्दर्भ में, अपितु व्यक्ति के सम्बन्ध में उतनी ही यथार्थ है। इसलिए उन्होंने मजदूरों को उद्योग की व्यवस्था म अधिकार और पिकेटिंग का अधिकार भी दिलाया।[3] मनुष्य की कल्पना उन्होंने गीता के 'ब्रह्मार्पण ब्रह्महवि ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणाहुतम जसी की। वही मनुष्य उद्योग का व्यवस्थापक भी है और पिकेटियर' भी है। सामाजिक विकास करने के माध्यम के रूप में मनुष्य साधन है और विकसित समाज के अंग के रूप म वह साध्य है। वह सब कुछ है जसी विकास की परिस्थिति का तकाजा हो।

धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार —डॉ० लोहिया के सिद्धान्त और कर्म मे मानव की प्रतिष्ठा बोलती है। वे चाहते थे कि राजनीतिक धार्मिक, सामाजिक आर्थिक आदि जीवन के समस्त पहलुओं म मानव के साथ मानवोचित व्यवहार हो। इसीलिए धर्म पर आधारित सम्प्रदायों के वे कठोर विरोधी थे। डॉ० लोहिया को नागरिकों की पूजा और अन्तःकरण की स्वतन्त्रता में अगाध आस्था थी। उनका मत था कि मन्दिर, मसजिद आदि धार्मिक संस्थानों में व्यक्ति को बेरोक टोक जाने का पूर्ण अधिकार है। उनकी दृष्टि म धार्मिक हस्तक्षेप हेय और दमनीय है। उनका स्पष्ट कहना था मैं समझता हूँ मसजिद मन्दिर अपने रखो। कोई भी उसम दखल देने जाए तो मुझ जसा

* * * * *

1—डा० लोहिया भारत चीन और उत्तरी सीमाएं पृष्ठ 372
2—डॉ० लोहिया जाति-प्रथा पृष्ठ 112
3—सोशलिस्ट पार्टी सिद्धान्त और कर्म (जनवरी सन् 1955) पृ० 43

समाजवादी कहेगा कि उस दखल दने वाले को हम रोकेंगे और ताकत से रोकेंगे।"[1] यद्यपि वे स्वय ईश्वर अथवा मंदिर मसजिद मे विश्वास नही करते थे, तथापि ईश्वर पर विश्वास करने वाले और मंदिर मसजिद जाने वाले व्यक्तियों से उन्हे कोई घृणा न थी। इस सम्बन्ध मे उन्हे प्रत्येक के अपने मुक्त माग पसन्द थे। राजनतिक और सामाजिक व्यवस्था के पुनरुद्धार को बाधा न पहुँचाना ही केवल इस मुक्ति माग की एक शत थी।[2] वे धम निर-पेक्ष राज्य में आस्था रखते थे।

सम्पत्ति का अधिकार —डॉ० लाहिया सम्पत्ति के अधिकार को व्यक्ति का मौलिक अधिकार नहीं मानते। उनकी मान्यता थी कि व्यक्ति के विकास के लिए ही व्यक्ति को सम्पत्ति का अधिकार दिया गया था, किन्तु यदि यह अधिकार व्यक्ति का रक्षक बनने के स्थान मे भक्षक बन जाए तो इसे सीमित किया जाना चाहिए। वे चाहते थे कि श्रम के शोषण पर आधारित समस्त उत्पादन के साधनो का राष्ट्रीयकरण होना चाहिए। उनका स्पष्ट कहना था कि सच्चा और नवीन समाजवाद ऐसा हागा जो 'एक तरफ तो कायदे-कानून ऐसे बनाएगा कि जिसम सम्पत्ति लागा की व्यक्तिगत न हो और दूसरी तरफ इस तरह के समाज के ढाँचे को बनाएगा नाटक, किस्से या खेल कूद या दशन या किताबें या उपन्यास एसे चलाएगा और बचपन से ही ऐसी शिक्षा देगा कि सम्पत्ति का मोह आदमी को न हो।'[3]

कहीं-कहीं लोहिया के विचार सिद्धान्तत सही लगते हुए भी व्यवहारत स्पष्ट नही हो पाते। लगता है जस वे 'वदतो व्याघात' कर रहे हैं। एक ओर वे चौखम्भा योजना द्वारा राज्य शक्ति के विकेन्द्रीकरण की बात करते हैं तो दूसरी ओर सम्पत्ति को नागरिक का मौलिक अधिकार नही मानते। अथ का मौलिक अधिकार सत्ता का केवल नागरिकों के बौद्धिक स्वातन्त्र्य का केवल मौखिक स्वातन्त्र्य म परिणत कर देते हैं। उनकी इस व्यवस्था मे ता जनता केवल नामत शासन करेगी, अथत शासन तो सत्तासीन दल करेगा। अथ पर मौलिक अधिकार समाप्त होने स जनता की अधिक उत्पादन का प्रेरणा भी समाप्त हो जाती है। उपर्युक्त आपत्तियो के होने के बावजूद भी वतमान मानव की शोषण-वृत्ति का देखते हुए उन्होंने जो व्यवस्था दी है, वह

* * * * *

2 डॉ० लोहिया आजाद हिन्दुस्तान मे नए रूझान पृष्ठ 11
3 Dr Lohia Marx, Gandhi and Socialism page 173
1 डा० लोहिया समाजवाद की अर्थनीति, पृष्ठ 24

व्यक्ति को सम्भव स्वतत्रता प्रदान करती है। आखिर व्यक्ति की शोषक प्रवृत्ति को समाप्त करने के लिए सत्ता का अपेक्षाकृत अधिक आर्थिक अधिकार तो देने ही पड़ेंगे। फिर लोहिया के समक्ष केवल व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की ही समस्या नहीं थी उन्हे तो समता का भी ध्यान रखना था।

समता का अधिकार —एक सच्चे समाजवादी होने के नाते स्वाभाविक रूप से डॉ० लोहिया सर्वांगीण और सर्वक्षेत्रीय समता में विश्वास करते थे। उन्होंने नर-नारी समता जाति-उन्मूलन रंग भेद और अस्पृश्यता समाप्ति के लिए जो सिद्धान्त और कर्म दिए हैं उनसे स्पष्ट है कि वे सच्चे समाजवादी थे। उन्होंने समता के चार पहलू बतलाए थे—वैधानिक, आर्थिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक। वैधानिक समता के अन्तर्गत वे विधि के समक्ष समानता चाहते थे तो राजनैतिक समता के अन्तर्गत वे भेद भाव रहित मताधिकार की पहल करते थे। राष्ट्र के अन्दर व्यक्तियों की आर्थिक समानता और विश्व में समस्त राष्ट्रों की आर्थिक समानता ही उनकी आर्थिक समता का लक्ष्य था। इसी प्रकार आध्यात्मिक समता से उनका तात्पर्य यह था कि विरोधी स्थितियों *सुख दुख हानि लाभ, जय पराजय में तो व्यक्ति सम रहे ही, साथ ही साथ* समस्त व्यक्तियों के साथ समता का भी भाव रखे। यही उनकी सर्वांगीण समता की कल्पना थी। उन्होंने स्पष्टतः कहा था 'Equality must therefore be grasped in all its four meanings'[1]

भले ही डॉ० लोहिया की ये समताएं आज कल्पना मात्र प्रतीत होती हों, किन्तु विषमता की खाइयाँ पाटने के लिए उन्होंने जो प्रयास किए, वे भुलाए नहीं जा सकते। उनसे तो प्रेरणा प्राप्त करने की आवश्यकता है। सर्वांगीण समता के लिए उनके हृदय में जो भाव थे उनको निश्चयात्मक रूप से उनके निम्नलिखित वाक्य से जाना जा सकता है 'Men will do mad things if their hunger for equality is not appeased'[2] वे जिस प्रकार एक राष्ट्र के अन्दर सभी मानवों को समान अधिकार चाहते थे, उसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी सभी राष्ट्रों की समानता पर बल देते थे। विभिन्न राष्ट्रों के बीच व्याप्त समस्त विषमताओं को समाप्त कर वे जनतन्त्र और मानव अधिकारों पर आधारित समस्त राष्ट्रों की स्वतंत्रता और एकता की पुनर्प्राप्ति चाहते थे। इस हेतु व विश्व के ¾ हिस्से के छोटे राज्यों की सप्र

* * * * *

1—Dr Lohia Marx Gandhi and Socialism page 241
2—Dr Lohia Marx Gandhi and Socialism page 286

भुताओ पर नही अपितु हिन्से के बड राज्यो की सप्रभुताओ पर अकुश चाहते थे।[1]

समता पर बल ता मार्क्स न भी दिया था, किन्तु वह केवल आर्थिक समता पर ही केन्द्रित रहा। स्वतन्त्रता को तो उसने समता की बलिवेदी पर न्यौछावर ही कर दिया था। इसके विपरीत लोहिया ने अपना ध्यान केवल समता पर ही केन्द्रित नही रखा अपितु मानव स्वातन्त्र्य और उसके अधिकारो पर भी उनका ध्यान गया। मानव स्वातन्त्र्य और उसके अधिकारो को उन्होंने समता की बुनियाद बतलाया। यही कारण है कि समता लाने के लिए मानव-अधिकारो के निर्विघ्न उपयाग म वे बाधा नही डालना चाहत। उन्होंने स्पष्टत कहा था, 'In addition, the enjoyment of human rights which are the basis of all equality should not be interrupted'[2]

उन्होंने उपर्युक्त मौलिक अधिकारो का केवल एक सद्धान्तिक विवेचन ही प्रस्तुत नही किया, अपितु उनको वास्तविकता बनाने के लिए वे आजीवन सघर्षरत रहे।

मौलिक अधिकार और डा० लोहिया का सघर्ष—डा० लोहिया की राजनीति सत्ता निरपेक्ष और सेवा सापेक्ष थी। यही कारण था कि उन्होंने न केवल विदेशी विधि विधानों के विरुद्ध सघर्ष किया, अपितु स्वदेशी शासन के खिलाफ भी वे निरन्तर जूझते रहे। गाधी तो केवल विदेशियो के विरुद्ध लडे, लेकिन लोहिया स्वदेशी शासन के अन्यायो के विरुद्ध भी आजीवन सघर्ष करते रहे। गांधी जी ने विदेशी अन्यायी शासन के विरुद्ध सत्याग्रह किया। डॉ० लोहिया ने उनका साथ दिया, लेकिन स्वतन्त्रता के बाद उन्होंने अकेले और कतिपय सहयोगियो के दम पर एकला चलो रे' के आदर्श पर अन्याय से युद्ध किया। उनके जीवन का लक्ष्य जनता को मौलिक अधिकार दिलाना था नर को नारायण रूप मे प्रतिष्ठित कराना था। यही सत्ता निरपेक्षता और जन सेवा सापेक्षता ही कारण थी कि अपने ही दल के केरलीय शासन से उन्होंने त्याग पत्र माँगा। उनका यह कृत्य उनके उस सिद्धान्त के अनुकूल था जिसमे उन्होंने कहा था, 'हिन्दुस्तान की राजनीति म तब सफाई और भलाई आएगी जब किसी पार्टी के खराब काम, सरकार के खराब काम की निन्दा दूसरी पार्टी के लाग ही न करें, बल्कि उस पार्टी के लाग करें। यह आज नही हो

* * * * *

1—Dr Lohia Marx Gandhi and Socialism page 285
2—Dr Lohia Marx Gandhi and Socialism, page 286

रहा है।[1] यदि वे चाहते तो स्वतन्त्रता के पश्चात ही सत्ता से समझौता कर लेते और जीवन के शेषांश को आधुनिक मन्त्रियों की तरह विलासिता मे व्यतीत करते लेकिन वे तो गाधी, सुकरात और थारो आदि की तरह केवल बलिदान की ज्योति-ज्वाला को जलाए रखने के लिए आये थे ताकि उस ज्वाला मे प्रह्लाद तो अमर हो जाय और होलिका मर जाय।

उनका स्पष्ट कहना था, "एक ऐसी पार्टी बनाओ जो सकल्प कर ले और घोषणा कर दे कि हमको गद्दी पर कभी नही बठना है, लेकिन जो भी लोग या पार्टी गद्दी पर बठे उनको अन्याय के अवसर पर टगडी मारना है ऐसा सकल्प करो, ऐसी घोषणा करो एसी पार्टी बनाओ तो सचमुच देश का और ससार का महान कल्याण होगा।"[2] उन्होने यदि कभी सत्ता की योजना बनाई थी तो केवल अपने सिद्धान्तो को और न्याय को प्रतिष्ठित करने के लिए। उनका विश्वास था कि सत्य के साथ शक्ति न होने पर वह निर्जीव हो जाता है। सामाजिक, आर्थिक राजनतिक विषमताओ को समाप्त करने के लिए उन्होंने इसीलिए प्रयास किया था जिससे कि नागरिक अपने मौलिक अधिकारो का वास्तविक प्रयोग कर सकें। उनका विचार था कि जनतान्त्रिक व्यवस्था मे नेता के अधिकार सीमित होने चाहिए और उसके कृत्य राम जसी मर्यादा और विधान म बँधे होन चाहिए।[3] अमर्यादित और निरकुश अत्याचारी शासनो से नागरिक को मुक्ति दिलाने हेतु उनके कुछ और सघर्षों को रखा जा सकता है।

गोवा-नागरिकों के मौलिक अधिकार और डॉ० लोहिया —५०० वर्ष से चले आ रहे पुर्तगाली निरकुश शासन के कारण नागरिक स्वातन्त्र्य की पूर्ण आहुति हो गई थी। सभाएँ आयोजित करने के लिए उन्हे तीन दिन पूर्व राज्यपाल की स्वीकृति प्राप्त करनी होती थी। समाचार पत्रो को प्रकाशन के पूर्व शासन को दिखलाना पडता था। विज्ञापन प्रकाशन निमत्रण पत्रिका विवाह निमत्रण पत्रिका आदि भी जाँच के पूर्व नही छप सकते थे। लेखन मुद्रण की स्वतन्त्रता पर भी कडे प्रतिबन्ध लगाए गए थे। १५ जून सन १९४६ ई० को लोहिया जी वहाँ गए और १८ जून को मडगाँव म एक सभा का आयोजन किया। ज्यो ही लोहिया जी भाषण के लिए खडे हुए प्रशासक मिराडा अपनी रिवाल्वर पर हाथ रखे हुए उनके पास आया। उन्होने उसका हाथ

* * * * *

1—डा० लोहिया जाति प्रथा पृष्ठ 105
2—डा० लोहिया सरकार से सहयोग और समाजवादी एकता पृष्ठ 15
3 डा० लोहिया मर्यादित उन्मुक्त और असीमित व्यक्तित्व पृष्ठ 4

पकड कर उसे धैर्य रखने की सलाह देते हुए कडे शब्दों मे कहा, "धीरज रखो, देखते नही, कितनी भीड हो गई है। खून खराबी होगी तो शान्ति रहेगी क्या ?"[1] उनके इस कृत्य ने वहाँ की जनता को अपनी आजादी के लिए सत्याग्रह हेतु तैयार किया।

डॉ० लोहिया को गिरफ्तार किया गया। विरोध मे जनता ने खलबली मचा दी, जुलूस निकाले। परिणामस्वरूप पुर्तगाली शासन ने लोहिया को अतिथि के रूप म भाषण की स्वतन्त्रता के साथ सम्पूर्ण गोवा भ्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया किन्तु केवल स्वय के लिए उन्होने उस आमन्त्रण को ठुकरा दिया। अन्त मे, पुलिस अधीक्षक ने सूचना प्रसारित की कि 'आम सभा या भाषण के लिए इजाजत लेने की जरूरत नही। मामलतदार कचहरी मे इत्तला देना काफी होगा। गवनर न आपको यह सन्देश भेजा है।'[2] डा० लोहिया के इस कृत्य की प्रशसा करते हुए गोवा के गवनर को गाधी जी ने एक पत्र म लिखा था, 'डॉ० लोहिया की राजनीति शायद मुझसे कुछ भिन्न हो सकती है, लेकिन उन्होने गोवा म जाकर उधर की कलकमय जगह पर अपनी उगली रखी है और इसी कारण मैं उनकी तारीफ करता हूँ। उन्होने जो मशाल प्रज्ज्वलित की है उसे गोवा के नागरिक अगर बुझ जाने देंगे तो उनके लिए बहुत बडा खतरा होगा। आप और गोवा के नागरिक दोनो को ही डा० लोहिया को बधाई देनी चाहिए कि उन्होने यह मशाल जलाई।'[3] डॉ० लोहिया वहाँ के नागरिकों के मौलिक अधिकारो की रक्षा हेतु कई बार वहाँ गए, किन्तु प्रत्येक बार वहाँ की सरकार उन्हे भारत की सीमा पर छोड जाती। तब उन्होने सीमावर्ती स्थानो से ही नागरिक स्वतन्त्रता के प्रयास अपने भाषणो और सत्याग्रहो द्वारा जारी रखे।

नेपाल के नागरिकों के मौलिक अधिकार और डा० लोहिया —केवल गोवा मे ही नही, अपितु नेपाल मे भी डा० लोहिया ने जनता के मौलिक अधिकारो की रक्षा हेतु वहाँ की कांग्रेस का साथ दिया जो नेपाल के राणाओ की निरकुश तानाशाही के विरुद्ध सघर्ष कर रही थी। नेपाल की कांग्रेस ने वाणी-स्वतन्त्रता और अन्य जनतान्त्रिक अधिकारो के लिए आन्दोलन चलाया था। डॉ० लोहिया ने जनवरी सन् १९४७ ई० म कांग्रेस स्थापित करने की प्रेरणा

* * * * *

1 ओंकार शरद लोहिया पृष्ठ 164

2. इन्दुमति केलकर लोहिया सिद्धान्त और कर्म, पष्ठ 125 से 140 (संपूर्ण हिस्सा)

3—महात्मा गांधी हरिजन 11 अगस्त सन 1946 ई०

दी थी और पत्रकारो से वार्ता करते हुए उन्होने कहा था कि नेपाल का विचार नियत्रण जाना चाहिए और लोगो को विचार और वाणी की स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए।'[1] इस हेतु २५ मई सन १९४९ ई० को दिल्ली मे उन्होने एक सभा की जुलूस निकाला और नेपाली दूतावास के समक्ष जन प्रदर्शन किया। शासन ने अश्रु गैस बरसाई। इस सम्बन्ध मे उन्होंने जेल भोगी, अनेक कष्ट उठाए जिनका विस्तृत वर्णन यहाँ आवश्यक प्रतीत नही होता।

नहर रेट-वृद्धि के विरुद्ध आन्दोलन —जैसा स्पष्ट किया जा चुका है, डा० लोहिया का लक्ष्य अन्याय से सघर्ष करना था। चाहे जो भी अन्याय करे। अन्याय का उनका विरोध इतना तीव्र और आक्रामक था कि वे कभी कभी अन्यायी के लिए अशिष्ट शब्दो का प्रयोग कर दिया करते थे। चूकि भारतीय शासन के कर्णधार पडित जवाहर लाल नेहरू थे, इसलिए प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष ढग से स्वतन्त्रयोत्तर काल से अपनी अन्तिम श्वास तक वे अन्याय के प्रति अपना रोष सक्रिय रूप से प्रकट करते रहे। आज भी प्रबुद्ध वर्ग मे यह एक जीवित प्रश्न बना हुआ है कि डा० लोहिया का नेहरू से क्या कोई व्यक्तिगत द्वेष था। निष्पक्ष भाव से यह कहा जा सकता है कि वे नेहरू के नही अपितु अकुशल और विलासी शासन के विरुद्ध थे। यदि नेहरू के ही वे विरुद्ध होते, तो गोवा, नेपाल अथवा अमरीका आदि मे न्याय हेतु जो उन्होने सघर्ष किया, तो वहाँ कौन से नेहरू थे? जिस गोली-काण्ड के लिए वे नरेश से लडते थे, उसी के लिए वे अपने दल अथवा अन्य दलो से भी। जहाँ भी गरीबो को सताया जाता वहाँ डा० लोहिया अपनी पूरी ताकत से विद्रोह कर उठते थे। इसका ही एक उदाहरण है—उत्तर प्रदेश मे नहर रेट वृद्धि का विरोध।

यह सर्वज्ञात है कि सन १९५४ ई० म उत्तर प्रदेश शासन न १२ जिलो मे नहर रेट दुगना से लेकर सात गुना तक बढा दिया था। बढा हुआ नहर रेट कृषक देने मे असमर्थ थे। डा० लोहिया न उपर्युक्त अन्याय के विरुद्ध सशक्त आन्दोलन छेडा। १५ मई सन् १९५४ ई० से आबपाशी मत देना का नारा लगाकर उन्होंने एक व्यापक सत्याग्रह प्रारम्भ कर दिया—जिसमे हजारो की सख्या म सत्याग्रही जेल गये। डा० लोहिया को भी १९३२ के स्पेशल पावर्स एक्ट की धारा ३ के अन्तगत गिरफ्तार किया गया। उक्त धारा के अनुसार जो कोई जवाब द्वारा या लिखित शब्दो से या निशानो स या दृश्य वर्णन से या

* * * * * *

1—इन्दुमति केलकर, लोहिया सिद्धान्त और कर्म पृष्ठ 125

'उल्टे प्रोत्साहित करेगा तो यह गुनाह होगा। डा० लोहिया ने इस धारा को असंवैधानिक निरूपित करते हुए ७ जुलाई सन् १९५४ ई० को इलाहाबाद उच्च न्यायालय के प्रमुख न्यायाधीश को पत्र लिखा जिसमें उन्होंने अन्य बातों के साथ-साथ यह भी लिखा आजाद मुल्क में किसी को भी भाषण देने के कारण गिरफ्तार करना खतरनाक है। जिस भाषण में हिंसा का आह्वान नहीं वहाँ सरकार का गुनाह ज्यादा गहरा होता है। उत्तर प्रदेश का स्पेशल पावर्स एक्ट जुल्म है और यह भारतीय संविधान की धारा १९ के विसंगत है।" २९ जुलाई सन् १९५४ ई० को न्यायाधीश श्री चतुर्वेदी और श्री देसाई के डिवीजन बेन्च के समक्ष अपने मुकदमे की पैरवी करते समय उन्होंने कहा कि शब्द 'उल्टे' का केवल एक अर्थ के सिवाय अन्य कुछ अर्थ नहीं होता और वह यह कि विद्युत यन्त्र द्वारा सम्भाषण। अदृश्य सम्भाषण कानून की कक्षा में नहीं आता। इस कानून के अनुसार तो गाँधी जी का ऊपर उठाया हाथ भी, जो गांधी जी की हमेशा आदत थी, प्रतिबन्धित हो सकता है। यह कानून व्यक्ति के भाषण-स्वतन्त्र्य को अवरुद्ध करता है।

१२ अगस्त को न्यायाधीश देसाई ने फैसला दिया कि नहर रेट न चुकाना 'नादर्न इण्डिया कनल एण्ड ड्रेनेज एक्ट के या अन्य किसी कानून के अनुसार गुनाह नहीं है और उत्तरप्रदेश स्पेशल पावर्स एक्ट निःसन्देह रूप से भाषण स्वातन्त्र्य के अधिकार पर हमला करता है।[1] न्यायाधीश चतुर्वेदी का निर्णय ठीक इसके विपरीत था। अतः लोहिया का मुकदमा अब एक तीसरे न्याय मूर्ति श्री अग्रवाल के समक्ष गया, जहाँ पर उन्होंने सुकरात, थारो और गाँधी जी के उदाहरण दिये और कहा कि इन महान् पुरुषों ने सदैव कानून की प्रतिष्ठा के लिए अन्यायी कानूनों को तोड़ा है। सुकरात शायद पहला व्यक्ति था जिसने कहा था यदि कानून प्रगतिशील और सुव्यवस्थित समाज की बुनियाद बने हैं तो उनके आशय का पालन करना चाहिए। डा० लोहिया ने आगे कहा है कि अमरीका में हेनरी डेविड ने कर न चुकाने का प्रचार करते हुए स्पष्ट किया था कि यदि जनतन्त्र बहुमत पर निर्भर रहेगा तो बहुसंख्यक जनता केवल ऐसी कल्पनाओं का स्वीकार करेगी जिन्होंने अपना अर्थ खो दिया है। थारो ने यह भी कहा था कि हिमायती ९९९ लोगों के मुकाबले में एक शरीफ आदमी हो सकता है। लोहिया ने गांधी जी का भी उदाहरण रखा जिन्होंने कहा था कि कर न चुकाने का जनता का सबसे पुराना सहज और जन्मसिद्ध

* * * * *

1—इन्दुमति केलकर लोहिया सिद्धान्त और कर्म पृष्ठ 300

अधिकार है। जनता ऐसा केवल विदेशी शासन मे नही अपितु स्वदशी शासन मे भी कर सकती है। गाधी जी ने केवल दो शर्ते लगाई थी—पहली, कर असहनीय हो गए हो, दूसरी, स्थिति का सुलभान के अन्य सभी माग असफल हो चुके हा।

न्यायमूर्ति अग्रवाल और डा० लोहिया —न्यायमूर्ति श्री अग्रवाल का निणय लोहिया के पक्ष मे गया। लोहिया जी कितने सत्यनिष्ठ जन-सेवी और स्वतन्त्रता प्रेमी थे, यह न्यायाधीश श्री अग्रवाल के निणय से स्पष्ट होता है। किसी महापुरुष या उसके सिद्धान्ता का मूल्याकन करते समय स्वाभाविक है कि दलगत, राष्ट्रगत, जातिगत, साहित्यिक भावकतागत कुछ न कुछ अतिशयोक्ति हो जाय, लेकिन कटघरे मे खडे अपराधीवत व्यक्ति को, जब एक न्यायमूर्ति स्वय जिसे विश्व पूण निष्पक्ष और नितान्त निसग मानता है सम्पूण निष्ठा के सम्पूण सत्यनिष्ठ लोग[1] कह कर उस कदी को सुकरात से उपमित करे और उसकी महिमा की रक्षा म गाधी को याद करे, तो मैं समझता हू कि इससे बडा प्रमाण विश्व म अब दूसरा हो नही सकता। विश्व मे विरले ही होगे जिनकी स्तुति कटघर म की गई हो। भागवत म लिखा है कि कृष्ण जब जन्म कारागार म थे तब ब्रह्मादि देवताओ ने उनकी स्तुति की थी, लेकिन यह लोहिया तो इस माने मे कृष्ण स भी अधिक हो गये, क्योकि ब्रह्मादि तो डर कर भी स्तुति कर सकते हैं, किन्तु न्यायमूर्ति अग्रवाल ने अपनी पूण मुक्त और निर्भीक आत्मा स लोहिया की उपयुक्त स्तुति की है।

वस्तुत लोहिया की यह स्तुति लोहिया व्यक्ति की नही, अपितु लोहिया सिद्धात की थी, उस मौलिक अधिकार की थी जिसे स्वदेशी शासन देना नही चाहता था और १६३२ स्पेशल पावस एक्ट धारा ३ की चट्टान पर उस नवजात अधिकार को विनष्ट करना चाहता था। न्यायमूर्ति अग्रवाल ने स्पष्टत कहा था कि उपयुक्त स्पेशल पावस एक्ट जिसके अनुसार डॉ० लोहिया को कारागार दिया गया था भारतीय सविधान के विपरीत था। इतना ही नही न्यायमूर्ति अग्रवाल ने आगे बढ़कर यह भी उदघोषित किया कि उपयुक्त एक्ट के प्रतिबन्ध 'सावजनिक सुव्यवस्था के हित विरोधी थे।'[2] उन्होंने अपने निणय म स्पष्टत कहा था, "जनतन्त्र म कोई भी जिम्मेदार व्यक्ति या पार्टी कानून तोडने को बकार प्रोत्साहन नही देगी। लेकिन एस प्रसगो का अनुमान

* * * * *

1—इन्दुमति केलकर लोहिया—सिद्धान्त और कर्म पृष्ठ 301
2—इन्दुमति केलकर लोहिया—सिद्धान्त और कर्म पृष्ठ 301

किया जा सकता है कि जहाँ सर्वोच्च निष्ठा के सम्पूर्ण सत्यनिष्ठ लोग जनता को अन्याय कानून शान्ति से तोड़ने की सलाह देकर उनको खुद तोड़ना अपना नैक नियत फर्ज मानेंगे।[1]

न्यायमूर्ति अग्रवाल ने अपने निर्णय की पुष्टि में सुकरात, थोरो और गांधी के उदाहरण प्रस्तुत कर मानो परोक्षतया यह भी स्पष्ट किया कि सुकरात आदि युग पुरुषों को दण्डित करने वाले शासनों का उपहास करने वाले नेहरू शासन, जिसने जनता के उसी मौलिक अधिकार के लिए अंग्रेजों की यातनाएँ सही, आज अपने ही सहयोगी का सुकरात आदि की तरह दण्डित करने में हिचकिचा नहीं रहा है। अतएव न्यायमूर्ति अग्रवाल को लोहिया के सिद्धान्तों के समर्थन के लिए सिद्धान्त वाक्यों के रूप में महात्मा गांधी को ही बुलाकर खड़ा करना पड़ा। गांधी जी ने अक्टूबर सन् १६१८ ई० की हंटर कमेटी के समक्ष एक लिखित निवेदन में कानून भंजक प्राकृत पुरुष और सिविल नाफरमानी करने वाले महापुरुष के अन्तर को स्पष्ट किया था और इस प्रकार प्रथम को दण्ड्य और द्वितीय को प्रशंसनीय निरूपित किया था।[2]

इसलिए न्यायमूर्ति अग्रवाल ने सिविल नाफरमानी के अधिकार को सरक्षण देते हुए कहा, 'मेरी दृष्टि से हमारा संविधान, हरेक भारतीय नागरिक का सिविल नाफरमानी के प्रचार का हक सरक्षित करता है धारा १६ के पद २ में उल्लिखित नियमों को छोड़कर।'[3] उन्होंने न केवल लोहिया को सुकरात और गांधी के सम स्तर पर बिठाया, अपितु शासन को अपराधी ठहरा कर उस पर ५० रु० उल्टे खर्च भरने का दण्ड दिया।[4]

क्रिमिनल ला (अमेण्डमेण्ट) १९३२ की धारा ७ और डॉ० लोहिया — ऊपर उद्धृत स्पेशल पावर्स एक्ट की तरह डॉ० लोहिया क्रिमिनल ला (अमेण्ड०) १६३२ की धारा ७ को भी अवध कहते थे। इस धारा का शीर्षक है 'रोजी या व्यापार को नुकसान पहुँचाने के लिए छेड़ छाड़।'' इस धारा के अन्तर्गत 'विघ्न, हिंसा का प्रयोग या धमकी'' जिससे किसी आदमी की रोजी या रोजगार को नुकसान पहुँचता है, सजा दी जा सकती है।[5] इसके अन्तर्गत

* * * * *

1—इन्दुमति केलकर लोहिया सिद्धान्त और कर्म पृष्ठ 301
2—इन्दुमति केलकर लोहिया सिद्धान्त और कर्म पृष्ठ 302
3—इन्दुमति केलकर, लोहिया सिद्धान्त और कर्म पृष्ठ 302
4—इन्दुमति केलकर लोहिया सिद्धान्त और कर्म पृष्ठ 302
5—कांग्रेसी राज में न्याय और मजिस्ट्रेट पृष्ठ 12

डॉ० लोहिया को २ नवम्बर सन १६५७ ई० को गिरफ्तार किया गया, क्योंकि उसी दिन लखनऊ मे बिक्री-कर के दफ्तर के अहाते म खडे लोहिया ने दफ्तर म डाक देने आए डाकिए से कह दिया था "आप इस गन्दे बिक्री-कर दफ्तर मे मत जाओ, इसमे होने वाले काम से खाने पीने की चीजो के दाम बढते हैं।'[1] लोहिया जी ने मुकदमे की पेशी मे कहा कि उन्होंने उपयुक्त कानून में उल्लिखित अपराधो में कोई नही किया। उन्होंने डाकिए के काय मे न हस्त क्षेप किया था, न धमकी दी थी, न रुकावट डाली थी और न हिंसा ही की थी। डाकिए ने अपने बयान मे स्वय बताया था कि वह दफ्तर मे गया और उसने डाक बाँटी। लोहिया जी ने कहा कि उन्होने तो अपने विचार मात्र डाकिए से बतलाए थे।

लोहिया जी की मान्यता थी कि हर व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को अपना ज्ञान दे सकता है उसे समझा सकता है, अपनी आस्थाओ और विश्वासो का प्रचार कर सकता है, अवश्य ही यह सब कुछ अहिंसक ढग से होना चाहिए। विचारो के प्रचार का अधिकार मानव का सहज सास्कृतिक अधिकार है—वे विचार चाहे राजनतिक हो धार्मिक, हो आर्थिक हों सामाजिक हो कसे भी हो। सुकरात गाधी, थोरो आदि ने इसी अधिकार का प्रयोग कर युग, परिवतन किया था, मानव-जाति का विकास किया था। लोहिया का तो यहाँ तक कहना है कि उस विचार को भले ही तत्कालीन शासन और जनता भी गलत समझे फिर भी उस गलत विचार के प्रचार का अधिकार मिलना चाहिए क्योंकि सम्भव है भविष्य मे उस विचारक को लोग ईसा, सुकरात आदि नामो से जानें। सस्कृत के महान नाटककार भवभूति ने यही यथाथ इस प्रकार प्रस्तुत किया है।

'उत्पत्स्यते हि मम कोऽपि समानधर्मा ।
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥'[2]

अर्थात समय अनन्त है और पृथ्वी असीम है। अत यदि आज और यहाँ मेरा मूल्याकन नही होता तो कभी न कभी और कही न कही मेरे महत्त्व को मूल्य मिलेगा। इस कथन के अनुसार भी आज का आलोच्य कल का अवतार हो सकता है आज कटघरे में खडा पुरुष कल मुक्तिदाता कहा जा सकता है

* * * * *

1—इन्दुमति केलकर लोहिया सिद्धान्त और कर्म पृष्ठ 378
2—नाटककार भवभूति 'मालतीमाधवम्' भाग 1 श्लोक 2

मुजीब प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। सत्य पर केवल सत्ता या समूह का एकाधिकार नहीं होता। सत्य तो दुर्योधन की राजलक्ष्मी को लात मार कर गरीब विदुर और वनचर पाण्डव का सेवक हो सकता है और सत्तासीन कंस का विनाशक भी हो सकता है।

सत्य सबका रहता है। उसके निर्णय का एकमात्रअधिकार समूह सत्ता या सभा को नहीं हो सकता। इतिहास साक्षी है कि प्राय सत्ता आदि के मद से अधा ने सत्य की हत्या की है। अमरीका का सातवाँ बेडा और सयुक्त राष्ट्र की महासभा म दिसम्बर सन् १९७१ ई० को भारत पाक युद्ध के प्रश्न पर १०४ मत इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। अत लोहिया जी स्पष्ट कहते हैं कि विचार प्रचार का स्वातन्त्र्य मानव विकास का सहज और अनिवार्य अधिकार है, मौलिक शर्त है और सत्य पर किसी दल शासन अथवा देश विशेष का एकाधिपत्य नहीं।

मैं यहाँ पर लोहिया की स्तुति करने नहीं बैठा और न ही उनके सिद्धान्तो अथवा कर्मों को गिराने अथवा उठाने के लिए प्रयत्नशील हूँ। उनको कहाँ असफलता मिली और कहाँ सफलता ? यह भी प्रमुख प्रश्न नहीं है। विचारणीय और प्रशसनीय तो उनके कृत्य हैं जो सदव मानवाधिकारो के लिए सघषरत रहे। भारत म शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जो डॉ० लोहिया की सिद्धान्तनिष्ठ, कर्त्तव्यनिष्ठ, त्यागमय, कष्टमय और सघषमय राजनीति पर सन्देह करता हो। उनकी आजीवन विस्फोटक और साधनामय राजनीति का लक्ष्य व्यक्ति को उसके मौलिक अधिकार प्रदान कराना था।

———

३—अंतर्राष्ट्रीय जाति प्रथा के उन्मूलन का प्रयास

४—विश्व विकास समिति की पहल

५—विश्व-सरकार का स्वप्न

६—अन्तर्राष्टीयतावाद

७—निःशस्त्रीकरण का सशक्त प्रतिपादन

८—साक्षात्कार का सिद्धान्त

विश्व समाजवाद का नवदर्शन

विश्व के अभी तक के समाजवादी आन्दोलनों को डा० लोहिया ने राष्ट्रीय बन्धनों से जकड़ा हुआ पाया। उनके विचार से प्रारम्भ में समाजवाद का विकास अन्तर्राष्टीय विचार के रूप में हुआ। किन्तु प्रथम विश्व युद्ध में कुछ के अलावा संसार के समस्त समाजवादी दलों ने अपनी अपनी पूजीवादी सरकारों के प्रति विद्रोह करने के स्थान में उनके साथ सहयोग किया। फलस्वरूप समाजवाद की अन्तर्राष्ट्रीयता बिखर गई। डॉ० लोहिया की दृष्टि में योरुप के समाजवादी दलों की आस्था अन्तर्राष्ट्रीयता की अपेक्षा राष्ट्रीयता में अधिक रही है। समाजवाद की बुनियादी कमजोरी पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने बताया कि योरुप का समाजवाद वहम और आवडा तक ही सीमित है। उसमें किन्हीं बड़े आदर्शों का उत्साह नहीं है। इसके विपरीत एशिया का समाजवाद आदर्शवादी और उत्साही है किन्तु उसमें ठोसपन का अभाव है। पूजीवाद और साम्यवाद का अपना निश्चित पथ है किन्तु समाजवाद का कोई निश्चित पथ नहीं। अतः समाजवाद या तो साम्यवाद का एक अंग बन जाता है या पूजीवाद का। डा० लोहिया एक ऐसे समाजवाद की रचना करना चाहते थे जो साम्यवाद अथवा पूजीवाद के चंगुल से दूर रहकर अपना एक स्वतन्त्र और सुदृढ मार्ग निश्चित करे।

समाजवाद को एक सुदृढ और स्वतन्त्र मार्ग प्रदान करने के लिए उन्होंने कुछ सुनिश्चित सिद्धान्तों की आवश्यकता अनुभव की। उनका विश्वास था कि सुदृढ और न्यायपूर्ण सिद्धान्तों की नींव पर ही विश्व समाजवाद का कल्याणकारी भवन खड़ा हो सकता है। वे जानते थे कि सिद्धान्त हीन होकर किसी शक्ति के पीछे लगना अनुचित ही नहीं अपितु हानिकार है। उनका सिद्धान्त था कि सिद्धान्त ही शक्ति के स्रोत होते हैं। नीति से शक्ति आती है, शक्ति से नीति नहीं। इसलिए जो व्यक्ति अथवा राष्ट्र अपने सिद्धान्तों को

त्यागकर किन्ही शक्तिशाली व्यक्तियो अथवा राष्ट्रो की चापलूसी या भक्ति मे रत रहता है, वह लोहिया को किञ्चित भी पसन्द नही। अतएव एशिया महाद्वीप को पूजीवादी अथवा साम्यवादी शक्तियो के पीछे न दौडने की चेतावनी देते हुए वे कहते हैं "It must give up the vain desire to acquire policy after strength, for strength flows out of policy "[1]

डॉ० लोहिया चाहते थे कि विचार अथवा सिद्धान्त इतने निष्पक्ष और कल्याणकारी हो कि जिनसे शक्ति अपने आप फूट कर निकल पडे। विचारो की आधुनिक पतित स्थिति पर उनको गम्भीर चिन्ता थी। वे कहा करते थे कि आधुनिक युग के मस्तिष्क मे जकडन आ गई है। सम्पूर्ण इतिहास मे विचारो के द्वन्द्व का कभी भी इतना पतन नही हुआ जितना आधुनिक युग मे आज विचार सृजन के स्थान मे प्रचार मात्र करते है। विचारो का काय शक्ति को एकत्रित करने तक ही सीमित हो गया है। फलस्वरूप बजाय इसके कि शक्ति विचार की सेवा करे विचार स्वय शक्ति की सेवा म रत हो गया है।[2] शक्ति विचारो की स्वामिनी हो गई है।

पूजीवाद और साम्यवाद की अपर्याप्तता —आज का भ्रमित विश्व दो महान् शक्तियो की पूजा मे व्यस्त है। ये दो शक्तियाँ हैं—साम्यवाद और पूजीवाद। ये दोनो व्यवस्थाएँ राजनीतिक और आर्थिक केन्द्रीकरण की प्रतीक हैं। दोनो ही विचार सामूहिक प्रगति का आकषक आदश प्रस्तुत कर शक्ति सचय म लगे हुए हैं। परन्तु दुनिया के वास्तविक प्रश्नो का हल करने की शक्ति दोनो मे ही नही है। वे केवल डॉ० लोहिया ही थे जिन्होंने सवप्रथम साम्यवाद को तो अपर्याप्त बताया ही साथ ही साथ आधुनिक प्रजातन्त्रो को भी पूजीवाद की सज्ञा देकर अपूण सिद्ध किया। अपने क्रान्तिकारी और मौलिक विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा "पूजीवादी और साम्यवादी, दोनोही व्यवस्थाओ मे जन-संस्कृति स्थूल और रूढिग्रस्त होती जाती है और जन-जीवन को एक भद्दापन घेर लेता है।"[3] इस आधार पर पूजीवाद और साम्यवाद दोनो को यूरोपीय सभ्यता की भिन्न शाखाएँ बताकर समाजवाद के एक नए अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त का मूल द्वितीय महायुद्ध म लिखे गये डॉ० लोहिया के लेख 'विश्वासघाती जापान या

* * * * *

1—Dr Lohia Will to Power page 76

2—Dr Lohia Marx, Gandhi and Socialism page 316

3—डॉ० लोहिया कांचन-मुक्ति पृष्ठ 30

आत्म सन्तुष्ट ब्रिटेन में मिलता है। इसमें उन्होंने लिखा था, "मैं तोजो को उतना ही बुरा मानता हूँ, जितना हिटलर या चर्चिल को, क्योंकि यह बुरा हत्याकाण्ड अगर दोनों में से किसी एक की विजय से ही समाप्त होगा तो आज से ज्यादा अच्छी दुनिया बनाने की उम्मीदें मिट्टी में मिल जाएँगी।"[1]

डॉ० लोहिया का मत था कि पूँजीवादी और साम्यवादी गुटों में किसी को कोई भी वास्तविक उपलब्धि प्राप्त नहीं की। पूँजीवादी गुट की जनतांत्रिक और शान्तिमय परिवर्तन में आस्था उसी प्रकार कृत्रिम है जिस प्रकार जीवन का समान स्तर बनाए रखने और विषमता मिटाने का साम्यवादी दावा। साम्यवादी और पूँजीवादी दोनों गुट क्रमशः रोटी और संस्कृति अथवा पेट और मन अथवा आर्थिक लक्ष्य और सामान्य लक्ष्य के भूखे प्रतीत हैं। ये दोनों सभ्यताएँ एकांगी हैं और अपने एकांगी स्वरूप में भी वास्तविक नहीं हैं। यदि ये दोनों शक्तिशाली गुट अपने एकांगी स्वरूप में भी वास्तविक होते तो विश्व में न तो विषमता और भुखमरी रहती और न ही हिंसा का घृणास्पद साम्राज्य। डॉ० लोहिया ने स्पष्ट किया कि सारे मानवों को पेट भर अन्न, "मन की आजादी की प्यास" और "शुद्धवादी" के तीन प्रमुख प्रश्नों का जवाब न सोवियत गुट दे सकता है और न अमरीकी गुट।[2]

'तीसरा खेमा' (तृतीय सभ्यता) अथवा नवीन दशा —उपर्युक्त एकांगी सभ्यताओं से भिन्न एक तृतीय सभ्यता के सृजन का श्रेय डॉ० लोहिया को है। उन्होंने एक ऐसे समाजवादी दशा का प्रतिपादन किया जिसका आधार राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों में समता, सम्पन्नता तथा "वसुधैव कुटुम्बकम्" होगा[3] और जो साम्यवादी तथा पूँजीवादी गुटों में आपसी हानिकारक द्वन्द्व को समाप्त करेगा। विश्व समाजवाद का नवीन दशा "अधिकतम कौशल" की जगह 'सम्पूर्ण कौशल" की सभ्यता को जन्म देगा जिसमें राष्ट्रीय सीमाओं के अन्दर निरन्तर जीवन स्तर न बढ़ाकर, सभी राष्ट्रों में एक अच्छा जीवन स्तर उत्पन्न होगा। यह नई सभ्यता समस्त संसार में लगभग समान उत्पादन द्वारा मानव जाति की समीपता, वर्ग तथा वर्ण और क्षेत्रीय विषमता का अन्त करने का प्रयत्न करेगी। इसकी तकनीकी और प्रशासनीय व्यवस्था इस आवश्यकता के अनुकूल होगी और विकेन्द्रित समुदायों की आपकी महत्ता में

* * * * *

1—'हरिजन', 19 अप्रैल सन् 1942 ई० के अङ्क से
2—Dr Dohia Marx Gandhi and Socialism, page 243
3—Dr Lohia : Interval during politics page 22

आधार पर तथा एक मानवता की एकता द्वारा लोग अपना शासन स्वय चला सकगे। मनुष्य समूह मे और व्यक्तिगत रूप मे अयाय के विरुद्ध सविनय अवज्ञा का प्रयोग कर सकेगा। इस समाजवादी विश्व व्यवस्था मे राष्ट्रो के अदर ही नही अपितु राष्ट्रा के बीच सम्भव समता हागी। यह समता भौतिक, सहानुभूतिगत और आध्यात्मिक होगी।[1] इस सभ्यता के अतगत विश्व-सरकार, विश्व नागरिकता, मानव अधिकारा की मायता, जनतान्त्रिक प्रतिनिधित्व, श्रम की प्रतिष्ठा और मानव व्यक्तित्व के प्रति सम्मान आदि सुलभ होंगे।

इस नवीन सभ्यता मे स्वतन्त्र और अधीन के सम्बन्ध नही होंगे। इसमे अन्यान्याश्रित सम्बन्धा का साम्राज्य हागा। काई राष्ट्र किसी स बडा या छोटा न समझा जायगा। वे समानता के आधार पर अयोन्याश्रित होंगे। इसी प्रकार इसमे न ता माक्सवाद की तरह आत्मा पदाथ के अधीन होगी और न ही गाधीवाद की तरह पदाथ आत्मा के अधीन। दोना एक दूसरे को प्रभावित करते हुए एक दूसरे से सहयोग करगे। वे अयोयाश्रित हागे। आत्मा और पदाथ जसा सम्बन्ध ही आर्थिक लक्ष्य और साधारण लक्ष्य, राष्ट्रीयता और अतर्राष्ट्रीयता, शाति और करुणा, विचार और शक्ति, धम और राजनीति आदि के मध्य भी हागा। यहाँ कही काई द्वद्व नही। सवत्र सतुलन और सामजस्य की इसमे धूम होगी।

डॉ० लोहिया की उपर्युक्त योजना अपन मे एक अपूव और स्वर्गिक आदश है। किन्तु किसी दशन की समीक्षा करते समय हम केवल उसक साध्य और लक्ष्य से ही सतुष्ट नही हो सकते। कमरे म बठे बठे कोई भी प्रबुद्ध प्राणी किसी सुगन्धित फूलो के बगीचे की कल्पना कर सकता है। हमे देखना यह होता है कि उस सुन्दर बाग को एक वास्तविकता बनाने के लिए क्या किसी सुन्दर भूमि का भी सृजन किया गया है? इस कसौटी पर डा० लोहिया के नवीन दशन का जब हम कसते हैं तब हमे मालूम हाता है कि उनके दशन का अनुगमन करन पर निश्चित ही वह लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। उनर दशन म व्यक्ति ही साध्य और साधन माना गया है। वही समाज का परिवर्तित करता है और समाज स स्वय म भी परिवतन लाता है। डॉ० लाहिया ने व्यक्ति को गरिमा, दायित्व अधिकार-चेतना स भर दिया है। इसके लिए शिक्षा, रचनात्मक काय आदि की व्यवस्थाएँ साधन के रूप मे दे

* * * * *

1—डॉ० लोहिया : नया समाज नया मन पृष्ठ 11

दी है। उन्होंने यदि व्यक्ति के मन को सँभाला है तो दूसरी तरफ उसके पेट के लिए भी योजनाएँ प्रस्तुत की हैं। उसके लिए जिन आध्यात्मिक और भौतिक व्यवस्थाओं की आवश्यकता होगी, वे सब उन्होंने प्रस्तुत की हैं। अन्याय के विरोध मे सघर्ष करने के लिए सगठन के सिद्धान्तो और व्यवहारो को भी उन्होंने प्रदान किया है। उन्होंने साफ कहा है कि जब कोई राज्य दूसरे राज्य पर अन्याय कर रहा हो, तो वहाँ की जनता को स्वय अपनी ही अन्यायी सरकार के विरुद्ध क्रांति कर देना चाहिए। चूंकि विश्व के राजनीतिज्ञ और विशेषत *सत्ताधारी राजनीतिज्ञ आधुनिक विश्व की अव्यवस्था का कारण हैं।* इसलिए डॉ० लोहिया विश्व की समस्त सरकारों के विरुद्ध हैं। १६ जुलाई सन १९५१ ई० को अमरीका मे एक वार्ता के दौरान उन्होंने स्पष्टत कहा था —I am disrespectful of all Governments and heads of Governments and the like '[1] डॉ० लोहिया द्वारा दिये गये इन सब सिद्धान्तो और प्रोत्साहनो के होते हुए भी चचल प्रकृति के सामान्य मानव से यह आशा की जा सकती कि वह इस हे प्रकार की सम्पूर्ण कौशल की सम्यता प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हो सकता है।

यही कारण है कि डा० लोहिया के मतानुसार इस विश्व-समाजवाद के नवदर्शन के सच्चे वाहक केवल वही व्यक्ति हो सकते हैं जो विश्व मे किसी भी व्यक्ति अथवा राष्ट्र के प्रति किसी प्रकार का भेद भाव नही रखते। उनकी मान्यता थी कि किसी भी प्रकार से किसी के प्रति द्वैत भाव रखने वाला कभी भी सच्चा समाजवादी नहीं हो सकता। योरुप और अमरीका के समाजवादी दलो की राष्ट्रीय सीमाओ मे बँधी सकुचित प्रवृत्ति की भर्त्सना करते हुए और विश्वव्यापी बहुरगी समता तथा सच्चे समाजवादी की प्रकृति का विश्लेषण करते हुए उन्होंने कहा था No one is a socialist unless he is equally free and frank and friendly with socialists of all lands and skins '[2]

तटस्थता और तृतीय खेमे में अन्तर —सामान्यत डा० लोहिया के इस तृतीय खेमे मे साधारण बुद्धि को "तटस्थ गुट' का भ्रम हो सकता है, किन्तु वास्तविकता कुछ और ही है। डॉ० लोहिया ने अपने खेमे म सक्रियता,

* * * * *

1—Harris Wofford J R Lohia and America meet page 39
—Dr Lohia Marx Gandhi and Socialism page 340

ठोसपन, निर्भीकता और सपूर्ण कौशल वाले दर्शन का रग भर दिया है जो कि तटस्थ राज्यों की निष्क्रियता, खोखली सिद्धान्तप्रियता भयातुरता और राष्ट्रहितवादी दर्शन से भिन्न है। भारत की तटस्थता मे भी डॉ० लोहिया आदर्श और व्यवहार दोनों का अभाव पाते हैं। इस के अमरीका और रूस से स्वतत्र भी नही समझते। उन्होंने इसे कृति—शून्यता के कारण नकारात्मक नीति कहा है। इसी प्रकार अन्य तटस्थ राज्य उनकी दृष्टि मे सिद्धान्त मे व चाहे जसे हो, व्यवहार म अमरीका अथवा रूस के झूले म झूलते रहते हैं। डॉ० लोहिया के तृतीय खेमे की नीति दोनो गुटो से अलग रहने की है किन्तु उसका अर्थ पीछे हटना नही, बल्कि शक्तिपूर्ण सयुक्त राष्ट्रो के सघ का निर्माण करना है।

तटस्थ गुट और "तृतीय खेम' मे सबसे बडा अन्तर यह है कि तृतीय खेमा नवीन समाजवादी दर्शन पर आधारित होगा जबकि तटस्थ राज्य राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से किसी दर्शन विशेष के कारण नही अपितु केवल गुट निरपेक्षता-नीति के कारण गुटो से दूर रहते हैं। अत तटस्थ गुट अस्थायी हैं, जब कि तृतीय खेमा निस्वार्थ ढग मे अन्तर्राष्ट्रीय समता के व्याव हारिक दर्शन पर आधारित होने के कारण स्थायी है। यह एक ऐसी विश्व व्यवस्था है जिसके आकर्षण मे फँस कर साम्यवादी और पूँजीवादी गुट अपने द्वन्द्व भूल सम्भवत उसी मे समाहित हो सकते है।

समीक्षा —जीवन एक सशक्त सामजस्य है और इसलिए सशक्त सामजस्यपूर्ण दर्शन ही इसका आधार हो सकता है। डा० लोहिया का नवीन समाजवादी दर्शन विभिन्न विरोधी तत्वो का मौलिकता युक्त सामजस्य है। उनका नवीन समाजवादी दर्शन एक ऐसी विश्व-व्यवस्था का सृजन करता है, जिसम पट और मन, आर्थिक लक्ष्य और सामान्य लक्ष्य, सापेक्षता और निर-पेक्षता, सिद्धान्त और व्यवहार, विचार और शक्ति, आत्मा और पदार्थ क्रान्ति और करुणा राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता, व्यक्ति और विश्व आदि परस्पर विरोधी समझे जाने वाले तत्व अपने द्वन्द्व को भूलकर मानव विकास के लिए एक दूसरे से सहयोग करते हैं। डॉ० लोहिया के विचार तो आशावादी और उचित हैं किन्तु कठिनाइ यह है कि अभावो, दुर्गुणो और मत भिन्नता से आक्रान्त मानव किस प्रकार इस सभ्यता को प्राप्त करने हेतु सयमित तथा सगठित हो सकते हैं ? काश सब मानव लोहिया होते।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के पुनर्गठन का नवीन आधार

संयुक्त राष्ट्र संघ के दोष —डॉ० लोहिया संयुक्त राष्ट्रसंघ का पुनर्गठन चाहते थे क्योंकि उनकी दृष्टि में यह संस्था विश्व शान्ति के लिए अपर्याप्त है। इस संस्था के मुख्य दोष सार्वभौमिकता का अभाव, सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता, निषेधाधिकार और अगम्यता हैं। उनका मत था कि शासकों के चरित्र के आधार पर सदस्यता का निषेध दलबन्दी और षडयन्त्रों को जन्म देता है। सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता और निषेधाधिकार के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय वर्ण-व्यवस्था को वैधानिक अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। स्थायी सदस्यों को विशेषाधिकार प्राप्त ब्राह्मण और अन्य सदस्यों को अछूत जैसा उपेक्षित बना दिया गया है। इसके अतिरिक्त विश्व की ⅓ (एक तिहाई) आबादी वाले योरोप को संयुक्त राष्ट्र संघ की सर्वोच्च कार्यपालिका में तीन चौथाई मत दिया जाना और महासभा में अधिक से अधिक मत दिया जाना विषमता का आश्चर्यजनक प्रतीक है।[1] उपर्युक्त दोषों के कारण डॉ० लोहिया के मत में, मानव जाति की सामूहिक अन्तरात्मा का मन्दिर बनने के स्थान में संयुक्त राष्ट्रसंघ षड्यन्त्रों का अखाड़ा बन गया है। इस प्रकार का संयुक्त राष्ट्रसंघ रोग में अवरोध भले ही उत्पन्न कर दे किन्तु उसे समाप्त न कर सकेगा क्योंकि इसके निर्णय शक्ति और गुट के आधार पर लिए जाते हैं। यह समस्त राष्ट्रों को एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्प्रभुता के अधीन नहीं ला सकता क्योंकि यह विभिन्न राष्ट्रों की आर्थिक और सैनिक शक्तियों के असंतुलन को समाप्त करने में असमर्थ है।[2]

संयुक्त राष्ट्रसंघ में दी गई सामूहिक सुरक्षा-व्यवस्था की आलोचना करते हुए डॉ० लोहिया ने कहा कि पूर्णतः निरपेक्ष दृष्टि से सामूहिक सुरक्षा एक ऐसा आदर्श है जिसके सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं हो सकता। किन्तु यह आदर्श केवल विशिष्ट रीति से बने हुए और निश्चित कार्यकारी अधिकारों वाले एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन द्वारा ही ठोस स्वरूप पा सकता है। संयुक्त राष्ट्रसंघ में संयुक्त रूप से आक्रमणकारी को दबाने के प्रस्तावों पर राष्ट्रों की स्वीकृति और व्यवहार में विपरीत दिशा सामूहिक सुरक्षा के खोखलेपन को स्पष्ट करती है। डा० लोहिया की दृष्टि में, यह पाखण्ड, संकटों और

* * * * *

1—Dr Lohia Will to Power page 75

2—Dr Lohia Marx Gandhi and Socialism page 396

क्रोधावेशों को विकसित करके अन्तर्राष्ट्रीयता में बाधा डालता है। केवल वही संयुक्त राष्ट्रसंघ सामूहिक सुरक्षा प्रदान कर सकता है जो समस्त राष्ट्रों का अंतरात्मा का भण्डार गृह होने के कारण उन्हें स्वीकाय हो और जिसका इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाने का पूर्ण अधिकार प्राप्त हो। जब तक ऐसा संगठन नहीं बनता और सामूहिक सुरक्षा की शान्तिपूर्ण व्यवस्था का निर्माण नहीं होता, मनुष्य जाति को आपसी सुरक्षा के लिए क्षेत्रीय संधियाँ करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए यद्यपि ऐसी सन्धियों में दूसरे महाद्वीपों के दूर-वर्ती देशों को सम्मिलित नहीं करना चाहिए।

पुनर्गठन की योजना —डॉ० लोहिया संयुक्त राष्ट्रसंघ का इस प्रकार से पुनर्गठन चाहते थे कि प्रत्येक उस राष्ट्र को सदस्यता का अधिकार हो जो कि अपने मामलों को नियन्त्रित करने के लिए एक सरकार रखता हो। उनकी दृष्टि में सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता और निषेधाधिकार को समाप्त कर विश्व को ऊँच और नीच ब्राह्मण और शूद्र में विभाजित होने से बचाने का प्रयास करना चाहिए। डा० लोहिया के शब्दों में, "The united nations must be revised in three specific directions so as to end restrictive membership permanent seats on the security council and the right of veto, [1] उनकी इच्छा थी कि संयुक्त राष्ट्र संघ का गठन इस प्रकार का हो कि वह मानव जाति के दिल और दिमाग का स्वीकाय हो। वे चाहते थे कि संयुक्त राष्ट्रसंघ का पुनर्गठन भविष्य की विश्व-सरकार के लिए एक अच्छी पृष्ठ भूमि तयार करे और राष्ट्रों के मध्य आर्थिक और सैनिक विषमताओं को समाप्त कर।

समीक्षा —डॉ० लोहिया ने संयुक्त राष्ट्रसंघ के पुनर्गठन के जो आधार बतलाए हैं वे बहुत ही स्वर्णिम हैं। किन्तु उन्हें कम से कम विश्व की वर्तमान परिस्थितियों में, व्यावहारिक रूप देने का प्रयत्न प्लेटो के काल्पनिक आदर्श राज्य को धरती पर उतारने के समान अशक्य प्रतीत होता है। आज के अपर्याप्त अधिकार वाले संयुक्त राष्ट्रसंघ के आदेशों का राष्ट्र यदि पालन नहीं कर सकते हैं तो उनसे यह आशा कैसे की जा सकती है कि वे एक पर्याप्त शक्तिशाली विश्वव्यापी संघ का निर्माण कर सकेंगे। सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता और निषेधाधिकार की समाप्ति का प्रतिपादन कर

* * * * *

1—Dr Lohia Will to Power page 80

डॉ० लोहिया ने अन्तर्राष्ट्रीय ममता का स्वर्णिम आदर्श विश्व के समक्ष रखा है, किन्तु उनका यह विचार बालू में से तेल निकालने के समान है। क्योंकि डॉ० लोहिया जैसी सदबुद्धि रूस और अमरीका में आना असम्भव प्राय है। इस बात की आशा करना व्यर्थ है कि वे अपनी अपनी निषेधाधिकार और स्थायी सदस्यता की विशेष स्थिति छोड़कर छोटे छोटे राष्ट्रों के बहुमत से अपने को जकड़ कर बाँध लेंगे। यदि गौतम बुद्ध तथा गाँधी आदि होते तो शायद व्यक्तिगत रूप से ऐसा कर भी लेते, किन्तु अपने अपने क्षेत्र की अपार जनता के प्रति उत्तरदायी नेतागणों से तो इस प्रकार की कल्पना भी नहीं की जा सकती कि वे स्वयं ही अपनी जनता के लिए एक बन्धन डाल लेंगे, भले ही इस बन्धन में सच्चे मोक्ष की कल्पना निहित हो।

अन्तर्राष्ट्रीय जाति प्रथा के उन्मूलन का प्रयास

डा० लोहिया का मत है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद में पाँच बड़े राष्ट्रों को स्थायी सदस्यता और निषेधाधिकार देकर अन्तर्राष्ट्रीय जाति प्रथा को वैधानिक मान्यता दी गई है। इसके अतिरिक्त विश्व के विभिन्न राष्ट्रों में जाति और धर्म के नाम से हो रहे अन्यायों को उन्होंने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देखा और उन्हें समाप्त करने का प्रयत्न किया। एशिया की राजनीति में जाति और धर्म के कुप्रभाव की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि एशिया की सर्वप्रथम कमजोरी राजनीति में धर्म, जाति भाषा या वंश की हस्ती मान्य करना है। इन्डोनेशिया में मुसलमानों की कट्टरता को उन्होंने राजकीय दलों द्वारा प्रकट होते देखा। पश्चिम एशिया को भी उन्होंने धार्मिक कट्टरता से जर्जर बतलाया और उससे सम्यक दृष्टि और विवेक-बुद्धि से काम करने का आग्रह किया।

नीग्रो और लोहिया —जुलाई सन १९५१ की अपनी अमरीका यात्रा में दक्षिणी गोरों से उन्होंने जाति भेद की बात की। इस हेतु उन्होंने नीग्रो लोगों को अफ्रीका की ओर ध्यान देने और जेल जाने का सन्देश दिया। १९ जुलाई सन् १९५१ ई० को हॉवर्ड विश्वविद्यालय में सायंकाल भाषण देते हुए उन्होंने राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जाति प्रथा के प्रति अपनी घृणा व्यक्त की और नीग्रो लोगों को जाति भेद नीति समाप्त करने के लिए सविनय अवज्ञा आन्दोलन छेड़ने को प्रोत्साहित किया। उन्होंने कहा कि नीग्रो को जाति भेद उन्मूलन करते समय अपनी अल्प संख्या के कारण शक्तिहीनता अनुभव नहीं करनी चाहिए क्योंकि किसी अच्छे काम को साहस से करने पर अन्य व्यक्ति भी सह

योग प्रदान करना प्रारम्भ कर देते हैं, जिससे परिणामस्वरूप अल्पसंख्यक समुदाय भी बहुसंख्यक में परिवर्तित हो जाता है। उन्होंने कहा यदि वे अमेरिका वासी होते तो नीग्रो लोगों और उनसे भी अधिक गोरों के स्वास्थ्य के लिए सविनय अवज्ञा करते। जाति के समस्त रूपों की समाप्ति के लिए तन, मन, धन को भी त्याग करने का आह्वान करते हुए उन्होंने कहा, 'In any case to the destruction of the Caste system in all its forms, we must dedicate our lives'[1]

जाति रंग भेद की समाप्ति और मानव की एकता —डॉ० लोहिया ने अपने इस अमरीकी भाषण में स्पष्ट किया कि कहीं कोई अन्तर नहीं है—मिपोली में आठ मोटे होते हैं, पेन्सि में पतले। बर्लिन में चमड़ी सफेद होती है और नेशविले में काली। लेकिन अन्दर दिल सब का एक-सा होता है। भाषण के बाद वे विश्वविद्यालय के अध्यक्ष डॉ० जानसन से मिले और उनसे आग्रह किया कि जाति भेद के विरुद्ध वे सविनय अवज्ञा करने और जेल जाने का काय क्रम बनाए। किन्तु डॉ० जानसन ने उदास होकर बताया, "नहीं, हमारी हालत हिन्दुस्तान जसी नहीं है, हमारी संख्या बहुत कम है। केवल एक करोड़ के अन्दर।"[2] फिर भी उन्हें प्रोत्साहित करते हुए डा० लोहिया ने कहा कि उन्हें संख्या का ध्यान न रख कर अपने लक्ष्य के लिए संघर्ष करते रहना चाहिए। डॉ० लोहिया ने जाति प्रथा को एक मानसिक रोग बतलाया, किन्तु साथ ही साथ यह आशा भी प्रगट की कि राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इसको शीघ्र निकाल फेंका जाएगा, क्योंकि मानव का मस्तिष्क इस रोग पर विजय प्राप्त करने के लिए पर्याप्त रूप से स्वस्थ और सक्षम है।

समीक्षा —अन्तर्राष्ट्रीय जाति प्रथा को समाप्त करने के लिए डॉ० लोहिया ने जो प्रयत्न किए वे अत्यन्त सराहनीय हैं। इस सम्बन्ध में उनकी विशेषता यह थी कि वे जाति प्रथा को केवल जन्म पर ही आधारित नहीं मानते। उनकी दृष्टि में "दौलत', स्थान और बुद्धि आदि पर आधारित सम्बन्धों में जब जकड़न आ जाती है तब जाति का सृजन होता है।' इसी आधार पर वे सुरक्षा परिषद में पाँच राष्ट्रों के निषेधाधिकार में, नीग्रो और गोरों के सम्बन्धों में, एशिया के धर्म और जाति पर आधारित राजनैतिक दलों में तथा 'धनी और

* * * * *

1—Harris Wofford J R Lohia and America Meet page 57

2—इन्दुमति केलकर लोहिया सिद्धान्त और कर्म पृष्ठ 229

निर्धन राष्ट्रों के सम्बन्धों में जातीयता को देख सके। जाति-समाप्ति का प्रयास करने वाले अन्य विचारक अपने संकुचित दृष्टिकोण के कारण इस समस्या का अन्तर्राष्ट्रीय जगत में बिल्कुल ही पहचान न सके। इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए डॉ० लोहिया ने लिखा है कि 'वास्तव में मानव मस्तिष्क एक पेचीदा यन्त्र है कि आन्तरिक वर्ण व्यवस्था के विरुद्ध न्याय के लिए अपनी सारी शक्ति लगा कर भी अन्तर्राष्ट्रीय वर्ण-व्यवस्था के अन्याय को बिल्कुल देख और समझ ही न पाए।[1] जाति के सम्बन्ध में डॉ० लोहिया का दृष्टिकोण भले ही जन्म पर आधारित भारतीय जाति प्रथा से मेल न खाता हो लेकिन समाजशास्त्रीय दृष्टि से तो उचित है, क्योंकि इस शास्त्र में भी डॉ० लोहिया की तरह जाति को जड़ वर्ग की संज्ञा दी गई है और यदि उनकी जाति की परिभाषा वैज्ञानिक और सत्य है तो यह कहना भी एक भयंकर भूल होगी कि वे किसी अनुपस्थित शत्रु से लड़ रहे थे।

विश्व विकास समिति की पहल

कर्ज और सहयोग नीति से हानियाँ —डॉ० लोहिया ने विश्व शान्ति और सम्पूर्ण कौशल की नवीन सभ्यता की प्राप्ति हेतु एक विश्व विकास संस्था की स्थापना को अनिवार्य बतलाया। उनकी दृष्टि में आधुनिक विश्व रूस और अमरीका की दो महान शक्तियों में विभाजित है और ये शक्तियाँ अपने-अपने पक्ष को प्रबल बनाये रखने के लिए पतित और निर्धन राष्ट्रों को सहयोग देती है। इस आर्थिक सहयोग का परिणाम यह होता है कि सहायता प्राप्त करने वाले राष्ट्रों में हीन भाव और सहयोग देने वाले की राष्ट्रों में अहंभाव का प्रादुर्भाव वाले चापलूसी में स्वाभाविक तौर से रत रहना पड़ता है तथा उनकी सही अथवा गलत नीतियों का समर्थन करना पड़ता है। विदेशी सहायता लेने और देने वाले दोनों राष्ट्रों को भ्रष्ट करती है। कूटनीति और विदेशी सहायता की इस द्विगुणित बुराई को व्यक्त करते हुए डॉ० लोहिया ने कहा है, Foreign aid as at present administered tends to corrupt the giver as well as the taker The giver condescends and tends to dominate while the receiver learns the cunning of threats and cajolings '[2]

* * * * *

1—डॉ० लोहिया इतिहास-चक्र पृष्ठ 79
2—Dr Lohia Marx Gandhi and Socialism page 466

इस प्रकार की विदेशी सहायता से विश्व मे उचित तक्नीकी और उत्पादन मे समानता नही आ सकती। इससे तो पूंजीवादी विचार सुदृढ होते हैं। इसके अतिरिक्त विदेशी सहायता प्राप्त करने वाले राष्ट्र के अन्दर भ्रष्टाचार बेकारी, आलस्य, घूसखोरी और खूनी प्रशासन बढता है। इतना ही नहीं, कर्जनीति और सहयोग-नीति से गुटबन्दी और गुटबन्दी से विश्व युद्ध की सभावनाओ को बल प्राप्त होता है।[1] कर्जनीति का एक दोष यह भी है कि कर्ज देन वाले राष्ट्र अपने ही हितो की सुरक्षा के लिए कर्ज देते हैं, दूसरे राष्ट्रो के विकास के लिए नही। २६ जुलाई सन् १९५१ ई० को सनफ्रासिसको (अमरीका) मे भाषण देते हुए डॉ० लोहिया ने कहा था कि अमरीका का धन एशिया मे एशिया को बचाने के लिए नहीं, अपितु अमरीका को बचाने के लिए जाता है और ठीक यही बात प्रत्येक राष्ट्र पर लागू होती है।

कर्जनीति की समाप्ति और विश्व विकास सस्था की योजनाएँ — उपर्युक्त कारणो से डॉ० लोहिया ने कर्जनीति और विदेशी सहायता को अनुचित ठहराया और उसकी समाप्ति का प्रतिपादन किया। दूसरे देशो को कर्ज देने वाले राज्यो से उन्होने कहा, 'If you want to give foreign aid, think of the world as a single family '[2] सम्पूर्ण विश्व के राष्ट्रो का एक परिवार के भाइयो की तरह एक दूसरे को सहयोग देने के लिए उन्होने विश्व विकास सस्था के निर्माण का आदेश रखा। इस विश्व विकास सस्था को प्रत्येक राष्ट्र अपनी क्षमता के अनुसार चन्दा देगा और आवश्यकतानुसार सहयोग ले सकेगा।

विश्व विकास सस्था का महत्त्व —विश्व विकास सस्था के महत्व पर प्रकाश डालते हुए डॉ० लोहिया ने स्पष्ट किया कि विश्व विकास-सस्था ही ऐसी सस्था है जो आन्तरिक समीपता की भावना को समस्त विश्व के मच तक ले जा सकती है और राष्ट्रीय सीमा के अन्दर जीवन स्तर बढाने की भावना का परिवर्तित करके सम्पूर्ण ससार के लिए उन्नत जीवन स्तर का सदेश दे सकती है। केवल यही सस्था ऐसी है जो सभ्यताओ के उत्थान पतन और युद्ध को रोककर एक कभी न गिरने वाली ऐसी विश्व-सभ्यता ला सकती है जिसमे लेने और देने वाले दानो राष्ट्रो का भला ही सकेगा और वर्ग तथा

* * * * *

1—डा० लोहिया इतिहास-चक्र पृष्ठ 76-77
2—Dr Lohia Interval during Politics page 23

व ण व्यवस्थाहीन सम और सम्पन्न समाज मे मानव चिरानन्द का अनुभव करेगा।[1]

विश्व विकास-संस्था के मार्ग की समस्याएँ और उनका हल —विश्व-विकास संस्था के निर्माण में आने वाली बाधाओं पर दृष्टि डालते हुए डॉ० लोहिया ने कहा कि राष्ट्र अपनी सेनाओं को सुदृढ करने के लिए अपनी सुविधाओं को भी सीमित कर कष्ट उठा लेते हैं किन्तु दूसरे राष्ट्रों की समृद्धि के लिए कष्ट नही उठा सकते। ऐसे राष्ट्र इस वास्तविक सत्य को नही समझ पाते कि उनकी सैनिक तयारी प्रदर्शन योग्य ढाल है और निधन राष्ट्रो को दी गई निःस्वार्थ और निष्कपट सहायता उनकी स्वय की अदृश्य सुरक्षा है। इन कुप्रवृत्तियो के बावजूद डॉ० लोहिया ने आशा व्यक्त की कि विश्व विकास संस्था के निर्माण हेतु मानव मे मानवीय समझदारी जागृत होगी। उनका मत था कि जब तक इस संस्था का निर्माण नही होता तब तक अन्त र्राष्ट्रीय समाजवाद ऐसी आरम्भ योजनाओ को कार्यान्वित करने का प्रयत्न करेगा जो कि व्यापारिक संघो सहकारी समितियो, कृषक संगठनो तथा अन्य सब इच्छुक व्यक्तियो द्वारा एकत्रित संयुक्त पूजी पर अवलम्बित होगी। उदारवादी शांतिवादी और धार्मिक संगठन भी इस आरम्भण में हाथ बँटाकर सम्मिलित हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त डॉ० लोहिया का मत था कि विदेशो मे स्थित समस्त ऐसी पूजी पर मे स्वामित्वाधिकारी राष्ट्र का स्वामित्वाधिकार समाप्त होना चाहिए जिस पर कि पूजी से अधिक लाभ अथवा ब्याज प्राप्त हो चुका हो। ऐसी पूजी पर उसी देश का स्वामित्व होना चाहिए जिसमे कि वह स्थित है। इस सन्दर्भ म उन्होने उपनिवेशवाद और दूसरे राष्ट्र मे सेनाओं के रहने को अनुचित बतलाया।[2]

समीक्षा —विदेशी सहायता अथवा कजनीति उन्मूलन सम्बन्धी डॉ० लोहिया का विचार राष्ट्रों मे स्वावलम्बन और स्वाभिमान का भाव भरता है। उनका यह विचार भी उचित है कि राष्ट्र अपने हितो को ध्यान में रख कर ही अन्य राष्ट्रो की सहायता देते हैं। किन्तु उनका यह कहना गलत है कि इससे सहायता पाने वाले राष्ट्र का हित नही होता, और यदि हित नही होता तो इसमे सहयोग प्राप्त करने वाले राष्ट्र की अकुशलता का दोष है, न कि सहयोग देने वाले राष्ट्र का। सहयोग देने वाला राष्ट्र तो उसी समय

* * * * *

1—डॉ लोहिया इतिहास-चक्र पृष्ठ 77
2—Dr Lohia Marx Gandhi and Socialism page 467

दोषी ठहराया जा सकता है जबकि वह अनुचित लाभ उठाये । अब यह सहयोग प्राप्त करने वाले राष्ट्र का कर्त्तव्य है कि वह इस सम्बन्ध मे सचेत रहे ।

हो सकता है कि विदेशी सहयोग और कजनीति के कारण गुटबन्दी और युद्ध का आंशिक प्रश्रय मिलता हो, किन्तु क्या विदशी सहयोग और कजनीति के अतिरिक्त अन्य एसे अनार्थिक कारण नही हैं जिनस गुटबन्दी और युद्ध की सम्भावना बढे । आधुनिक युग मे यदि विदेशी सहयोग की व्यवस्था बन्द हो जाय तो विकासशील राष्ट्रो का विकास भी कम से कम आंशिक रूप में आबद्ध हो सकता है । जहाँ तक डॉ० लोहिया की विश्व विकास समिति की योजना का प्रश्न है यह नि सन्देह सराहनीय है । इस योजना मे कोई दोष नही प्रतीत होता, सिवाय इसके कि उन सम्भव किस तरीके से बनाया जाए। विश्व विकास समिति की स्थापना तक डॉ० लोहिया ने विभिन्न सघो द्वारा विभिन्न राष्ट्रों के सहयोग के लिए जिस सयुक्त पूजी के निर्माण की योजना दी है मतैक्य के अभाव में उसकी सम्भाव्यता पर भी सदेह होता है ।

विश्व-सरकार का स्वप्न

विश्व-सरकार की स्थापना के आन्दोलन के डॉ० लोहिया प्रमुख समर्थक थे । सन् १९४६ ई० मे विश्व-सरकार के विश्व आन्दोलन का अधिवेशन स्टॉकहोम मे हुआ, जिसमें विश्व सरकार आन्दोलन की भारतीय शाखा के प्रतिनिधि के रूप मे डॉ० लोहिया ने भाग लिया । वहाँ भाषण देते हुए उन्होंने कहा कि साम्यवाद और पूजीवाद विश्व में हर प्रकार के केन्द्रीकरण का जन्म दे रहे हैं जिसको हटाने के लिए एक विश्व सरकार की आवश्यकता है । विश्व-सरकार की स्थापना के लिए उन्होने राष्ट्रो मे मतैक्य लाने की आवश्यकता पर बल दिया ।

विश्व-सरकार की स्थापना के साधन —विश्व-सरकार के स्थापनार्थ डॉ० लोहिया ने कहा कि स्वतन्त्र और औपनिवेशिक राष्ट्रों के बीच उत्पादन की विषमता समाप्त होनी चाहिए और प्रत्येक राष्ट्र के श्रमिकों को समान वेतन प्राप्त होना चाहिए । प्रत्येक राष्ट्र मे जनता के लिए समान रोजगार की व्यवस्था होनी चाहिए । विश्व के हिस्सों म पहले समानता और तब समृद्धि आनी चाहिए ।[1] डा० लोहिया के मत मे, इन समस्त उद्देश्यों की पूर्ति अन्तर्रा

* * * * *

1— Dr Lohia Marx Gandhi and Socialism page 396

ष्ट्रीय सत्याग्रह द्वारा हो सकती है। इस हेतु २६ जुलाई सन् १९५१ ई० को अमरीका के अपने अंतिम भाषण मे उन्होने गाधी जी की तरह विश्वस्तरीय रचनात्मक सेवा और अन्याय के प्रतिकार हेतु जनता का आह्वान किया। उन्होने कहा कि जिस प्रकार फ्रास की ससद ने फ्रास के राजा से सविधान निर्माण की अपनी जिद् को स्वीकार करवा लिया था, उसी प्रकार भिन्न राष्ट्रों की जनता अपने अपने राजाओ के (वर्तमान राष्ट्रीय सरकारो) के विरुद्ध असहयोग कर विश्व-सरकार की स्थापना हेतु उन्हे तयार कर सकती है।[1]

विश्व-सरकार का स्वरूप —डॉ० लोहिया के मतानुसार सम्पूर्ण विश्व व्यवस्था ग्राम मण्डल प्रात, राष्ट्र और विश्व जसे पाँच खम्भो पर आधारित होगी। इन पाँचो इकाइयों के अपने-अपने क्षेत्र म निश्चित अधिकार होंगे। विश्व-सरकार की ससद म दो सदन होगे। निम्न सदन क सदस्यो का चुनाव सीधे वयस्क मतदाताओ द्वारा जनसख्या के आधार पर होगा और उच्च सदन मे प्रत्येक छोटे-बडे राज्य को समान प्रतिनिधित्व प्राप्त होगा। विश्व-ससद वर्ग और वर्णहीन होगी तथा उसम मानवीय निर्णय मानव जाति की जागति के लिए होंगे। प्रत्येक राष्ट्र के प्रतिरक्षा व्यय का कुछ हिस्सा विश्व सरकार का देकर उसकी एक सेना खडी की जाएगी और अन्ततोगत्वा राष्ट्रीय सेनाओं पर अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण स्थापित किया जाएगा।[2] डा० लोहिया ने कहा कि विश्व-सरकार के प्रागण में गुणो के आधार पर विवाद निपटाये जाएँगे न कि सैन्य अथवा अन्य प्रकार की शक्ति के आधार पर। मानव जाति के निर्णयो को कोई एक देश भग न कर सकेगा। इस अन्तर्राष्ट्रीय सगठन मे भय और युद्ध की धमकियों की अनुपस्थिति होगी। यह सगठन मानव जाति की अन्तरात्मा का भण्डारगृह होगा।

समीक्षा —डॉ० लोहिया की विश्व सरकार की कल्पना एक अप्राप्य आदर्श सी प्रतीत होती है क्योकि विश्व में यदि एक ओर सगठन की प्रवृत्ति दिखलाई पडती है तो दूसरी ओर बिखराव की प्रवृत्ति उससे भी अधिक। आज तो छोटे से घर के भाई आपस मे मिलकर नही रह पाते तो हम यह आशा किस प्रकार करें कि आज के सम्प्रभुता सम्पन्न विशाल राज्य अपनी सर्वोच्च सत्ता और अहं का त्याग कर विश्व व्यवस्था मे सम्मिलित हो जाएगे। फिर

* * * * *

1—Harris wofford J R —Lohia and America meet page 12

2 इन्दुमती केलकर लोहिया सिद्धान्त और कर्म पृष्ठ 402

भी इतनी स्वर्णिम अवस्था के प्रयत्न मे मानव यदि न चवे तो बहुत ही अच्छा हो।

अन्तर्राष्ट्रीयतावाद

अन्तर्राष्ट्रीयतावाद वह भावना है जो व्यक्ति को अपने राष्ट्र के साथ-साथ अन्य राष्ट्र से प्रेम करना सिखाती है। अन्तर्राष्ट्रीयता विश्व के राष्ट्रो के बीच शान्तिपूर्ण सहयोग की वृद्धि करती है। इसका मूल तत्व मानवता और विश्व बन्धुत्व की भावना है। अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के उपयुक्त तत्वो के आधार पर स्पष्ट होता है कि डा० लोहिया केवल सैद्धान्तिक दृष्टि से ही नही, अपितु व्यावहारिक रूप मे भी अन्तर्राष्ट्रीयतावादी थे। उन्होने सम्पूर्ण ससार में अन्तर्राष्ट्रीयता की अभिवृद्धि और नवीन विश्व के सृजन हेतु चार सूत्री योजना प्रस्तुत की —(१) एक देश मे दूसरे देश की जो पूजी लगी है उसको जब्त करना (२) सभी लोगो को ससार मे कही भी जाने और बसने का अधिकार (३) विश्व के सभी राष्ट्रो का राजनतिक स्वतन्त्रता (४) विश्व-नागरिकता।[1] इसके अतिरिक्त डॉ० लोहिया ने राष्ट्रो की सर्वांगीण समानता पर बहुत बल दिया। उन्होने अन्तर्राष्ट्रीय जाति प्रश्न उन्मूलन का अत्यधिक प्रयास किया और विश्व-सरकार का प्रबल समर्थन किया।

डा० लोहिया की राजनीति और अन्तर्राष्ट्रीयतावाद —डॉ० लोहिया को किसी राष्ट्र विशेष से घृणा नही थी। वे अन्तर्राष्ट्रीय अन्यायों का प्रबल विरोध करके एक सम एव सम्पन्न विश्व का निर्माण करना चाहते थे, जिसमे कोई किसी का शोषण नही करेगा अपितु सब एक दूसरे का सहयोग करेंगे। उनकी इस भावना का प्रमाण द्वितीय विश्व युद्ध के समय की निम्नलिखित घटना है —११ मई सन १९४० ई० को दोस्तपुर (सुलतानपुर) मे समस्त राष्ट्रो की स्वतन्त्रताओ के सम्बन्ध मे उन्होने एक भाषण दिया जिसके परिणामस्वरूप अंग्रेजो ने उन्हें गिरफ्तार किया और उन पर मुकदमा चलाया। उस समय अपने मुकदमे की बहस करते हुए डा० लोहिया ने कहा था कि " आखिर मे मुझे इतना ही कहना है कि किसी भी राष्ट्र के खिलाफ मेरे मन मे कोई कटुता नही है। मुझे अफसोस है कि अंग्रेजो को आज भी दुनिया के राष्ट्रो को गुलाम करने वाली पद्धति का बोझ अपने कन्धे पर उठाना पडता है।[2]

* * * * *

1—Dr Lohia Marx Gandhi and Socialism p 152 153

2—इन्दुमति केलकर लोहिया सिद्धान्त और कर्म पृष्ठ 86

उनका सम्पूर्ण दर्शन मानवतावाद और विश्व बन्धुत्व की भावना से परिपूर्ण है। अन्तर्राष्ट्रीय विचारधारा के रूप में प्रारम्भ होने वाला विश्व-समाजवाद प्रथम विश्व युद्ध में जब राष्ट्रीय हो गया तब उनको अत्यन्त दुख हुआ और उन्होंने इसे पुनः अन्तर्राष्ट्रीय बनाने के लिए भरसक प्रयत्न किए। इस हेतु उन्होंने विश्व के अधिकांश देशों में भ्रमण किया और वहाँ के राष्ट्रीय चरित्र के समाजवादी दलों की निर्भीकतापूर्वक कटु आलोचना की। उन्हें अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के उपयुक्त ठोस सिद्धान्त दिए और उन पर चलने के लिए उन्हें प्रोत्साहित किया।

अन्तर्राष्ट्रीयतावाद का सकारात्मक स्वरूप और डा० लोहिया—संकुचित राष्ट्रीय राजनीति के त्याग के लिए और अन्तर्राष्ट्रीयता के विकास के लिए डॉ० लोहिया ने सम्पूर्ण राष्ट्रों को प्रोत्साहित किया। वर्तमान की अन्तर्राष्ट्रीयता विरोधी राष्ट्रीय राजनीति की आलोचना करते हुए उन्होंने कहा कि 'अन्तर्राष्ट्रीय चेतना के विकास के प्रति राष्ट्रीय राजनीति का आधार ही उदासीन है। आधुनिक मानव के विचार और कर्म में राष्ट्रीय आजादी और रोटी का पोषण इस प्रकार नियोजित हुआ है कि वह समस्त संसार की शांति व रोटी के विरुद्ध है।[1] डा० लोहिया गांधी के अन्तर्राष्ट्रीयतावाद से प्रभावित थे। उसे उन्होंने उन्मुक्त अन्तर्राष्ट्रीयतावाद कहा और उसी धारा को आगे बढ़ाने का प्रयास किया। वे चाहते थे कि विश्व से उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद और हर प्रकार की दासता का अन्त हो। इस हेतु उनकी दृष्टि में, अन्तर्राष्ट्रीयतावाद को नित्य नये और अहिंसक संघर्ष उत्पन्न करने चाहिए। वे नकारात्मक अन्तर्राष्ट्रीयतावाद को अपर्याप्त और अधूरा मानते थे। उनके मत में अन्तर्राष्ट्रीयतावाद को मानवतावाद की प्रतिष्ठा हेतु सकारात्मक सुनिश्चित और सम्यक होना चाहिए। उनका स्पष्ट मत था मानवतावाद को निश्चित रूप दिए बिना असली अन्तर्राष्ट्रीयतावाद पैदा होना असम्भव है। इन्सानियत की कल्पना से जनता को असीम त्याग की प्रेरणा मिले इतनी उसकी शक्ल सम्यक होनी चाहिए।'[2]

समीक्षा—अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के उपासक डॉ० लोहिया ने स्पष्ट किया कि यह धारणा अन्तर्राष्ट्रीय घृणा शोषण और अन्याय की अनुपस्थिति के प्रयास में ही निहित नहीं, अपितु अन्तर्राष्ट्रीय भ्रातृत्व प्रेम सहानुभूति की

* * * * *

1—डॉ० लोहिया इतिहास-चक्र, पृष्ठ 80

2—इन्दुमति केलकर, लोहिया सिद्धान्त और कर्म पृष्ठ 401 402

उपस्थिति के प्रयत्नो में साकार होती है। ऐसा कहकर उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीयता वाद को नकारात्मक से सकारात्मक बना दिया। उन्होंने विश्व-सरकार, विश्व-विकास समिति, संयुक्तराष्ट्र संघ के पुनगठन, निशस्त्रीकरण आदि की सुनिश्चित धारणाएँ देकर और उन्हें साक्षात्कार सिद्धान्त पर आधारित कर अन्तर्राष्ट्रीयतावाद को निश्चित, ठोस और शीघ्र प्राप्त होने वाला विचार बना दिया। अब यह देखना है कि मानव जाति इन विचारो को कहाँ तक अनुगमन करती है।

निःशस्त्रीकरण का सशक्त प्रतिपादन

डॉ० लोहिया विश्व शान्ति और निशस्त्रीकरण के अनन्य उपासक थे। उनका विश्वास था कि शस्त्रास्त्रो के नाश हुए बिना विश्व शान्ति की स्थापना सम्भव नही। द्वितीय विश्व युद्ध के समय 'शस्त्रों का नाश हो' नामक लेख लिख कर शस्त्रो और उनके घातक परिणामों की ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया और युद्ध रत राष्ट्रों की भर्त्सना की।[1] २९ अप्रल सन् १९४२ ई० को वर्धा में उन्होंने गाधी के समक्ष प्रस्ताव रखा कि ब्रिटिश सरकार से माँग करें कि हिन्दुस्तान के सभी शहर "बिना पुलिस या फौज के शहर घोषित किए जाएँ। तदनुकूल गाँधी जी ने वाइसराय को पत्र लिखा कि 'अहिंसानिष्ठ साशलिस्ट डा० लोहिया ने भारतीय शहरों को बिना पुलिस या फौज के शहर घोषित करने की कल्पना निकाली है।'[2]

निःशस्त्रीकरण एक व्यावहारिक आदर्श —अपने देश में ही नही, अपितु संसार के अधिकाश देशो मे भ्रमण करके डॉ० लोहिया ने निःशस्त्रीकरण के पक्ष को प्रबल किया। गाँधी और थोरो के अहिंसावादी सिद्धान्तो को व्यावहारिक रूप देने के लिए उन्होंने अमेरिकावासियो का आह्वान किया और कहा "Is Gandhi only a luxury in the modern world ? Is Thoreau only meant for an idle hour, to read and to revere but not to affect our daily lives ? So far, the Gandhis and Thoreaus have not entered the mainstream of life'[3] अमेरिकावासियो के द्वारा यह पूछे जाने पर कि किस प्रकार से वे अहिंसा की शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं डॉ० लोहिया ने कहा कि अहिंसा घोषणा-पत्रों, भाषणो और प्रस्तावो से नही, अपितु अभ्यास से आती है।

* * * * *

1—ओंकार शरद लोहिया पृष्ठ 100

2—इन्दुमति केलकर, लोहिया सिद्धान्त और कर्म पृष्ठ 94

3—Harris Wofford Lohia and America Meet peag 38

अणुबम और गांधी पर डॉ०लोहिया के विचार –डॉ० लोहिया के मत में बीसवीं शताब्दी के दो मौलिक आविष्कार हैं–गांधी और अणुबम या उदजन बम आदि। गांधी जी न्याय और अन्याय प्रतिकार के प्रतीक हैं। अणुबम अन्याय और उसके प्रतिकार के भी प्रतीक हैं। उनकी प्रकृति अन्याय के प्रतिकार की अपेक्षा अन्याय करने की अधिक है। इसलिए डॉ० लोहिया ने इन विनाशकारी हथियारों के विनाश की पहल की और कहा " महात्मा गांधी और अणुबम दोनों एक दूसरे के विपरीत सिद्धान्त हैं। मैं अणुबम का पुजारी नहीं हूं। मैं हथियारों का बहुत बुरा समझता हूं। मैं हथियारों से *घृणा करता हूँ अणुबम से भी मैं घृणा करता हूँ। मैं चाहता हूँ कि दुनिया* ऐसी हो कि जिसमें ये सब खतम हो जाए।[1] वे केवल अणुबम आदि को नहीं अपितु परम्परागत हथियारों का भी समाप्त करना चाहते थे। उनके मतानुसार जब परम्परागत हथियार भी समाप्त हो जाएँगे तभी अन्यायों का पूर्णरूपेण विनाश होगा। इस कथन के पीछे उनका तर्क था कि यदि परम्परागत हथियार शेष रह गये तो विशाल और उन्नत देश इन हथियारों की वृद्धि कर अणुबम के समान ही शक्ति सचय कर लेंगे।[2]

आधुनिक अस्त्र और सर्वनाश —डॉ० लोहिया की दृष्टि में सन् १९४५ ई० के हथियार निकम्मे हो गये हैं क्योंकि अब इतने विनाशकारी हथियार निर्मित हो गये हैं कि वे प्रयोगकर्त्ता के लिए विजय के स्थान में मृत्युदायक हो गए हैं। विरोधी महान् राष्ट्र यदि एक दूसरे पर उनका प्रयोग कर दें तो स्वयं और विश्व तक को समाप्त कर देंगे। अतः इन भयंकर हथियारों से हथियार के दोनों उद्देश्य—अन्याय का प्रतिकार और अन्याय का सृजन–विफल हो गए हैं। उनके प्रयोग का अर्थ अब केवल एक ही है—सर्वनाश। वे अब मानव जाति के संहार के लिए भस्मासुर हो गए हैं। इन्हें यदि समाप्त नहीं किया जाता तो निश्चित ही ये मानव जाति का विनाश कर देंगे। डॉ० लोहिया ने इस सम्बन्ध में भविष्यवाणी की है कि बीसवीं सदी के अन्त तक या तो विश्व रहेगा या हथियार। यदि विश्व का विनाश होता है तो केवल कुछ लगड़े–लूले और कुछ ग्राम निवासी ही रह जाएँगे। उन्होंने कहा कि शस्त्रास्त्रों के निर्माण से विश्व का तन मन धन व्यय जा रहा है और विश्व में भय आतंक की स्थिति उत्पन्न हो रही है।[3] उनकी सलाह थी कि हथियारों

• • • • •

1—डॉ० लोहिया देश गरमाओ पृष्ठ 40

2—लोहिया भारत चीन और उत्तरी सीमाएँ पृष्ठ 312

3—डॉ लोहिया समाजवादी आन्दोलन का इतिहास पृष्ठ 107

के निर्माण म व्यय होन वाला विश्व का प्रतिवर्ष लगभग आठ खरब रुपया रचनात्मक कार्यों मे लगाया जाना चाहिए ।

डा० लोहिया की दृष्टि म अच्छे कार्यों को सम्पन्न करन के लिए भी हथियारो का प्रयोग नही करना चाहिए । हथियार शक्ति का केन्द्रीकृत करते हैं । ये मानव के दिल का कमजोर बनाते हैं । इनके प्रयोग से मनुष्य इनका दास हो जाता है । यही कारण है कि महान् व्यक्तियो न सदव हथियारो को घृणा की दृष्टि से देखा है । कठोरता और पशुता जनता और शासन दोनो के लिए त्याज्य ह । इसलिए इस प्रकार का विश्व मस्तिष्क निर्मित करना चाहिए जो हिंसा से घृणा करे किन्तु अन्याय का अहिंसात्मक प्रतिकार करना सीखे । इस सत्य की ओर सकेत करते हुए उन्होने कहा, 'Callousness and brutality, whether on the part of the Government or the people must go Instead must awake a world mind which holds violence in contempt and revulsion but which also knows how to resist injustice non-violently [1]

नि शस्त्रीकरण के उपाय —नि शस्त्रीकरण के उपायो पर प्रकाश डालते हुए डॉ० लोहिया न कहा कि सच्चा और सफल नि शस्त्रीकरण तभी हो सकता है जब कि विश्व म समानता स्थापित हो । मानव समाज के विकसित एक-तिहाई और अविकसित दो तिहाई भागो की उत्पादन शक्ति म विशाल असमानता गम्भीर आर्थिक असन्तुलन उत्पन्न करती है जिससे विभिन्न प्रकार के सघर्ष उत्पन्न होते हैं और सम्पन्न भागो की निधियो की रक्षा के लिए शस्त्रास्त्रो की पागल होड प्रारम्भ हो जाती है । इसलिए जब तक सम्पूर्ण ससार मे सम्भव समानता नही लायी जाती, तब तक नि शस्त्रीकरण असम्भव है । समता को ही नि शस्त्रीकरण का आधार बताते हुए डॉ० लोहिया न कहा था कि True and effective disarmament can only come when the world becomese qual The desease must be treated at its root ' [2]

डॉ० लोहिया का मत था कि शस्त्रीकरण म वृद्धि सफल सामूहिक सुरक्षा के अभाव का परिणाम है, क्योकि सामूहिक सुरक्षा के अभाव मे अन्याय करन और अन्याय के प्रतिकार हेतु शस्त्रो का सृजन होता है । अत अन्याय ही

* * * * *

1—Dr Lohia Marx Gandhi and Socialism p 348
2—Dr Lohia Marx Gandhi and Socialism p 466

शस्त्रा का जनक है। इसलिए उन्होंने सलाह दी कि मुकम्मल निःशस्त्रीकरण हेतु विवेक सम्मत सामूहिक सुरक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए और अन्याय की समाप्ति होनी चाहिए। अपनी आशा व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा था "अब हथियार कैसे खतम होंगे ? मुझे खुद बहुत मुश्किल मालूम होता है। बडे हथियार मान लो खतम कर दिए जाएँ, तो छोटे कैसे खतम होंगे ? क्योंकि छोटे हथियार खतम होने का मतलब है पूरी तरह से नाइन्साफी खतम होना। वही मुझको थोडी आशा दिखाई देती है कि हथियार पूरी तरह से तब खतम होते हैं जब नाइन्साफी खतम होगी। अबकी दफे क्योंकि सब नाइन्साफियों के खिलाफ आदमी एक साथ उठ खडा हुआ है, ये नाइन्साफियाँ भी खतम हो—और शायद इस बीसवीं सदी के खतम होने तक एक अच्छी दुनिया बनें।"[1]

विषमता और अन्याय को समाप्त करने और समता तथा न्याय को लाने के लिए डॉ० लाहिया की दृष्टि में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सत्याग्रह किए जाने चाहिए। न्याय और समता की स्थापना के लिए यदि हिंसात्मक उपाय नही किए जाते तो फिर हिंसा के द्वारा उसका प्रतिकार होगा और वह स्थिति बर्बरतापूर्ण पशुतापूर्ण भयंकर तथा संसार नाशक होगी। तब तो अराजकता का साम्राज्य होगा और न्याय, समता अहिंसा के स्थान में हिंसा, अन्याय और विषमता पुनः छा जाएगी। २६ जुलाई सन् १९५१ ई० को अमरिका वासियों के समक्ष इसी सन्दर्भ में उन्होंने कहा था "For if men will not fight injustice with weapons of peace, others will come up who will fight it with weapons oh the usual weapons the atom bomb the dagger the revolver and the like"[2]

समीक्षा — राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय विषमता तथा अन्याय के प्रबल विरोधी, अहिंसात्मक डा० लाहिया अपने जीवन पर्यन्त विश्व शान्ति, विश्व सरकार विश्व संसद आदि के लिए संघर्षरत रहे। उपर्युक्त कल्पनाओं को साकार करने हेतु वे निःशस्त्रीकरण के प्रबल समर्थक थे। डॉ० लाहिया के निःशस्त्रीकरण सम्बन्धी विचारों से स्पष्ट होता है कि वे अपने दिल और दिमाग से शस्त्रास्त्रों की समाप्ति चाहते थे। विश्व के कोने-कोने में अन्याय और विषमता के विरुद्ध सत्याग्रह छेडने पर जोर देकर उन्होंने निःशस्त्रीकरण

* * * * *

1—डॉ लोहिया आजाद हिन्दुस्तान में नये रूझान पृष्ठ 14
2—Harris Wofford Lohia and America Meet page 77

की कल्पना को व्यावहारिक रूप प्रदान किया है। नि शस्त्रीकरण का समानता और न्याय की नीव पर खडा करके उन्होने इस सकारात्मक रूप दिया। समस्या के मूल—अन्याय, विषमता पर कुठाराघात कर उन्होंने रोग को जड से उखाडने का प्रयत्न किया है। उनके कृत्यों और सिद्धान्तों के अध्ययन से कोई भी निष्पक्षत कह सकता है कि गाधी जी के पश्चात् गाधी जी के अहिंसात्मक आन्दोलन और नि शस्त्रीकरण सम्बन्धी सिद्धान्तो के प्रबल और प्रभावशाली पालक डा० लोहिया ही थे जिन्होंने सर्वत्र सवक्षेत्रो म अपने अथक परिश्रम मौलिक प्रतिभा और निष्कपट मानव-सेवा के द्वारा विश्व जागरण का सन्देश दिया।

साक्षात्कार का सिद्धान्त

साक्षात्कार सिद्धान्त की व्याख्या —डॉ० लोहिया न साक्षात्कार का सिद्धान्त देकर विश्व की समाजवादी विचारधारा का एक सुदृढ़ और मही आधारशिला प्रदान की है। साक्षात्कार के सिद्धान्तानुसार सुदूर भविष्य म चाहे गए लक्ष्य की प्रत्यक्षानुभूति वतमान की कृति में होनी चाहिए। इसमे आज की किसी गलत कृति का कभी भी कल के किसी उचित परिणाम स नही जोडा जाता। इस सिद्धान्त की परिभाषा करते हुए डॉ० लोहिया न कहा है "साक्षात्कार के इस सिद्धान्त के अनुसार हर काम का औचित्य स्वय उसी म होता है और यहां अभी जो काम किया जाता है, उसका औचित्य सिद्ध करने के लिए बाद के किसी काम का उल्लेख करने की आवश्यकता नही।'[1] इस सिद्धान्त को राजनीति म लाने का आग्रह करते हुए उन्होने कहा कि उत्पादन और काय पद्धति की दृष्टि से नय यन्त्र तात्कालिक उपयुक्तता की कसौटी के सिद्धान्तानुसार बनाने चाहिए। विज्ञान और नियोजन म जितनी तात्कालिक उपयुक्तता आवश्यक है उतनी ही शासन सस्थाओ म भी। उनकी दृष्टि मे यह एक भ्रष्ट सिद्धान्त है कि भविष्य के जनतत्र के लिए वतमान म नौकरशाही अथवा तानाशाही का सहारा लिया जाए भविष्य कालीन विश्व एकता के लिए वतमान की राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का होम किया जाए, चरम सत्य की स्थापना के लिए आज असत्य का फलाव हो, कल की अहिंसा के लिए आज हिंसा हो, कल की गद्दी के लिए आज वनवास भोगा जाय, कल के जीवन के लिए आज हत्या की जाए आदि।

* * * * *

1—डॉ० लोहिया इतिहास-चक्र पृष्ठ 92

प्रत्येक क्षेत्र में साक्षात्कार के सिद्धान्त का कार्यान्वयन —डा० लोहिया का प्रतिपादन था कि समाजवादी औद्योगीकरण व नियोजन, समाजवादी जनतन्त्र व शासन संस्था समाजवादी संगठन या संघर्ष आदि सभी कार्यों को साक्षात्कार सिद्धान्त की कसौटी पर कसा जाना चाहिए जिससे कि तात्कालिक अपेक्षाओं और अंतिम लक्ष्यों के बीच जो दरार रहती है वह समाप्त की जा सके। इसी दरार को समाप्त करने के लिए गाधी जी ने मेरे लिए एक कदम ही पर्याप्त है का आदर्श चुना था और उन्ही के प्रभाव से लोहिया जी ने भी प्रत्येक क्षेत्र में साक्षात्कार सिद्धान्त को अपनाया था। तभी तो वे कहा करते थे वर्ग संघर्ष मे साक्षात्कार, उत्पादन में साक्षात्कार, विश्व संसद में साक्षात्कार समीपता मे साक्षात्कार। [1]

साम्यवाद और पूँजीवाद तथा साक्षात्कार का सिद्धान्त —डा० लोहिया के मत मे साम्यवाद और पूजीवाद के अंतिम लक्ष्य और वर्तमान की कृति में सबंध नही है। इसलिए इन शासन प्रणालियो से बेकारी भूख अन्याय नौकरशाही तानाशाही आदि का जन्म होता है। हरिभाऊ उपाध्याय भी डॉ० लोहिया की तरह साम्यवाद को साक्षात्कार सिद्धान्त के विपरीत पाते हैं। वे लिखते हैं कि 'हिंसा द्वारा शान्तिमय साम्यवादी व्यवस्था स्थापित करने का साम्यवादी प्रयास जहर पिलाने के पश्चात अमर बनाने के आश्वासन से अधिक और कुछ नही है। उनके मन में यह आशा करना भी व्यर्थ सा ही है कि हिंसा बल के द्वारा आज भी शासन संस्था का संचालन होता हो फिर भी समाज में अहिंसा दिन दिन बढती ही जाएगी।' [2] इन साम्यवादी और पूजीवादी अनर्थों पर विजय पाने के लिए डा० लोहिया ने समाजवादी संघर्ष में प्रत्यक्षवाद का साक्षात्कार होना अनिवार्य बताया।

साक्षात्कार सिद्धान्त प्रवाह और स्थायित्व की एक कड़ी —डा० लोहिया के मतानुसार प्रत्येक क्षण दोनो है—प्रवाह और स्थायित्व। इतिहास के उन सभी दार्शनिकों ने जिन्होंने आने वाले स्वर्णयुग के बारे में सोचा है क्षण को केवल प्रवाह या गति के रूप में लिया है। उन्होंने इसके स्थायी स्वरूप की ओर ध्यान नहीं दिया। इसी प्रकार उन सभी नीतिज्ञों ने जिन्होंने व्यक्ति के चरित्र और उच्च आदर्शों के बारे में उपदेश देने का प्रयत्न किया है क्षण को केवल स्थायी मान कर सोचा है और वे उस प्रवाह के रूप मे देखने से चूके

* * * * *

1—डा० लोहिया इतिहास-चक्र पृष्ठ 91

2—हरिभाऊ उपाध्याय स्वतन्त्रता की ओर पृष्ठ 293

हैं। वस्तुत क्षण प्रवाह और स्थायित्व दोनों है। डॉ० लोहिया की दृष्टि मे हम सचमुच एक स्वर्णयुग की ओर बढ सकते हैं यदि हम उस स्वर्णयुग को तत्काल पाने का प्रयत्न करें। जिस सीमा तक हम उसे तत्काल पा लेते हैं और साक्षात्कार के सिद्धान्त का व्यवहार म लाते हैं, उस सीमा तक क्षण के प्रवाह रूप और उसके स्थायी रूप के बीच की जोडने वाली कडी भी बनती चली जाती है। इसी प्रकार डॉ० लोहिया का विचार है कि यदि क्षण के प्रवाह और स्थायी दोनो स्वरूपो को विषय (आर्थिक लक्ष्य) और प्रवृत्ति (साधारण लक्ष्य) की दो भिन्न श्रेणियो म पृथक-पृथक रखा जाता है तो दुर्भाग्य और विनाश के अतिरिक्त और कुछ भी हाथ नही लगता। क्योकि इस स्थिति म आर्थिक लक्ष्य और सामान्य लक्ष्य म से किसी को कारण और किसी को फल समझने की भूल होती है। वे तो वास्तव म एक दूसरे के सहयोगी है और साथ-साथ चलने चाहिए। ये दोनो लक्ष्य उसी प्रकार जुडे हुए हैं जैसे कि क्षण के स्थायी और प्रवाह दोनो स्वरूप जुडे हैं। उन्हे जोडने वाली कडी साक्षात्कार का सिद्धान्त है।[1]

साक्षात्कार सिद्धान्त का महत्व —डा० लोहिया का विचार है कि साक्षात्कार का सिद्धान्त प्रत्येक काय के औचित्य का समझने म सहयोग देता है। यह सिद्धान्त आज के किसी अनुचित कृत्य के औचित्य को उससे होने वाले भविष्य कालीन उचित फल स नही जोडने देता और इस प्रकार सिद्धान्तहीनता से मानव जाति की रक्षा करता है। यदि हम इस सिद्धान्त के विपरीत चलते है तो कारण और फल की श्रृङ्खला बँधने लगती है जिससे किसी भी काय के औचित्य की कसौटी नही बन पाती। परिणामस्वरूप भविष्य के उचित परिणाम को बतलाकर वतमान की निरंकुशता, स्वेच्छाचारिता और सिद्धान्त हीनता के औचित्य को सिद्ध किया जाने लगता है जिससे कि अराजकता और अन्याय का साम्राज्य जन्म लेता है।[2]

डा० लोहिया का मत था कि साक्षात्कार के सिद्धान्त के अनुसार सामाजिक क्रान्ति और चरित्र निर्माण साथ साथ चलने चाहिए। इसमे चरित्र निर्माण और सामाजिक क्रान्ति एक दूसरे के पूरक होने चाहिए। इन दोनो म से किसी को एक अथवा दूसरे के परिणाम के रूप म नही देखना चाहिए। सच, कम और चरित्र को क्रान्ति के बाद की चीज नही समझना चाहिए। यदि

* * * * *

1—डॉ लोहिया इतिहास-चक्र पृष्ठ 91 92

2—डॉ लोहिया मर्यादित उन्मुक्त और असीमित व्यक्तित्व पृष्ठ II

न्ति में चरित्र सत्यता अहिंसा करुणा आदि को त्याग देते हैं तो क्रान्ति के श्चात इस प्रकार के आदर्श और कल्याणकारी गुणों को पुन प्राप्त करना सम्भव हो जाता है।[1] मार्क्सवाद की सबसे बड़ी कमजोरी यही थी कि वह सात्मक क्रान्ति के पश्चात एक शान्तिमय व्यवस्था की कल्पना करता था वहारा वर्ग के अधिनायकत्व के पश्चात् भी वह एक साम्यवादी समाज का प्न देखता था। वास्तविकता यह है कि हम जिस वस्तु को प्राप्त करना हते हैं उसको हम कभी भी प्राप्त नहीं कर सकते यदि उसे हम वर्तमान म याग देते हैं। आखिर भविष्य का प्रत्येक क्षण वर्तमान से ही गुजरता है। तएव सही सिद्धान्त यही है कि क्रान्ति और मानवीय गुण साथ-साथ चल। दि राजनीतिक दल क्रान्ति के साथ-साथ चरित्र निर्माण का कार्य भी अपना तो राजनीति पवित्र हो सकती है। बड़े दुख के साथ कहना पड़ता है कि ाज के राजनीतिक दल इस सिद्धान्त से पूर्णतया अपरिचित हैं।

समीक्षा—डॉ० लोहिया न विश्व की समाजवादी विचारधारा का ाकार का सिद्धान्त देकर उसको व्यावहारिक मानवीय आदर्शों से परि लावित किया है। उन्होंने इस सिद्धान्त के द्वारा समाजवाद का हिंसात्मक और अराजकतापूर्ण साधनों से मुक्ति दिला दी है। इस सिद्धान्त के द्वारा न्होंने राजनीति का पूर्णरूपेण पवित्रीकरण कर दिया और शासक तथा ासितों का सत्य उचित तथा मानवीय कृत्य करने का प्रोत्साहित किया। इस सिद्धान्त म दर्शन और व्यवहारवाद एकाकार हुए हैं।

इस प्रकार डॉ० लोहिया न विश्व की समाजवादी विचारधारा को समाज ाद का नवदर्शन संयुक्त राष्ट्रसंघ के पुनर्गठन का नवीन आधार विश्व विकास समिति की योजना विश्व-सरकार की कल्पना अन्तर्राष्ट्रीयतावाद अन्तर्राष्ट्रीय जाति प्रथा उन्मूलन, निःशस्त्रीकरण, अन्तर्राष्ट्रीय जमींदारी उन्मूलन और साकार सिद्धान्त प्रदान किया है। उन्होंने समाजवादी नव दर्शन द्वारा विश्व को झूठे द्वन्द्व के भ्रम से मुक्त कर सामंजस्य की नवीन दृष्टि दी है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के पुनर्गठन की दलील देकर उन्होंने विश्व को समता और स्वतन्त्रता के आधार पर संगठित होने का आह्वान किया है। विश्व-सुरक्षा और संयुक्त राष्ट्रसंघ को सबल बनाने के लिए उन्होंने कहा कि राष्ट्रसंघ का इस प्रकार पुनर्गठित होना चाहिए जिससे कि वह सम्मुख

का स्वाभिमान के साथ आर्थिक दृष्टि स विकसित होन का सुअवसर प्रदान करन हेतु उन्होन विश्व विकास समिति की स्थापना पर जार दिया, उन्होन अन्तर्राष्ट्रीयतावाद को सकारात्मक और सक्रिय दष्टि देकर पुन जीवित किया। विश्व-सरकार की वास्तविकताआ पर प्रकाश डाल कर डॉ० लोहिया ने उसकी रूप रेखा दी और मानव जाति को उसे साकार करन के लिए प्रोत्साहित किया। नि शस्त्रीकरण के अपन विपुल प्रयत्नो द्वारा उन्हान हिंसा और शस्त्रास्त्रो की नि सारता को सशक्त और प्रभावशाली ढग से विश्व के समक्ष रखा। अन्तर्राष्ट्रीय जाति प्रथा के उन्मूलन का सदेश देकर उन्होंने विभिन्न प्रकार की विषमताओ की जड पर प्रहार किया। उपर्युक्त समस्त मानवीय सिद्धान्तो का शीघ्र कार्यान्वित करन के लिए उन्होने साक्षात्कार का सिद्धान्त दिया।

शान्ति दूत डॉ० लाहिया के उपर्युक्त सभी विचार सम्यक दष्टि और आशावाद से रजित है। इस आशावाद से साक्षात्कार करने के लिए भय और आशका से भरे आज के विश्व के समक्ष इतनी कठिनाइया है कि निराशा वादी व्यक्ति इन विचारो को केवल कल्पना अथवा स्वप्न की सज्ञा देगा। किन्तु इसम कोई सन्देह नही कि यदि आशावादी मानवीय प्रयत्न इस ओर बढें तो व सकुचित भावनाआ की दीवाल तोड कर इस स्वर्णिम दशन को धरा पर उतार सकते है। इतिहास इस सत्य का साक्षी है कि अपनी अपूर्णताआ और भिन्नताओ के बावजूद मानव निरन्तर सगठन के उच्चतर स्तर पर चढता गया है। यदि ऐसा न हाता तो हम आखेट युग और सयुक्त राष्ट्रसगठन के युग मे भारी अन्तर को किस प्रकार देख पाते? जिस प्रकार आखेट युग अथवा नगर राज्यो के युग के लिए आज की दुनिया एक रहस्यमय कल्पना थी उसी प्रकार आज के व्यक्ति के लिए विश्व सरकार एक सुन्दर स्वप्न हो सकता है। परन्तु डॉ० लोहिया के बताए हुए माग पर अनवरत रूप से चलकर हम उस सुन्दर स्वप्न तथा रहस्यमय कल्पना को इस धरती पर उतार कर एक सामजस्यपूर्ण सुखद विश्व का निर्माण कर सकते हैं।

———

अध्याय ९

मार्क्स, गाधी और लोहिया का समाजवादी दर्शन एक तुलनात्मक विवेचन

विश्व-समाजवाद की मुख्यत दो धाराए हैं—एक पूव की आध्यात्मिक समाजवादी विचारधारा और दूसरी पश्चिम की भौतिक समाजवादी विचार धारा। ये दोनो विचारधाराए, जसा कि इनके नाम से ही परिलक्षित होता है, एक दूसरे के एकदम विपरीत है। पूव की आध्यात्मिक समाजवादी विचारधारा आत्मा को सब कुछ मानती है तो पश्चिम की भौतिक समाजवादी धारा पदाथ को सब कुछ समझती है। पूव की समाजवादी विचारधारा मे विकेन्द्री करण अपरिग्रह अस्तेय, अहिंसा धम, सत्याग्रह आदि का प्रमुख स्थान है। पश्चिम की समाजवादी विचारधारा ठीक इसके विपरीत है। इन दो विचार धाराओ की दृष्टि से विश्व म केवल तीन ही प्रमुख समाजवादी विचारक हुए है गाधी माक्स और लोहिया। गाधी पूव के प्रतिनिधि हैं। माक्स पश्चिम के प्रतिनिधि है। लोहिया पूव और पश्चिम दोनो के प्रतिनिधि है।

डा० लोहिया पर कार्ल माक्स और महात्मा गाधी का प्रभाव प्रकट परिलक्षित होता है। फिर भी डॉ० लोहिया का दशन माक्स और गाधी के दशन से भिन्न है। डॉ० लोहिया न तो माक्स-समथक थे और न माक्स के कट्टर दुश्मन। उसी प्रकार वे न तो गाधी के अनन्य उपासक थे और न ही गाधी विरोधी। उन्होने स्वय कहा है I am neither anti Marx nor pro Marx and that equally applies to my attitude towards Mahatma Gandhi [1] इस दृष्टि से माक्स गाधी और लोहिया के समाज वादी दशन का तुलनात्मक अध्ययन अत्यन्त महत्वपूण और मनोरजक है। तीनो ही दाशनिको का सयुक्त अध्ययन करने के पूव गाधी-लोहिया और माक्स लोहिया का पृथक-पृथक अध्ययन करना अधिक उपयुक्त समझ म आता है।

महात्मा गाधी और डॉ० लोहिया

राष्ट्र पिता महात्मा गाधी भारतीय स्वतन्त्रता सग्राम के नायक थे। उनके नेतृत्व म और उन्ही के आशीर्वाद से डॉ० लोहिया ने अपने राजनतिक जीवन

* * * * *

1—Lohia Speech Pachmarhi May 1952

का आरम्भ किया। उन्हीं की छत्र छाया में कार्य किया और उनके देहान्त के पश्चात उनके एक मात्र सच्चे शिष्य के रूप में उनके सिद्धान्तों को व्यापक और अधिक क्रान्तिदर्शी बनाया। महात्मा गांधी की तरह डॉ० लोहिया भी अपने सिद्धान्तों को क्रियात्मक रूप देने में आजीवन तत्पर रहे और जिस प्रकार गांधी 'राम राम' का उच्चारण करते हुए स्वर्ग सिधारे उसी प्रकार डॉ० लोहिया भी अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में 'लाखों का क्या होगा? किसानों का क्या होगा? लगान का क्या होगा? हिन्दी का क्या होगा?' कहते-कहते इस दुनिया से गए। दोनों व्यक्ति कथनी और करनी की एकता के सच्चे प्रतीक थे। दोनों ही सत्य के पुजारी और हृदय शोधक थे। यदि ऐसा न होता तो अपने जीवन के अंतिम क्षणों की अचेतनावस्था में वे कैसे 'राम' अथवा 'गरीबों' का ध्यान कर सकते थे। दोनों ही व्यक्ति मानवता और दरिद्र नारायण के भक्त थे। डा० लोहिया और महात्मा गांधी के समाजवादी दर्शन का सुविधा हेतु निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन किया जा सकता है —
(१) सामाजिक सरचना सम्बन्धी दृष्टिकोण, (२) राजनैतिक चिन्तन, (३) आर्थिक विचार, (४) भाषा विषयक दृष्टि (५) समाजवादी संहिता की रूप रेखा (६) विश्व शान्ति विश्व-सरकार और वसुधैव कुटुम्बकम् के स्वप्न।

सामाजिक सरचना सम्बन्धी दृष्टिकोण —डॉ० लोहिया और महात्मा गांधी ने सामाजिक विषमताओं पर गहरा दुख व्यक्त किया और उन्हें समाप्त करने के लिए अपना जीवन को समर्पित कर दिया। वर्ण-व्यवस्था अस्पृश्यता साम्प्रदायिकता, रंग भेद नीति नर नारी असमानता आदि सामाजिक समस्याओं पर इन विचारकों ने विशेष रूप से विचार किया।

वर्ण-व्यवस्था —गांधी जी भारतीय संस्कृति के पुजारी थे। अत उन्होंने भारत में प्रचलित वर्ण व्यवस्था का समर्थन किया। उन्होंने स्पष्टत कहा था "वर्ण-व्यवस्था में बुनियादी तौर पर सोची गयी समाज की चौमुखी बनावट ही मुझे तो असली कुदरती और जरूरी चीज दीखती है।'[1] गांधी जी ने वर्ण-व्यवस्था और जाति प्रथा में भेद किया था।[2] उनकी दृष्टि में वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र चार वर्ण आते हैं। जाति प्रथा के अन्तर्गत इन चार वर्णों के अतिरिक्त अन्य सभी जातियाँ उपजातियाँ हैं। जाति-प्रथा को गांधी जी ने अनुचित ठहराया और उसे समाप्त करने के लिए

* * * * *

1—महात्मा गांधी वर्ण-व्यवस्था पृ० 3
2—महात्मा गांधी वर्ण व्यवस्था पृ० 91

अपना अभियान तीव्र किया। जहाँ तक इन चार वर्णों का प्रश्न है, गांधी जी की मान्यता थी कि जो व्यक्ति जिस वर्ण में पैदा हुआ है, उसे उस वर्ण के लिए निर्धारित व्यवसाय ही करना चाहिए। इस विचार के पीछे उनका तर्क था कि व्यवसाय की जानकारी और विशेषज्ञता पर आनुवंशिकता पर्याप्त प्रभाव डालती है। वातावरण का भी व्यक्ति पर काफी प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति को पैतृक व्यवसाय के रूप में आय का साधन मिलता है और समाज को प्रत्येक व्यवसाय के विशेषज्ञ प्राप्त होते हैं।

यद्यपि गांधी जी व्यक्ति पर वंशानुक्रमण का प्रभाव मानते हैं तथापि वे वर्ण व्यवस्था को जन्मगत नहीं अपितु कर्मगत मानते हैं। उनकी दृष्टि में वर्ण व्यवस्था सामाजिक न्याय का एक सशक्त साधन है। गांधी जी का यह दृष्टिकोण भारतीय संस्कृति के अनुकूल है। श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय १८ श्लोक ४१ में लिखा है कि ब्राह्मणादि वर्णों के कर्मों का विभाग उनके सहज गुणों के कारण है। किन्तु इस विभाजन को अफलातून जैसा सामाजिक न्याय का सिद्धान्त नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अफलातून सिद्धान्त के विपरीत इस व्यवस्था में ऊँच नीच छोटे-बड़े का भाव नहीं था और न ही शिक्षा संस्कृति और धन आदि के अधिकार किसी वर्ण के लिए असामान्य किए गए थे। गांधी जी के विचारों में भी सभी वर्णों की प्रतिष्ठा समान है। आर्थिक दृष्टि से भी सब समान हैं। उनके आदर्श राज्य में एक भंगी, एक डाक्टर, एक वकील की आय व वेतन समान होंगे। उनके मत में, वर्ण व्यवस्था का आधार बल नहीं स्वाभाविकता और कर्त्तव्य परायणता है। अतः किसी वर्ण के प्रति भेद भाव उन्हें हेय था। इस प्रकार कहा जा सकता है कि वे वर्ण को नहीं अपितु वर्ण भेद को मिटाना चाहते थे। इस वर्ण भेद को भी मिटाने के लिए वे कानूनी व्यवस्था आवश्यक नहीं मानते।

यदि महात्मा गांधी और डा० लोहिया के जाति-नीति सम्बन्धी दृष्टिकोणों की तुलना करें तो दोनों विचारकों में पर्याप्त अन्तर दृष्टव्य है। वर्ण और जाति में भेद कर गांधी ने वर्ण को बनाए रखने और जाति को मिटाने का प्रयत्न किया किन्तु लोहिया ने वर्ण और जाति में कोई भेद नहीं किया। उन्होंने जाति और वर्ण दोनों को समाप्त करने का प्रयास किया। गांधी ने वर्ण को कर्म और गुण के आधार पर निर्मित हुआ बताया। लोहिया ने उसे बल से निर्मित हुआ माना। गांधी जी वर्ण नहीं अपितु वर्ण भेद समाप्त करना चाहते थे। लोहिया जाति भेद अथवा वर्ण भेद को ही नहीं अपितु वर्ण और जाति नाम की संस्थाओं का भी होम करना चाहते थे। उन्होंने 'जात पाँत के भेद मिटाने'

और 'जात-पाँत मिटाने' में भेद किया था। वे 'जात पाँत भेद मिटाने' को एक चालाक जुमला मानते थे। उनके मतानुसार जात पाँत को मिटाए बिना जात पाँत का भेद मिटाना असम्भव है।

इस संबंध में गांधी जी और डा० लोहिया में एक और गहरा अन्तर है। गांधी जी की वर्ण भेद और जाति उन्मूलन संबंधी धारणा की आधार भित्ति मूलतः नैतिक और सामाजिक मान्यता थी जब कि डा० लोहिया की जाति तोड़ो सम्बन्धी नीति सामाजिक एवं वैधानिक मान्यताओं का अनुसरण करती है। डॉ० लोहिया ने स्पष्टतः कहा था कि प्रशासन और सैनिक सेवाओं में शूद्र और द्विज के बीच विवाह को योग्यता और सहभोज को अस्वीकार करना एक अयोग्यता मानी जानी चाहिए।[1] इसके विपरीत गांधी जी का कहना था एक थाली में खाना या चाहे जिसके साथ शादी करने की छूट लेना जरूरी नहीं।[2]

स्पष्ट है कि जाति प्रथा पर गांधी जी से कहीं अधिक प्रभावशाली प्रहार डॉ० लोहिया ने किया है। केवल गांधी जी से ही नहीं, अपितु जाति तोड़ने के अभी तक के सभी अभियानों में लोहिया अभियान अधिक सशक्त और सर्वांगीण रहा है। जाति प्रथा की निन्दा मुसलमानी काव्य में भक्ति मार्ग के हिंदू संतों ने की लेकिन जाति प्रथा के खिलाफ कोई प्रबल अभियान अभी तक भारतीय समाज में नहीं हुआ। गांधी जी ने ही वर्णाश्रम व्यवस्था के अत्याचारों को विशेष कर हरिजनों के सम्बन्ध में ढीला करने का प्रयास किया था, परन्तु उन्होंने भी वर्ण व्यवस्था के ऊपर सीधा हमला नहीं किया। उन्होंने तो केवल उस समन्वयवादी भावना का पोषण किया था जो एक लोकनायक और कुशल नेता में होना आवश्यक होता है। एक ओर उन्होंने सामाजिक न्याय पर आधारित प्राचीन काल से चली आ रही वर्ण व्यवस्था का समर्थन किया तो दूसरी ओर उसमें से भेद भाव की सड़न को समाप्त करके उन्होंने आधुनिकता से उसका समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया है। इसके विपरीत डॉ० लोहिया की दृष्टि समन्वयवादी नहीं, अपितु जाति रोग को जड़ से विनष्ट करने की रही। *उनके कुछ सुनिश्चित सिद्धान्त थे जिन्हें प्रतिष्ठित करने के लिए निर्भीकता* पूर्वक वे आजीवन संघर्षरत रहे।

* * * * *

1—डॉ० लोहिया जाति प्रथा पृष्ठ 4
2—मो० क० गांधी वर्ण व्यवस्था पृष्ठ 5

अस्पृश्यता निवारण —अस्पृश्यता निवारण हेतु गाधी जी ने अपने सिद्धान्त और व्यवहार द्वारा अत्यधिक प्रभावशाली प्रहार किए। गाधी जी ने लिखा था अछूत एक जुदा वर्ग है—हिन्दू धर्म के माथे पर लगा हुआ कलंक है। जात पाँत रुकावट है, पाप नहीं। अछूतपन तो पाप है, सख्त जुर्म है और हिन्दू धर्म इस बड़े साँप को समय रहते नहीं मार डालेगा तो वह उसको खा जाएगा।'[1] गाधी जी के अनुसार अस्पृश्यता निवारण का अर्थ है कि अस्पृश्य के लिए कोई भी ऐहिक स्थिति अप्राप्य न हो। मन्दिर विद्यालय कुएँ तालाब आदि सभी स्थान अस्पृश्य के लिए उसी प्रकार खुले होने चाहिए जिस प्रकार अन्य व्यक्तियों को।[2] गाधी जी मानते थे कि अस्पृश्यता कानून के बल से कभी दूर न होगी। कानून की सहायता तो तब लेना पड़ेगी जब वह सुधार की प्रगति में बाधा पहुँचाए। अस्पृश्यता निवारण हिन्दुओं के हृदय परिवर्तन अथवा हृदय शुद्धि की एक क्रिया है। सन् १९४६ ई० के पूर्व गाधी जी सहभोज को अस्पृश्यता निवारण का आवश्यक अंग नहीं मानते थे यद्यपि उनके निजी विचार सहभोजन के पक्ष में थे। किन्तु सन १९४६ ई० के पश्चात वे भी सहभोज आदि पर अधिक बल देने लगे थे। उन्होंने लिखा था लेकिन आज मैं उसका प्रोत्साहन देता हूँ असल में आज तो मैं इससे आगे बढ़ गया हूँ।'[3] डा० लोहिया अस्पृश्यता निवारण में गाधी जी से अधिक क्रान्तिकारी थे। सहभोज मन्दिर प्रवेश पर सामाजिक ही नहीं अपितु कानूनी ढंग से सभी को समान अधिकार देने के प्रबल समर्थक थे। गाधी जी से ही इन सिद्धान्तों की शिक्षा लेकर इनको डॉ० लोहिया ने अधिक प्रभावशाली और व्यापक बनाया। अस्पृश्यता निवारण हेतु उन्होंने कई सहभोजों का *आयोजन किया और हरिजन मन्दिर प्रवेश के लिए क्रियात्मक ढंग से कार्य* किया।

साम्प्रदायिकता निवारण —डा० राधाकृष्णन के अनुसार धर्म यान्त्रिक सिद्धान्तों का समूह नहीं है यह एक जीवन पद्धति है। महात्मा गाधी और डॉ० लोहिया धर्म को एक जीवन पद्धति ही मानते थे। गाधी और लोहिया का धर्म संकुचित धर्म नहीं था। उनके अनुसार सभी धर्म समान हैं। कोई धर्म किसी अन्य धर्म से ऊँचा नहीं है। गाधी जी के अनुसार सभी धर्म एक

* * * * *

1—मो० क० गाधी वर्ण-व्यवस्था पृष्ठ 47
2—महात्मा गाधी अस्पृश्यता निवारण पृष्ठ 11
3—महात्मा गाधी हरिजन सेवक, 4-°-46 पृष्ठ 246

ही वृक्ष की विभिन्न शाखाएँ हैं, एक ही साध्य के विभिन्न साधन हैं तथा एक ही बगिया के विभिन्न पुष्प हैं। सन् १९३७ ई० में उन्होंने हरिजन में लिखा था 'आखिर क्यों एक ईसाई हिन्दू को ईसाई धर्म में परिणत करना चाहता है। यदि एक हिन्दू एक अच्छा व्यक्ति है तो भी उसे सन्तोष क्यों नहीं होता? यदि मनुष्यों की नैतिकता और आचार विचार कोई महत्व नहीं रखते, तो चर्च मन्दिर अथवा मसजिद में पूजा करना बेकार है।'

डॉ० लोहिया की दृष्टि भी इसी प्रकार के मानव धर्म की थी। उनका कहना था कि प्रत्येक क्षेत्र में व्यक्ति का किसी धर्मावलम्बी की तरह नहीं, अपितु एक मानव की तरह मिलना चाहिए। उन्होंने हिन्दू मुसलमान में व्याप्त परस्पर द्वेष और वैर भाव को मिटाने के लिए इतिहास की पुनर्व्याख्या की। गांधी जी इस तरह का कोई प्रयास नहीं कर पाये। धर्म के नाम पर भारत विभाजन का विरोध डॉ० लोहिया ने गांधी जी से कहीं अधिक किया। धार्मिक एकता के लिए गांधी जी के प्रयास उतने क्रान्तिकारी और बहुक्षेत्रीय नहीं जितने कि लोहिया के। धार्मिक एकता के गांधी प्रयत्न केवल नैतिक थे, जब कि लोहिया के नैतिक, ऐतिहासिक, तार्किक और राजनैतिक।

रंग भेद नीति उन्मूलन —डॉ० लोहिया और महात्मा गांधी दोनों ही महान् पुरुषों ने मानव मानव में रंग के आधार पर भेद भाव को अमानवीयता बतलाया। इनका विचार था कि व्यक्ति विभिन्न रंगों का होता है किन्तु अन्दर दिल सब व्यक्तियों का एक सा होता है। रंग का गुण और सुन्दरता से कोई सम्बन्ध नहीं होता। गांधी ने अफ्रीका में रंग भेद-नीति का प्रबल विरोध किया। डॉ० लोहिया ने अमरीका में रंग भेद-नीति का विरोध किया और नीग्रो लोगों को अपने अधिकारों के लिए सचेत किया।

नर नारी असमानता —नर नारी समता के दोनों ही विचारक प्रबल समर्थक थे। डॉ० लोहिया की तरह महात्मा गांधी का भी विचार था कि "स्त्री पुरुष की गुलाम नहीं, वह अर्धाङ्गिनी है सहधर्मिणी है उसको मित्र समझना चाहिए'[1] महात्मा गांधी ने नर-नारी को समान माना और डॉ० लोहिया के समान कहा 'जो स्वतन्त्रता पति अपने लिए चाहता है ठीक वही स्वतन्त्रता पत्नी को भी होनी चाहिए।[2] गांधी जी बाल विधवा विवाह के समर्थक थे, किन्तु प्रौढ विधवा विवाह के नहीं। उन्होंने स्पष्ट

* * * * *

1—महात्मा गांधी विवाह-समस्या, पृष्ठ 19
2—महात्मा गांधी विवाह-समस्या पृष्ठ 52

कहा था कि 'प्रौढ विधवाएँ अपने वैधव्य को सुशोभित करते हुए बाल विधवाओं का विवाह करने के लिए कटिबद्ध हों और हिन्दू समाज में इस प्रथा का प्रचार करें।'[3] डॉ० लोहिया बाल और प्रौढ सभी विधवाओं के विवाह के पक्षपाती थे।

डॉ० लोहिया ने स्पष्टतः वर्णान्तर विवाह का समर्थन किया है जबकि गाँधी जी ने अपने ही वर्ण में विवाह करना साधारणतः इष्ट माना किन्तु गुण-कर्म को ध्यान में रखकर स्वधर्मियों के बीच भी विवाह सम्बन्ध को उचित बताया।[1] पर्दा प्रथा के दोनों विचारक विरोधी थे। दोनों ही विचारकों ने नारियों को गहने न पहनने के लिए सलाह दी। नर नारी सम्बन्धी विचारों में डा० लोहिया गाँधी से दो बातों में भिन्न थे। प्रथम डा० लोहिया मुक्त यौन आचरण को यौन शुचिता मानते थे जबकि गाँधी जी सतीत्व को यौन-शुचिता समझते थे। गाँधी जी पतिव्रता और सहधर्मिणी सावित्री के प्रति आकृष्ट थे तो डॉ० लोहिया हाजिर जवाब, ज्ञानी, समझदार, साहसी द्रौपदी के प्रति। द्वितीय डा० लोहिया ने नर नारी के बीच श्रम विभाजन पर उतना बल नहीं दिया जितना गाँधी ने। इस प्रकार इस सम्बन्ध में लोहिया के विचार गाँधी जी से अधिक आधुनिक और अधिक प्रगतिशील थे। वे युग से आगे थे।

राजनैतिक चिन्तन —गाँधी जी धार्मिक व्यक्ति थे। वे राजनीति में धर्म की प्रतिष्ठा चाहते थे। इसी भावना को साकार करने के लिए उन्होंने राजनीति में प्रवेश किया। वे सन्त, महात्मा और समाज-सुधारक पहले थे और बाद में राजनैतिक दार्शनिक। इसके विपरीत लोहिया जी राजनैतिक दार्शनिक पहले थे और बाद में समाज सुधारक। गाँधी जी के दर्शन से लोहिया जी का दर्शन किंचित भिन्न था। प्रथम की पृष्ठभूमि में हृदय का अनुभूति सम्बन्धी उद्गार थे दूसरे में तर्क एवं विवेक बुद्धि पर आधारित चिन्तन। गाँधी जी से लोहिया ने बहुत सीखा। यहाँ तक कहा जा सकता है कि यदि गाँधी जी न होते तो शायद लोहिया जैसा व्यक्तित्व ही न होता। किन्तु लोहिया गाँधी जी से कुछ अधिक प्रगतिशील थे। महात्मा गाँधी की संवेदनशीलता तो उनमें थी ही साथ ही साथ उनमें चिन्तन की मौलिकता भी थी। उनका ऐतिहासिक चिन्तन अपेक्षाकृत अधिक मौलिक था। डॉ० लोहिया ने राजनैतिक इतिहास की मौलिक व्याख्या की और इतिहास की तीन चालों

• • • • •

1—महात्मा गांधी विवाह-समस्या पृष्ठ 79

2—[illegible] पृष्ठ [illegible]0

शक्तियो को स्पष्ट किया। प्रथम, राष्ट्रो का उत्थान पतन होता रहता है। द्वितीय, राष्ट्र वग और वण के हिडोले म झूलते रहते हैं। तृतीय, राष्ट्रो मे परस्पर शारीरिक और सास्कृतिक समीपता अथवा अलगाव रहता है।

विकेन्द्रीकरण राजनतिक विकेन्द्रीकरण गांधी जी और डॉ० लोहिया के विचारो का केन्द्र बिन्दु था। दोना विचारको ने साम्यवाद के केन्द्रीकरण की भत्सना की है। दोना विचारका का मत था कि आधुनिक युग मे प्रजातन्त्र के नाम पर राष्ट्र की सम्पूण शक्ति कुछ ही व्यक्तियो के हाथ म रहती है। वे उसका मन माना प्रयोग करते है, जबकि प्रजातन्त्र वह शासन प्रणाली है जिसम शासन शक्ति सभी व्यक्तियो के हाथ म हानी चाहिए।

गांधी जी एक अराजकतावादी दाशनिक थे। राज्य की बढती हुई शक्तियो को वे शका की दृष्टि से देखते थे। उनका विचार था कि यद्यपि देखन मे ऐसा लगता है कि राज्य कानून द्वारा शोषण को कम करने म जनहित कर रहा है परन्तु यह मनुष्यमात्र की सबसे बडी हानि पहुँचाता है क्योकि इसके द्वारा व्यक्तिगत विशेषता का नाश होता है जो सभी प्रकार की उन्नति की जड है। इसके विपरीत डा० लोहिया की राज्य मे आस्था थी। उनका विश्वास था कि राज्य की अनुपस्थिति मे व्यक्ति का व्यक्तित्व ही समाप्त हो जाता है। यद्यपि गांधी जी और डा० लोहिया राजनतिक विकेन्द्रीकरण के बहुत बडे समथक थे तथापि दोना विचारको मे पयाप्त अन्तर है। गांधी जी के स्वायत्तशासी गणराज्य एक दूसरे मे स्वतन्त्र और पृथक इकाई प्रतीत होते हैं जबकि लोहिया के स्वायत्तशासी गणराज्य आत्मनिभर और स्वतन्त्र होते हुए भी परस्पर सुसगठित, सम्बद्ध और जुडे हुए हैं।

महात्मा गांधी के आदश समाज म आत्म निभर ग्राम हाग जो स्वेच्छापूण सहयोग के आधार पर शान्तिपूण ओर गौरवपूण जीवन व्यतीत करेंगे। प्रत्येक ग्राम एक गणराज्य होगा और उसम एक पचायत होगी। ग्राम पचायत के पास अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति एव रक्षा के लिए साधन विद्यमान होंगे। गांधी जी के ये गणराज्य इतने आत्म निभर हांगे कि वे सारी दुनियाँ के खिलाफ अपनी हिफाजत खुद कर सकेंगे। उनका आदश समाज आज की भाँति एक मीनार नही होगा बल्कि उसका आकार वत्ताकार हागा जिसके केन्द्र मे व्यक्ति होगा। व्यक्ति गाँव के लिए और गाँव बडी इकाई के लिए बलिदान करने को तयार हागा। बडी इकाई छोटी इकाई को शक्ति के प्रयोग द्वारा कुचलने का

प्रयास नही करेगी।[1] ग्रामीण गणराज्य स्वायत्तशासी इकाई के रूप मे एक ढीले ढाले सघ का निर्माण करेंगे। सघ की शक्ति का आधार नतिकता होगी न कि हिंसात्मक शक्ति। शासन शक्ति किसी केन्द्रीय इकाई मे केन्द्रित नही रहेगी बल्कि शासन की सभी इकाइयो मे उनका न्यायोचित बँटवारा होगा। डॉ० लाहिया न गाधी के इस अतिशय विकेन्द्रीकरण की कल्पना से अलगाव लिया और चौखम्बा राज्य की कल्पना प्रस्तुत की जिसम शासन ग्राम, मण्डल, प्रान्त और केन्द्र के चार खम्भो पर आधारित होगा।

साध्य-साधन की एकरूपता —डॉ० लोहिया और महात्मा गाधी साध्य साधन की एक रूपता पर विश्वास करते थे। महात्मा गाधी की मान्यता थी कि साधन बीज है और साध्य वृक्ष। जा सम्बन्ध बीज और वृक्ष म है वही सम्बन्ध साधन और साध्य म है। शतान की उपासना करके कोइ व्यक्ति ईश्वर भजन का फल नही पा सकता।[2] इसलिए उन्होने कहा था कि साध्य का नतिक हाना ही पर्याप्त नही है साधन को भी नतिक होना चाहिए। डॉ० लाहिया इस सम्बन्ध में गाधी जी से अत्यधिक प्रभावित थे। उनका भी सिद्धात था कि अच्छे साध्य के लिए अच्छे साधन की आवश्यकता होती है। उन्होने महात्मा गाधी के साधन-साध्य सम्बन्धी सिद्धान्त पर ही अपना तात्कालिकता का सिद्धान्त निर्मित किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक काय का औचित्य उसी म हाना है। उसके औचित्य के लिए किसी दूसरे काय का उल्लेख करने की आवश्यकता नही होती। उनकी दृष्टि मे यह एक भ्रष्ट सिद्धान्त है कि भविष्य के जनतत्र के लिए वतमान म नौकरशाही का सहारा लिया जाए भविष्य कालीन विश्व की एकता के लिए वतमान की राष्ट्रीय स्वतत्रता का होम किया जाए चरम सत्य की स्थापना के लिए आज असत्य का फलाव हो कल की अहिंसा के लिए आज हिंसा हो कल की गद्दी के लिए आज वनवास भोगा जाए कल के जीवन के लिए आज की हत्या की जाय। डॉ० लाहिया का गाधी जी के वाक्य, "एक कदम मेरे लिए पर्याप्त" न अत्यधिक प्रभावित किया था क्योंकि अच्छे साधन का एक कदम भी अपन मे औचित्य पूण साध्य लिए हुए है। डॉ० लोहिया न स्वय ही लिखा है 'At times when I have tried to think of Gandhiji he has come to me in the shape of an image a series of steps mounting upwards

* * * *
*

1—रामनारायण उपाध्याय गांधी-दर्शन पृष्ठ 137
2—मो० क० गांधी हिन्द स्वराज्य (1908) पृष्ठ 126

all set in a specific direction, but the top of it never yet completely formed, and ever continuing to go up, a man who goes along with cautious but firm steps and leads with him millions of his country men, one step enough for me [1]

सत्याग्रह —आज तक विश्व ने सुधार के केवल दो ही तरीकों को जाना था, समद अथवा रक्तरंजित क्रान्ति। महात्मा गांधी ने विश्व को सत्याग्रह का तीसरा तरीका दिया। व्यक्तिगत सत्याग्रह तो मीरा, प्रह्लाद आदि के उदाहरणों में प्राप्त हो सकता है परन्तु सामूहिक सत्याग्रह केवल गांधीजी की ही अद्वितीय देन है। महात्मा गांधी ने सत्याग्रह के अनेक प्रविधियों के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक पहलुओं पर प्रकाश डाला, जिनमें असहयोग, सविनय अवज्ञा हिजरत उपवास, हड़ताल आदि प्रमुख हैं। उनके सत्याग्रह में गरीबों के प्रति प्रेम और अन्यायियों के प्रति रोष था। इस तथ्य को डा० लोहिया ने भी पहिचाना और कहा "We must however remember that love as well as anger were component parts of Gandhiji s action [2]

महात्मा गांधी के सत्याग्रह से डॉ० लोहिया अत्यधिक प्रभावित हुए और उसके प्रेम और रोष के दोनों तत्वों को अपने सत्याग्रह में स्थान दिया। उनमें शोषकों के प्रति रोष और शोषितों के प्रति प्रेम था। उन्होंने न ही अहिंसा छोड़ी और न क्रान्ति। उनके सत्याग्रह में क्रान्ति और करुणा का सुन्दर समन्वय था। उन्होंने इसी आधार पर विनोबा के सत्याग्रह को एकांगी बताया। उन्होंने उनके सत्याग्रह में शोषितों के प्रति प्रेम तो देखा, किन्तु शोषकों के प्रति रोष का अभाव अनुभव किया। सत्याग्रह की विभिन्न विधियों में से सविनय अवज्ञा एवं हड़ताल को डॉ० लोहिया उचित और उपवास को अनुचित और धोखा धड़ी मानते थे। असहयोग को तो 'घिराव' आदि तक उन्होंने विकसित किया था। डा० लोहिया ने सतत सत्याग्रह करने पर बल दिया और आजीवन एक के बाद एक सत्याग्रह करते रहे जबकि महात्मा गांधी तो कभी-कभी ही सत्याग्रह करते थे। महात्मा गांधी और डा० लोहिया में एक यह भी अन्तर है कि महात्मा गांधी ने विदेशी शासन के प्रति सत्याग्रह किया, जबकि डा० लोहिया ने विदेशी और देशी दोनों अन्यायों के प्रति डॉ०

* * * * *

1—Dr Lohia Speech Hyderabad August 1952

2—Dr Lohia Will to Power and other writings page 145

3—महात्मा गांधी हिन्द स्वराज्य (1908) पृष्ठ 148-149

लोहिया ने शोषकों और अमीरों की अपेक्षाकृत गरीबों और दलितों के हृदय परिवर्तन पर अधिक बल दिया, जबकि गांधी जी ने अपेक्षाकृत शोषकों और अमीरों के हृदय परिवर्तन पर अधिक। सामूहिक सत्याग्रह के साथ-साथ शान्ति के व्यक्तिगत प्रयत्नों पर गांधी जी बहुत जोर देते थे जबकि डॉ० लोहिया का जोर व्यक्तिगत सत्याग्रह के साथ-साथ शान्ति के सामूहिक प्रयत्नों पर अधिक था।

डॉ० लोहिया के मत में सविनय अवज्ञा अन्याय से लड़ने का सर्वोत्तम और सशक्त ढंग है। उन्होंने अन्यायी कानून की सविनय अवज्ञा का जनता का अधिकार सुरक्षित रखना चाहा था क्योंकि इस अधिकार की अनुपस्थिति में अन्याय के प्रतिकारार्थ सशस्त्र क्रान्ति के द्वार खुल जाते हैं। इस सम्बन्ध में डॉ० लोहिया पर उस गांधी का प्रभाव था जिसने कहा था 'अगर मनुष्य एक बार इस बात को महसूस कर ले कि अनुचित जान पड़ने वाले कानूनों का पालन करना नामर्दी है तो फिर किसी का जुल्म उसे मजबूर नहीं कर सकता। यही स्वराज्य की कुंजी है।'[1]

गांधी जी के सविनय अवज्ञा सिद्धान्त को डॉ० लोहिया अद्वितीय और युगान्तरकारी देन मानते थे। उन्होंने महात्मा गांधी के प्रति अपनी कृतज्ञता स्पष्ट करते हुए कहा था 'Civil disobedience both as individual's habit and collective resolve is armed reason and anything else is either weak reason or unreasonable strength Such Civil disobedience is Gandhiji's direct gift to mankind डॉ० लोहिया और गांधी जी भी अन्याय का अहिंसात्मक प्रतिरोध चाहते थे जिसमें कि सबको समानता, स्वतन्त्रता और न्याय प्राप्त हो सके। वे 'अधिकतम लोगों के अधिकतम हित' में नहीं अपितु सर्वोदय में विश्वास रखते थे। दोनों विचारक भेदरहित राजनीति के संस्थापक थे।

धर्म और राजनीति —गांधी जी और लोहिया मानव धर्म अथवा विश्व धर्म में विश्वास करते थे। उनके अनुसार धर्म सत्य और अहिंसा पर आधारित एक नैतिक जीवन पद्धति है जो मनुष्य को सदा उसके कर्त्तव्यों की ओर प्रेरित करती रहती है। दोनों ही विचारकों के अनुसार सच्चा धर्म विश्व की एक नैतिक सुव्यवस्था में श्रद्धा रखना ही है। इसका अर्थ कट्टर पन्थ नहीं

* * * * *

2—Dr Lohia Marx Gandhi and Socialism, Page 17

है। यह धर्म हिन्दू धर्म इस्लाम धर्म ईसाई धर्म आदि सबसे परे है। इस प्रकार के धर्म को राजनीति में प्रवेश दिलाने हेतु ही महात्मा गांधी ने राजनीति में प्रवेश किया। डॉ० लोहिया ने भी उपयुक्त धर्म को राजनीति से घनिष्ठतम रूप में सम्बन्धित बताया। इतना साम्य होते हुए भी दोनों विचारकों में ईश्वर मन्दिर और पुनर्जन्म के प्रश्नों पर मतभेद था। गांधी जी ईश्वर मन्दिर और पुनर्जन्म में विश्वास करते थे, जबकि डा० लोहिया अविश्वास। राम कृष्ण और शिव गांधी जी को इसलिए आकर्षित करते हैं कि वे ईश्वर के अवतार हैं किन्तु डा० लोहिया को वे मर्यादित उन्मुक्त और असीमित व्यक्तित्व होने के कारण आकर्षित करते हैं। महात्मा गांधी सन्मति प्राप्ति हेतु अपने इष्ट राम से प्रार्थना करते हैं जब कि डॉ० लोहिया कृष्ण का हृदय, शिव का मस्तिष्क और राम की कृति के लिए राम, कृष्ण अथवा शिव से नहीं, अपितु भारत माता से प्रार्थना करते है।

अधिकार और कर्त्तव्य —गांधी और लोहिया की विचार प्रणाली में अधिकार और कर्त्तव्य एक ही सिक्के के दो पहलू है, किन्तु फिर भी गांधी जी ने अधिकार की अपेक्षा कर्त्तव्य पर अधिक बल दिया है। उनके सिद्धान्तानुसार कर्त्तव्य करने से अधिकार अपने आप आ जाते हैं। डा० लोहिया का सिद्धान्त गांधी के ठीक विपरीत था। उनके अनुसार जब तक व्यक्ति को अपने अधिकारों का ज्ञान नहीं होगा और वह अपने स्वाभिमान के प्रति जागृत नहीं होगा तब तक उसमें कर्त्तव्य की भावना नहीं आ सकती। कर्त्तव्य की भावना लाने के लिए उसे अधिकार दिया जाना आवश्यक है। डॉ० लोहिया ने स्वयं गांधी जी का उदाहरण देते हुए स्पष्ट किया कि यदि उनका अपने स्वाभिमान और अधिकार के प्रति जागरूकता न होती, तो वे दक्षिण अफ्रीका में रंग भेद के विरोध में आन्दोलन प्रारम्भ न करते बल्कि चुपचाप अन्याय और अत्याचार सहन करते रहते, जिस प्रकार लाखों काले लोग कर रहे थे।[1] अपने इसी विश्वास के कारण डॉ० लोहिया पद-दलितों के प्रवक्ता बन और उनको उनके अधिकारों के प्रति सचेत किया तथा चौखम्भा योजना प्रस्तुत कर उनको अधिकाधिक अधिकार प्रदान करने की पहल की।

(३) **आर्थिक विचार** —डॉ० लोहिया और महात्मा गांधी शोषण रहित समाज की स्थापना करना चाहते थे। वे आर्थिक विकेन्द्रीकरण, सम्पत्ति का सामाजिक हित में उपयोग आय में सम्भव समता मूल्य की शोषण रहित

* * * * *

1—डॉ० लोहिया जाति प्रथा पृष्ठ १ ६

नीति, सरल जीवन स्तर और श्रम की महत्ता में विश्वास करते थे। दोनों विचारक बड़ी मशीनों को शोषण का मुख्य द्वार मानते थे। उनकी दृष्टि मे बड़े यन्त्रों के प्रसार और औद्योगीकरण से समाज में भ्रष्टाचार और अनतिकता का प्रसार होता है। गांधी जी ने स्पष्ट कहा था "बड़े कारखाने तो सांप के बिल की तरह हैं जिनमें एक नहीं हजारों सांप भरे रहते हैं। जो यन्त्र हजारों आदमियों को उनके श्रम करने के अवसर से वंचित नहीं कर देते, बल्कि जो व्यक्ति को उसके श्रम मे मदद देते हैं और उसकी कार्य शक्ति को बढ़ाते हैं और जिन यन्त्रों को मनुष्य अपनी इच्छा से बिना उसका दास हुए चला सकता है उन सब यन्त्रों का गाँधी के ग्रामोद्योग आन्दोलन मे अभयदान प्राप्त था। इस प्रकार वे सभी यन्त्रो मे चरखा सूर्य के समान था, जिसके चारों और ग्रहों के समान हाथ से चलाये जाने वाले अन्य सब यन्त्र चक्कर काटते हैं। गांधी जी के मत में चर्खा औद्योगिक संघर्ष का नहीं, अपितु औद्योगिक शान्ति का प्रतीक है। 'चरखे मे नीति शास्त्र भरा है अर्थ शास्त्र भरा है, और अहिंसा भरी है।[1] डॉ० लोहिया की दृष्टि में भी केवल छोटे यन्त्रों पर आधारित उद्योग पद्धति देश मे सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक क्रान्ति ला सकती है।

दोनों ही विचारकों ने आर्थिक विकेन्द्रीकरण के लिए ग्रामोद्योगों को विकसित करने पर बल दिया जो केवल छोटे उपकरणों से सम्भव है। उनमें अन्तर केवल इतना है कि गांधी जी के छोटे यन्त्र प्राचीन काल के केवल हाथ से चलने वाले सुस्त उपकरण हैं—जैसे ठेकुला, चक्की, चर्खा, करघा, गाडी इत्यादि। किन्तु डा० लोहिया इन यन्त्रों को पर्याप्त नहीं मानते। उनके मत में इन हाथ के सुस्त उपकरणों का बिजली तेल पेट्रोल आदि की सहायता से नवीनीकरण और आधुनिकीकरण होना चाहिए। इस प्रकार डा० लोहिया के छोटे यन्त्रों की कल्पना मध्यम मार्गीय हैं क्योंकि वे न तो प्राचीनकाल के सुस्त उपकरण हैं ओर न ही वहदाकार और शोषक आधुनिक यन्त्र। उनका विश्वास है कि छोटे यन्त्रों पर आधारित उद्योग व्यवस्था से सभी को काम मिल सकेगा और सम्पत्ति एक व्यक्ति अथवा वर्ग मे न रह कर सभी के पास होगी तथा धनवान अपनी सम्पत्ति से श्रमिकों के श्रम का शोषण न कर पायेंगे।

* * * * *

1—महात्मा गांधी—हरिजन सेवक (नई दिल्ली 13 12 47)

व्यक्तिगत सम्पत्ति —महात्मा गांधी और डॉ० लोहिया का मत था कि व्यक्तिगत सम्पत्ति का उपयोग सामाजिक हित में होना चाहिए। सत्य अहिंसा के साथ महात्मा गांधी ने अस्तेय और अपरिग्रह के सिद्धान्त दिये। अस्तेय सिद्धान्त के अनुसार किसी व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति की वस्तुओं को अनाधिकृत ढंग से नहीं लेना चाहिए, क्योंकि यह चोरी है। अपरिग्रह का सिद्धान्त व्यक्तियों को संचय अथवा एकत्रित करने से रोकना है। यदि कोई व्यक्ति पूंजी को एकत्रित करता है तो उसे चाहिए कि वह इस सम्पत्ति को समाज की सम्पत्ति समझे क्योंकि वह सम्पत्ति समाज के सहयोग से ही उसे प्राप्त हुई है। गांधी जी के मतानुसार पूंजीपति को श्रमिकों की रक्तरंजित क्रान्ति द्वारा ध्वस्त नहीं किया जाना चाहिए, अपितु नैतिक शिक्षा द्वारा उसके हृदय को इस प्रकार परिवर्तित किया जाना चाहिए कि वह अपने को संचित की हुई सम्पत्ति का संरक्षक मात्र समझे और समाज की आवश्यकतानुसार समाज के हित में इसे दे सके। डॉ० लोहिया के मत में भी, पूंजीपतियों और उद्योगपतियों द्वारा श्रमिकों पर जो अत्याचार किए जाते हैं, वे पूर्णतः समाप्त होने चाहिए। इस हेतु उन्होंने श्रम के शोषण पर आधारित समस्त उत्पादन के साधनों के राष्ट्रीयकरण की मांग की।

हम देखते हैं कि गांधी और लोहिया दोनों ही विचारक मानते थे कि पूंजीपति साधन रहित श्रमिक वर्ग का शोषण करते हैं। उनमें अन्तर यह है कि गांधी जी पूंजीपतियों से व्यापार और उद्योग को छीन कर राज्य को नहीं सौंपना चाहते क्योंकि ऐसा करने से एक ओर समाज कुछ व्यक्तियों की योग्यता से वंचित हो जाएगा और दूसरी ओर वह स्वयं भी शोषण करने लग जाएगा। डॉ० लोहिया गांधी जी की इस नैतिक और अध्यात्मवादी व्यवस्था को पर्याप्त नहीं मानते थे। उनका मत था कि जब तक राजनैतिक व्यवस्था द्वारा पूंजीशाही को धराशायी नहीं किया जाता तब तक शोषण और विषमता की समाप्ति नहीं हो सकती। इसलिए उन्होंने श्रम के शोषण पर आधारित व्यक्तिगत उत्पादन के साधनों पर राज्य के स्वामित्व को आवश्यक बताया। इसके साथ ही केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को समाप्त करने के लिए उन्होंने विकेन्द्रित व्यवस्था का रूप रेखा भी प्रस्तुत की। संक्षेप में, वे शोषण समाप्ति के लिए आध्यात्मिक और भौतिक दोनों ही प्रकार के प्रयत्न आवश्यक मानते थे, जब कि गांधी जी केवल आध्यात्मिक प्रयत्न में ही संतुष्ट थे क्योंकि वे हृदय परिवर्तन में अधिक विश्वास करते थे। उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट है कि गांधी

जिससे उनका और उनके अशक्त आश्रितों का गुजारा सन्तोषजनक रीति से हो जाए।[1] इसी प्रकार दोनों ही विचारक वस्तुओं के मूल्य को अधिक नहीं बढ़ने देना चाहते थे। उनके मत में निर्माता को अधिक लाभ कमाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। भौतिक समता के साथ साथ दोनों विचारकों ने मानसिक समता पर भी बल दिया।

(४) भाषा विषयक दृष्टि—महात्मा गांधी हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाना चाहते थे और उसी प्रकार डा० लोहिया भी तत्काल अंग्रेजी के प्रयोग को सार्वजनिक जीवन से बहिष्कृत करना चाहते थे। दोनों विचारक चाहते थे कि व्यक्ति अपनी मातृभाषा अथवा हिन्दी में कार्य करे। महात्मा गांधी ने बड़े दुख के साथ कहा था, 'स्वराज्य की बात हम विदेशी भाषा में करते हैं यह कितनी दयनीय दशा है।'[2] दोनों ही विचारक हिन्दी को सरल, सुबोध सुस्पष्ट और साधारण जन के समझने लायक बनाना चाहते थे। गांधी के स्पष्ट शब्द थे, 'इन किसानों और मजदूरों की भाषा—ऐसी भाषा जिसे वे सहज ही समझ सकें—हिन्दी या हिन्दुस्तानी ही है। वह हमारी राष्ट्र भाषा हो सकती है।[3] भाषा सम्बन्धी दृष्टिकोण दोनों ही विचारकों के समान थे। पर इतना अवश्य है कि मातृ भाषा के लिए जितना डा० लोहिया ने संघर्ष किया उतना गांधी जी ने नहीं। डॉ० लोहिया ने हिन्दी को व्यापक बनाने में भी गांधी जी से अधिक कार्य किया।

(५) विश्व, शान्ति विश्व सरकार और वसुधैव कुटुम्बकम के स्वप्न—डा० लोहिया और महात्मा गांधी दोनों ही अहिंसा और सत्याग्रह पर अटल विश्वास रखते थे। अतः स्वाभाविक रूप से वे विश्व शान्ति के समर्थक थे। निःशस्त्रीकरण, विश्व-संघ अन्तर्राष्ट्रीयतावाद आदि में दोनों ही विचारक प्रगाढ़ आस्था रखते थे। वे युद्ध को हेय समझते थे। गांधी जी से एक पग आगे बढ़कर डॉ० लोहिया ने समता, स्वतन्त्रता और भ्रातृत्व के आधार पर एक विश्व सरकार और एक विश्व विकास-संस्था की कल्पना दी। उन्होंने सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता और निषेधाधिकार की भर्त्सना की और समता, स्वतन्त्रता के आधार पर संयुक्त राष्ट्र संघ के पुनर्गठन की चर्चा की। साम्राज्यवाद को धराशायी करने के लिए गांधी जी से कहीं अधिक कार्य डॉ० लोहिया ने किया। अन्तर्राष्ट्रीय

* * * * *

1—किशोरी लाल घ० मश्रूवाला गांधी विचार-दोहन पृष्ठ 96
2—रामनारायण उपाध्याय गांधी दर्शन पृष्ठ 99
3—महात्मा गांधी हरिजन-सेवक पृष्ठ, 8 3-5-35

जमींदारी की समाप्ति की भी पहल डा० लोहिया ने की। निःसन्देह गांधी और लोहिया विश्व-नागरिक थे।

समाजवादी संहिता की रूप रेखा —समता स्वतन्त्रता और भ्रातृत्व में दोनों विचारकों की आस्था थी सब भूमि गोपाल की अथवा सब सम्पत्ति प्रजा की है में दोनों को विश्वास था किन्तु गांधी जी इन सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देने के लिए व्यक्तिगत आचार को ही प्रमुख मानते थे। उनके मत में समाजवाद की शुरूआत पहले समाजवादी से होती है। अगर एक भी ऐसा समाजवादी हो तो उस पर सिफर बढ़ाए जा सकते हैं। पहले सिफ़र से उसकी कीमत दस गुनी हो जाएगी। इसके बाद बढ़ाया जाने वाला हर सिफर पहले की तादाद को दस गुनी बढ़ाता जाएगा। लेकिन अगर पहला सिफ़र ही हो तो उसके आगे कितने ही सिफर क्यों न बढ़ाये जाएँ उसकी कीमत सिफर ही रहेगी।[1] वे कानून से काम नहीं लेना चाहते थे, क्योंकि कानून में दबाव होता है और उससे असमय साधुओं का निर्माण होता है। डॉ० लोहिया नैतिकता और आचार शास्त्र के साथ-साथ कानून को भी आवश्यक मानते थे।

गांधी जी की दृष्टि में समता ही समाजवाद है। जिस तरह मनुष्य के शरीर के सारे अंग बराबर हैं उसी तरह समाजरूपी शरीर के सारे अंग बराबर हैं यही समाजवाद है।[2] गांधी जी ने समाजवाद को अद्वैतवाद की संज्ञा भी दी थी क्योंकि इस वाद में राजा और प्रजा अमीर और गरीब, मालिक और मजदूर का द्वैत नहीं है। गांधी जी का यह दृष्टिकोण अधूरा और अपर्याप्त था क्योंकि गरीबी और निर्धनता की स्थिति में समता और अद्वैतवाद समाज को सुखी नहीं बना सकता। एक सुखी समाज के लिए समता के साथ सम्पन्नता भी चाहिए जिसकी पूर्ति डॉ० लोहिया ने की। डॉ० लोहिया की परिभाषा में समाजवाद अद्वैतवाद तो है ही साथ-साथ सम्पन्नता का भी दर्शन है अथवा इसे यों भी कहा जा सकता है कि डॉ० लोहिया का समाजवाद समृद्ध सम्पन्न अद्वैतवाद है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि गांधी की ट्रस्ट की कल्पना, वर्णाश्रम का उनका समर्थन मन्दिर मूर्ति, ईश्वर, पूजा और प्रार्थना में उनकी निष्ठा आदि कुछ ऐसे विषय हैं जिनमें डॉ० लोहिया कभी भी सहमत नहीं हुए लेकिन इन

* * * * *

1—महात्मा गांधी हरिजन सेवक पृष्ठ 13-7-47
2—महात्मा गांधी हरिजन सेवक 13-7-47

अपनी विशेषताओं को छोड़ देने के बाद मानव जाति के प्रति असीम सेवा-भाव अन्याय का प्रतिकार करने के लिए प्रचंड सात्विक क्रोध और मानव कल्याण चिन्तन की नैसर्गिक एवं मौलिक प्रवृत्ति डॉ० लोहिया और महात्मा गांधी में समान रूपेण मिलती है। राजनीति में अहिंसात्मक प्रतिरोध को डॉ० लोहिया गांधी जी की युगान्तकारी देन प्रारम्भ से ही मानते आए हैं किन्तु गांधी के आर्थिक विचारों से वे पूरी तरह कभी भी सहमत न थे।

गांधी जी ने जिस सत्य अहिंसा अस्तेय, अपरिग्रह अभय आदि की दोहाई दी थी उसे राजनैतिक, आर्थिक, आध्यात्मिक और सामाजिक क्षेत्र में वधानिक व्यवस्था द्वारा प्रभावशाली और वास्तविक बनाने का कार्य डॉ० लोहिया ने किया। उन्होंने स्पष्टत कहा था, Our task now is to elaborate a system in which it would be possible for the individual to be good but also necessary for him to be so [1] जिन गरीबों को महात्मा गांधी ने 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' का पाठ पढ़ाया था, उनको डॉ० लोहिया ने दायें हाथ से कर्त्तव्य करना और बायें हाथ में अधिकार रखना सिखाया। यदि महात्मा गांधी ने व्यक्तियों को ईश्वर पर भरोसा करना सिखाया तो डॉ० लोहिया ने समझाया कि मनुष्य अपने भाग्य का स्वयं निर्माण करता है। वे डा० लोहिया ही थे जिन्होंने आधुनिक विश्व के 'समाजवाद स्वातन्त्र्य और अहिंसा के त्रिसूत्रीय आदर्श को इस प्रकार से रखा कि वह 'सत्यम् शिवं सुन्दरम्' के प्राचीन आदर्श का रूप ले सके। निष्कर्षत यह कहना गलत न होगा कि डॉ० लोहिया गांधीवाद के विकसित उत्तराधिकारी हैं। एक होनहार शिष्य की तरह उन्होंने गांधी जी के मूल सिद्धान्तों को जिन्दा तो रखा ही उनमें किंचित् परिमार्जन एवं परिवर्धन कर उन्हें अधिक सबल भी बनाया। आइये अब लोहिया को पश्चिम की समाजवादी विचार-धारा के प्रतिनिधि—मार्क्स के साथ अध्ययन करें।

कार्ल मार्क्स और डॉ० लोहिया

मार्क्सवाद कुछ निश्चित सिद्धान्तों में बाँटा जा सकता है। यदि हम सामाजिक क्रान्ति के पश्चात् समाज के संगठन पर विचार न करें, क्योंकि इस विषय पर मार्क्स ने अधिक नहीं लिखा है, न तो इसका सम्बन्ध राजनीति से है, न अर्थशास्त्र से ही है और इसीलिए मार्क्सवाद के क्षेत्र से परे है तो मार्क्स के

* * * * *

1—Dr Lohia Marx Gandhi and Socialism p 136

सिद्धान्तों को हम मूल्य और लाभ (शोषण) के सिद्धान्त कह सकते हैं, जिनका मूल, इतिहास के विकास के एक खास दृष्टिकोण मे है और जो वर्तमान पूंजी *वाद के क्षय की भविष्यवाणी करता है। मार्क्सवाद के मुख्य सिद्धान्त निम्न* लिखित हैं जिन्हें डॉ० लोहिया के विचारों के साथ निम्नलिखित ढंग से अध्ययन किया जा सकता है।

इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या और डा० लोहिया —डॉ० लाहिया ने मार्क्स द्वारा की गई इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या का कभी भी नही माना। मार्क्स की इस व्याख्या के अनुसार भौतिक जीवन मे उत्पादन की पद्धति सामाजिक राजनतिक और बौद्धिक जीवन क्रम का निश्चित करती है। मनुष्य जो सामाजिक उत्पादन करते हैं उसमें वे एस निश्चित सम्बन्ध स्थापित करते हैं जो अनिवार्य और उनकी इच्छा स स्वतन्त्र होते हैं। मार्क्स की इतिहास की इस भौतिकवादी व्याख्या स स्पष्ट है कि मार्क्स पदार्थ अथवा सामाजिक अस्तित्व अथवा विषय (आर्थिक लक्ष्य) का निर्णायक मानता है। उसके अनुसार मनुष्य की चेतना भौतिक परिस्थिति को निश्चित नही करती, इसके विपरीत उसकी भौतिक परिस्थिति ही उसकी चेतना को निश्चित करती है।

डा० *लोहिया इस विचार को एकांगी मानते हैं। उनके अनुसार मनुष्य की* चेतना और उसकी भौतिक परिस्थिति अन्योन्याश्रित है दोनों ही एक दूसरे *को प्रभावित करते है। इसलिए इनको एक दूसरे के अधीनस्थ नहीं रखा जा* सकता। मार्क्स की मान्यता है कि आर्थिक लक्ष्य प्राप्त हो जाने पर अन्य सभी *लक्ष्य प्राप्त हो जाते हैं क्योंकि आर्थिक स्थिति की नीव पर ही समाज का* सम्पूर्ण ढांचा खडा होता है। इसके विपरीत डॉ० लोहिया आर्थिक लक्ष्य और अन्य सब लक्ष्यों को अन्योन्याश्रित समझते हैं। इसलिए वे आर्थिक लक्ष्य के साथ साथ अन्य सभी लक्ष्यों (सामाजिक, बौद्धिक राजनतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि) को प्राप्त करने के लिए पृथक रूप से प्रयास करना आवश्यक मानते हैं। वे साधारण लक्ष्य को आर्थिक लक्ष्य का परिणाम नही मानते और विशेषत भारत के सन्दर्भ म तो और भी नही। उनका स्पष्ट मत था जो समाजवादी कहता है कि मन को ठीक किए बिना पेट को अलग से ठीक करो वह नादान है बेचारा अभी कुछ जानता नही।'[1]

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और डा० लोहिया —डा० लोहिया का मत था कि किसी विचारधारा की फलदायक परख उसके आन्तरिक तत्व से की जा

* * * * *

1—डॉ० लोहिया भारत मे समाजवाद पृष्ठ 12

सकती है। इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या का सम्पूर्ण ढाँचा उत्पादन की बढ़ती हुई शक्तियों और उत्पादन के स्थिर सम्बन्धों के संघर्ष के आन्तरिक तर्क पर खड़ा है। वास्तव में यह तर्क अपने आप में पूर्ण, निश्चित और संगत है। समाज स्वयं गतिशील है और भौतिकवादी व्याख्या में इस गति की कुंजी है, जिसके अनुसार बढ़ती हुई शक्तियों और जकड़े सम्बन्धों शोषितों और शोषकों के बीच संघर्ष होता रहता है। कुंजी इतनी सरल है और सृष्टि के भेद का पता इससे इतनी अच्छी तरह लगता मालूम होता है कि यह बहुत ही आकर्षक प्रतीत होती है, लेकिन आश्चर्य यह है कि इससे किसी भी अंधेरे कमरे में प्रकाश नहीं पड़ता। इससे केवल इतना मालूम पड़ता है कि इतिहास इतिहास नहीं है और इतिहास की गति की ऊँचाइयाँ और शायद नीचाइयाँ भी हमेशा ऐसी ही रही होंगी और भविष्य में भी ऐसी ही रहेंगी। आज समस्त संसार में विकसित शक्तियों और स्थिर सम्बन्धों की एक विशेष स्थिति है जिसने योरप और अमरीका को इतिहास की चोटी पर रख दिया है और शेष दुनियाँ को नीचे गड्ढे में। इसलिए डॉ० लोहिया ने मार्क्स पर यह आरोप लगाया कि उसकी इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या यथास्थिति की सेवा करने वाला एक सिद्धान्त है विशेषतः योरप की महानता का। उन्होंने कहा है "इतिहास पर द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद जिस तरह लागू किया गया है, उसके आन्तरिक तर्क की इस जाँच से पता लगता है कि यह उतना ही आध्यात्मिक है जितना द्वन्द्वात्मक और बिल्कुल ऐतिहासिक।"[1] डा० लोहिया की आलोचना उचित भी प्रतीत होती है क्योंकि मार्क्स के इस सिद्धान्तानुसार परिवर्तन की दिशा एक है और यदि यह सिद्धान्त पूँजीवाद की कब्र पर वर्गविहीन समाज की स्थापना करता है तो वह स्वयं समाप्त होता है क्योंकि मार्क्स कहता है कि यह सिद्धान्त शाश्वत है।

वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त और डॉ० लोहिया—मार्क्स के वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्तानुसार आदि काल के साम्यवाद के पश्चात् प्रत्येक काल और प्रत्येक देश में समाज दो प्रमुख विरोधी वर्गों में विभक्त हो जाता है। एक तो विशेषाधिकार प्राप्त उत्पादन साधनों के स्वामियों का छोटा सा शोषक वर्ग और दूसरा श्रमिकों का विशाल शोषित वर्ग। मार्क्स कहता कि प्राचीन मध्य और आधुनिक काल में क्रमशः मालिक, सामन्त और पूँजीपति शोषक वर्ग तथा दास कृषक और श्रमिक वर्ग शोषित रहे हैं। डा० लोहिया

* * * * *

1—डा० लोहिया इतिहास चक्र पृष्ठ 33

मार्क्स की तरह डॉ० लोहिया भी वर्ग-संघर्ष में विश्वास करते हैं। डॉ० लोहिया का कथन है 'सभी युगों में आन्तरिक असमानता रही है और यह उन वर्गों के माध्यम से प्रकट होती रही है जो आपस में संघर्ष करते रहे हैं? इसमें कोई शंका नहीं।'[1] दोनों विचारकों में अन्तर यह है कि मार्क्स केवल आर्थिक स्थिति को ही वर्ग का आधार मानता है, जबकि डॉ० लोहिया जाति भाषा, सम्पत्ति आदि को वर्ग का आधार मानते हैं। डॉ० लोहिया ने वर्ग के आधार-जाति और भाषा पर अत्यधिक बल दिया है। यदि हम यह कहें कि मार्क्स के वर्ग-संघर्ष को डॉ० लोहिया ने जाति संघर्ष और भाषा संघर्ष में संशोधित किया, तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। मार्क्स और लोहिया में एक यह भी अन्तर है कि डा० लोहिया के मतानुसार वर्गों के आन्तरिक और बाह्य संघर्ष के दोहरे दबाव में (आन्तरिक संघर्ष वर्गों के बीच और बाह्य संघर्ष राष्ट्रों के बीच) सभ्यता टूटती या मिटती है। इस प्रकार के दोहरे संघर्षों की चर्चा अर्नाल्ड टायनबी ने भी की है, किन्तु मार्क्स ने आन्तरिक सर्वहारा और बाह्य सर्वहारा के इस अन्तर की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया। यदि मार्क्स राष्ट्रों के बाह्य संघर्ष पर ध्यान देते तो सर्वहारा राष्ट्र की बढ़ती हुई गरीबी पर भी उनका ध्यान जाता।

अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त और डा० लोहिया —मार्क्स के अनुसार अतिरिक्त मूल्य के द्वारा पूंजीपति श्रमिकों का शोषण करता है जिसमें पूंजीपतियों के पास धन का केन्द्रीकरण होता है। अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त पर मार्क्स पूंजीवाद की व्याख्या करता है। वह कहता है कि पूंजीवादी व्यवस्था श्रमिकों की संख्या बढ़ाती है उन्हें संगठित समूहों में एक साथ लाती है उनमें वर्ग चेतना भरती है उन्हें विश्वव्यापी स्तर पर सहयोग करने और परस्पर मिलने-जुलने के साधन प्रदान करती है, उनकी क्रिया शक्ति को घटाती है और उनका अविबाधित शोषण करके उन्हें संगठित विरोध करने के लिए उत्प्रेरित करती है। पूंजीवाद के विरुद्ध उत्क्रान्ति संबंधी मार्क्स के इन विचारों में डॉ० लोहिया पूर्णतः सहमत नहीं है।

डॉ० लोहिया का मत है कि सर्वहारा वर्ग की उत्क्रान्ति संबंधी मार्क्स की विचारधारा अधूरी और अपर्याप्त है। उनका प्रतिपादन था कि जब हम कहते हैं कि पूंजीवाद ने उत्पादन शक्ति और उत्पादन संबंध के बीच का संघर्ष तीव्र किया है, तो इस अर्ध सत्य को पूर्ण करने के लिए जोड़ना चाहिए कि उत्क्राति

* * * * *

1—डॉ० लोहिया इतिहास-चक्र पृष्ठ 29

की प्रक्रिया में पूँजीवाद ने विश्व को दो भागों में विभाजित किया है। आधुनिक यंत्रों से लाभ प्राप्त करने वाला एक तृतीयांश विश्व का वह भाग है जिसकी उत्पादन शक्ति को इसने लाभान्वित किया है और तृतीयांश विश्व का वह शोषित भाग है जिसकी उत्पादन शक्ति को इसने संकुचित और ध्वंस करके दरिद्रता, विपत्ति और अगणित कष्ट उत्पन्न किए हैं। डॉ० लोहिया का यह विचार भी व्यापक है। अपने विचार के द्वारा डा० लोहिया ने मार्क्स के वर्ग संघर्ष सिद्धान्त को राष्ट्रीय सीमाओं की संकुचित परिधि से मुक्ति प्रदान की। वर्ग-संघर्ष के साथ साथ उन्होंने राष्ट्र संघर्ष को भी अपरिहार्य बताया। उन्होंने स्पष्टतः कहा है The Marxists claim that the history of human civilization is the history of class struggles But they forget that race struggles also have played an equally important role [1] मार्क्स के इन सिद्धान्तों के अतिरिक्त डॉ० लोहिया ने मार्क्स की भविष्य-वाणियों पर भी विचार किया था।

मार्क्स की भविष्यवाणियाँ और डॉ० लोहिया —डा० लोहिया का मत था कि मजदूरों के समाजीकरण पूँजी के केन्द्रीकरण और सर्वहारा की गरीबी की वृद्धि संबंधी मार्क्स की तीनों भविष्य वाणियाँ सत्य निकलीं, किन्तु उस रूप में नहीं जिस रूप में उसने की थी। मार्क्स की भविष्य वाणी के अनुसार उपर्युक्त तीनों तथ्यों को एक ही अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत घटित होना चाहिए था जबकि वे पृथक्-पृथक् अर्थ व्यवस्थाओं में घटित हुई। पूँजी का केन्द्रीकरण और मजदूरों का समाजीकरण पश्चिमी योरूप और अमरीका में हुआ है और सर्वहारा वर्ग की गरीबी विश्व की दो तृतीयांश देशों की पिछड़ी हुई अर्थ-व्यवस्थाओं में बढ़ी है। डा० लोहिया ने छोटे पूँजीपतियों (मध्य वर्ग) के लोप की मार्क्स की भविष्य वाणी को गलत बताया। डॉ० लोहिया के मत में मध्यम वर्ग की संख्या बढ़ी है घटी नहीं। डा० लोहिया ने मार्क्स के उस लौह नियम को गलत बताया जिसके अनुसार पूँजीवादी दुनिया के महान स्वामियों को ही समाजवाद का जन्मदाता होना चाहिए था। मार्क्स के इस नियम के अनुसार पूँजीवादी देश इंगलैंड और अमरीका में समाजवाद सर्वप्रथम आना चाहिए था। वहाँ न आकर समाजवाद गैर पूँजीवादी देश चीन और रूस में आया। मार्क्स ने रूस में *क्रान्ति की सम्भावना चाहे यदाकदा स्वीकारी भी हो लेकिन चीन के सम्बन्ध* में तो उसने सोचा भी न था। डॉ० लोहिया की दृष्टि में मार्क्स को सही ढंग से

* * * * *

2 Dr Lohia Marx Gandhi and Socialism page 367

यह कहना चाहिए था कि पूंजीवादी व्यवस्था उन देशों में ध्वस्त होगी जहां सर्वहारा वर्ग की गरीबी अत्यधिक बढ़ती जाएगी। डा० लोहिया के शब्दों में, 'With this correction of Marxist analysis of capitalist development, I could conclude easily that the shattering of capitalist civilization will take place in those areas where poverty has kept on increasing'[1]

डा० लोहिया ने मार्क्स को कई स्थलों पर विरोधाभास से भरा पाया। मार्क्स एक ओर ऐतिहासिक निर्णयवाद के सिद्धान्त को मानता है, जिसके अनुसार आर्थिक शक्तियां मनुष्य की इच्छा से स्वाधीन रहते हुए इतिहास के प्रवाह का निर्धारित करती हैं और दूसरी ओर वह 'कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणा पत्र' की अन्तिम पंक्तियों में 'दुनिया के मजदूरो एक हो' का नारा लगाता है। इसके अतिरिक्त डॉ० लोहिया को मार्क्स के इस नारे की पूर्णता भी असम्भाव्य जान पड़ती है, क्योंकि जब तक विभिन्न राष्ट्रों में मजदूरों के वेतन और उत्पादन शक्ति में विषमता है तब तक मजदूरों की एकता एक स्वप्न है।

उत्पादन के सम्बन्ध और उत्पादन शक्तियां —मार्क्स और डॉ० लोहिया के विचारों में और भी कई अन्तर सहज ही दृष्टव्य हैं। मार्क्स केवल पूंजीवादी उत्पादन के सम्बन्धों को विनष्ट करना चाहता है जबकि डा० लोहिया पूंजीवादी उत्पादन के सम्बन्धों और पूंजीवादी उत्पादन की शक्तियों दोनों को ही समाप्त करना चाहते हैं। मार्क्स केवल पूंजीपति वर्ग को समाप्त करना चाहते हैं, जबकि डॉ० लोहिया पूंजीपति वर्ग और उसके द्वारा दिए गए उत्पादन के विशाल साधनों को भी समाप्त करना चाहते हैं। मार्क्स पूंजीशाही बड़े-बड़े यन्त्रों के उद्योग चाहता है जबकि डा० लोहिया तेल, बिजली, पेट्रोल आदि से परिचालित ऐसे छोटे-छोटे, यन्त्रों पर आधारित उद्योगों की स्थापना करना चाहते हैं जो कि साधनहीन छोटे-छोटे श्रमिकों कृषकों और अन्य गरीब वर्गों को उपलब्ध हो सकें। इस अन्तर के प्रमुख दो कारण प्रतीत होते हैं। प्रथम कारण तो यह है कि मार्क्स योरुप और अमरीका जैसे साधन-युक्त देशों की प्रगति पर अपनी दृष्टि गड़ाए था, जब कि डा० लोहिया भारत जैसे अविकसित और निर्धन देश की प्रगति पर। दूसरा कारण यह है कि मार्क्स केन्द्रीकरण को उचित मानता है जबकि डॉ० लोहिया विकेन्द्रीकरण को।

* * * * *

1—Dr Lohia Marx, Gandhi and Socialism page 101

केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण—डॉ० लोहिया के मत में जहाँ आर्थिक जनतन्त्र नहीं है वहाँ राजनतिक जनतन्त्र भी नहीं हो सकता। इसी तरह जहाँ राजनतिक जनतन्त्र नहीं है वहाँ आर्थिक जनतन्त्र नहीं हो सकता। इसलिए डॉ० लोहिया के मतानुसार जनतन्त्र के लिए आर्थिक और राजनतिक विकेन्द्रीकरण आवश्यक है। वे मार्क्सवादी व्यवस्था में आर्थिक और राजनतिक शक्ति का केन्द्रीकरण पाते हैं, क्योंकि मार्क्स का ध्येय व्यक्तिगत पूँजी को छीन कर राज्य को सौंपना है। यह तो उत्पादन सम्बन्धों का हस्तान्तरण मात्र है क्योंकि व्यक्ति पूँजीपति का स्थान राज्य जैसा पूंजीपति ले लेता है और श्रमिक तो फिर भी पराधीन रह जाता है। अन्तर केवल इतना हो जाता है कि पहले वह व्यक्ति पूंजीपतियों के अधीन रहता है और अब वह राज्य की केन्द्रीकृत सत्ता के अधीन। वह आत्म स्वाभिमानी न होकर नौकर मात्र रह जाता है क्योंकि जो उसके पास छोटे मोटे घरेलू उद्योग धन्धे रह भी जाते हैं वे राष्ट्रीयकृत बड़े यन्त्रों की तुलना में टिक नहीं पाते। हाँ उसकी भौतिक आवश्यकता की पूर्ति तुलनात्मक ढंग से अधिक हो जाती है, क्योंकि व्यक्ति-पूंजीपति जैसा शोषण राज्य पूंजीपति नहीं करता। मार्क्स के दर्शन में सर्वहारा वर्ग के इस प्रकार के अधिनायकत्व का कभी अन्त नहीं होता। मार्क्स के द्वारा बताया गया वह साम्यवाद कभी नहीं आता जिसमें राज्य मुरझा जाएगा और मात्र वस्तुओं का प्रशासन रह जाएगा। सन १९१७ ई० के बाद अब भी रूस में उपर्युक्त अधिनायकत्व ही चल रहा है जिसके गर्भ से मार्क्स का अन्तिम चरण शायद ही जन्म लेगा। साम्यवादी दर्शन के कठोर नियन्त्रण ने व्यक्तियों की स्वतन्त्रता को भी हजम कर लिया है। क्या व्यक्ति तोते की तरह केवल रोटी पाकर पिंजड़े में बन्द रह सकता है इसलिए मार्क्स के विपरीत डॉ० लोहिया विकेन्द्रित राष्ट्रीयकरण लघु उद्योग धन्धे तथा ऐसी विकेन्द्रित राजनतिक व्यवस्था चाहते है जिसमें व्यक्ति स्वतन्त्रतापूर्वक हाथ बँटा सकता है।

आर्थिक लक्ष्य और सामान्य लक्ष्य—उपर्युक्त विभेदीकरण के अतिरिक्त मार्क्स और डॉ० लोहिया में एक और गहरा अन्तर यह है कि पूंजीवादी व्यवस्था विनष्ट करने के पश्चात मार्क्स सन्तुष्ट हो जाता है क्योंकि उसके अनुसार आर्थिक लक्ष्य को प्राप्त कर लेने पर जीवन के साधारण लक्ष्य (सामाजिक राजनतिक सांस्कृतिक) स्वतः प्राप्त हो जाते है। डॉ० लोहिया पूंजीवादी व्यवस्था मात्र का विनष्ट करना पर्याप्त नहीं मानते। इसके पश्चात् वे सांस्कृतिक सामाजिक राजनतिक और धार्मिक समस्याओं से भी जूझना चाहते हैं

क्योंकि उनके मतानुसार आर्थिक लक्ष्य के पश्चात् साधारण लक्ष्य स्वत प्राप्त नहीं हो जाते, उनके लिए पृथक से प्रयास करना पड़ता है। डॉ० लोहिया का कहना है कि 'Even apart from the fact that a general refining of the economic theory is necessary, an integrated theory which deals with general aims and economic aims separately is required '[1]

समता तथा मार्क्स और लोहिया —आर्थिक लक्ष्य और सामान्य लक्ष्य के उपयुक्त विभेद के कारण मार्क्स का समाजवादी दर्शन एक आर्थिक दर्शन मात्र है, जो कि भौतिक समता और विशेषत आर्थिक समता का सिद्धान्त है। इसके विपरीत डॉ० लोहिया का समाजवाद एक जीवन दर्शन है जिसमें समता के विभिन्न पहलुओं का महत्व है। डॉ० लोहिया ने समता के तीन पहलू बतलाए हैं—भौतिक, सहानुभूतिगत अथवा मानसिक तथा आध्यात्मिक। भौतिक समता का तात्पर्य एक राष्ट्र की सीमा में मनुष्य और मनुष्य के बीच की बराबरी ही नहीं बल्कि एक राष्ट्र और दूसरे राष्ट्र के बीच मनुष्यों की बराबरी या समत्व भी है। मार्क्स ने भौतिक समता को आर्थिक समता में सीमित कर दिया लेकिन डॉ० लोहिया की भौतिक समता में आर्थिक समता के अतिरिक्त राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक समताएं भी सम्मिलित हैं। मार्क्स ने राष्ट्रों के बीच की भौतिक समता पर उतना अधिक बल नहीं दिया जितना कि डॉ० लोहिया ने। समता का दूसरा पहलू मानसिक है। जिस प्रकार एक परिवार के सभी सदस्य एक दूसरे के प्रति मानसिक समता रखते हैं उसी प्रकार विश्व के सम्पूर्ण राष्ट्रों को और सम्पूर्ण मानव समुदाय को छोटे और बड़े का भाव न रखकर आपस में एक दूसरे के प्रति सहानुभूति रखना चाहिए। डॉ० लोहिया का यह सिद्धान्त 'वसुधैव कुटुम्बकम' की कल्पना को मूर्त रूप देने का एक भव्य प्रयास है। समत्वम् का तीसरा पहलू आध्यात्मिक है जिसके अनुसार व्यक्ति को सुख-दुःख, जयाजय, हानि-लाभ, जन्म मरण, शीतोष्ण में एक समान रहना चाहिए। इस प्रकार के स्थितप्रज्ञ व्यक्ति का वर्णन अपने यहाँ गीता और उपनिषदों में भी प्राप्त होता है। इस प्रकार मार्क्स के विपरीत डा० लोहिया ने भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक समता को समत्व कहा और यह समत्व ही उनके समाजवाद का आधार है। उन्होंने

* * * * *

1 Dr Lohia Marx, Gandhi and Socialism page 112

स्पष्ट कहा था "समाजवाद की राजनीति का आधार समत्व ही होगा। भविष्य का हिन्दुस्तान ऐसे ही लोगों का पैदा करे।"[1]

मानव स्वतन्त्रता तथा मार्क्स और लोहिया —मार्क्स ने आर्थिक समता के अतिरिक्त अन्य मानव अधिकारों की कोई कल्पना नहीं की, क्योंकि वह मानव अधिकारों को आर्थिक समता पर ही अवलम्बित मानता था। उसका यह विचार स्वप्नमात्र था। मार्क्सवाद का जो रूप रूस चीन अथवा अन्य साम्यवादी देशों में आया उससे यह स्पष्ट होता है कि साम्यवाद आर्थिक समता की झूठी बलिवेदी पर मानव के समस्त मानव अधिकारों को बलिदान करना चाहता है। इस प्रकार की शासन व्यवस्था राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यक्तियों के जनतान्त्रिक शासन के अधिकारों भाषण देने सभा करने, और विचार अभिव्यक्ति के अधिकारों के लिए गम्भीर संकट उत्पन्न करती है। मार्क्स का सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व संक्रान्ति काल नहीं बल्कि अन्तिम लक्ष्य बन गया और अधिनायकत्व तथा मानव के मौलिक अधिकार दो विरोधी विचार हैं जिनका साथ साथ चलना प्राय असम्भव होता है। इसके विपरीत डॉ० लोहिया ने मानव के भाषण देने सभा करने विचार अभिव्यक्त करने सविनय अवज्ञा करने के मूल अधिकारों को मान्यता दी और उनके लिए जीवन पर्यन्त संघर्षरत रहे।

सम्पन्नता तथा मार्क्स और लोहिया —मार्क्स ने जो दर्शन विश्व को दिया वह केवल आर्थिक समता लाने का प्रयास है। ऐसा प्रतीत होता है कि मार्क्स आर्थिक समता को ही समाजवाद समझता है। डॉ० लोहिया मार्क्स से एक पग अधिक आगे हैं क्योंकि डॉ० लोहिया ने समता के साथ-साथ सम्पन्नता लाने के भी सिद्धान्त और कार्यक्रम बतलाए हैं। उनका समाजवाद केवल समता का नहीं अपितु सम्पन्नता का भी दर्शन है। दोनों दार्शनिकों के उपर्युक्त विभिन्न कारण उनके साध्यों में भिन्नता आ गई है। मार्क्स का साध्य वर्ग हीन और राज्यहीन समाज की स्थापना है जबकि डॉ० लोहिया का साध्य उस वर्गहीन और वर्णहीन राज्य की स्थापना है जिसमें लोक भाषा लोक भूषा, लोक भोजन और लोक संस्कृति का स्वतन्त्र विचरण हो और जिसमें समता के साथ साथ सम्पन्नता और स्वतन्त्रता का भी उपयोग लोग कर सकें।

साध्य-साधन तथा मार्क्स और लोहिया — डॉ० लोहिया और मार्क्स के दर्शनों में केवल साध्य का ही नहीं, अपितु साधन का भी अन्तर है। जन

* * * * *

1—डॉ लोहिया नया समाज नया मन पृष्ठ 18

तान्त्रिक दृष्टि से अधिक विकसित दशो म मार्क्स ने भले ही दबे दिल से सवधानिक साधना की सम्भाव्यता स्वीकारी हो, किन्तु इसमे कोई सन्देह नही कि उसने हिंसात्मक क्रान्ति मे अपना विश्वास प्रगट किया है। उसका मत या कि कोई भी व्यक्ति अपनी गद्दी का बिना भय के नही त्यागता। इसलिए उसे सशस्त्र क्रांति मे पूर्ण आस्था है वह अपने साध्य को प्राप्त करने के लिए छल, कपट झूठ हिंसा और हत्या आदि का सहारा लेन से नहीं हिचकिचाता। वह भविष्य के जनतन्त्र के लिए वतमान के अधिनायकत्व का स्वीकारता है। वह आज असत्य का फलाव करके कल चरम सत्य की स्थापना करना चाहता है। कल की अहिंसा के लिए वह आज हिंसा करता है और कल के जीवन के लिए आज हत्या करता है। इसके विपरीत डॉ० लोहिया साक्षात्कार सिद्धान्त के सृष्टा और सत्याग्रह माग के अनुयायी हैं। वे चाहते हैं कि प्रत्येक काय का औचित्य स्वय उसी काय म निहित हो उसका औचित्य सिद्ध करने के लिए बाद के किसी काय के उल्लेख की आवश्यकता न हो। उनका सिद्धान्त रचनात्मक उचित और तकसगत है जबकि मार्क्स का सिद्धान्त ध्वसात्मक अनुचित और कुतर्कपूर्ण है। क्योकि आज के किसी अनुचित कृत्य का कल के किसी उचित परिणाम से जोडकर उचित ठहराना सिद्धान्तहीनता है। कारण और फल की शृङ्खला बाँधने मे किसी भी काय के औचित्य की कसौटी नही बन पाती और न ही अभीष्ट फल प्राप्त हो पाता है। लोहिया मार्क्स गाधी से कहाँ तक भिन्न है इस तथ्य को पूर्ण रूप से समझने के लिए अब हम मार्क्स गाधी और लोहिया के दशनो का सयुक्त रूप से अध्ययन करेंगे।

मार्क्स गाधी और डॉ० लोहिया

मार्क्स, गाधी और डा० लोहिया के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि गाधी और मार्क्स दोनो हो विचारक अतिवादी थे। गाधी का आत्मा पर विश्वास था तो मार्क्स का पदार्थ पर। गाधी के अनुसार व्यक्ति के विचार भौतिक परिस्थितियो को बनाते हैं। मार्क्स के अनुसार भौतिक परिस्थितियाँ विचारो का सृजन करती हैं। डा० लोहिया दोनो विचारको को एकागी मानते हैं। उनके अनुसार आत्मा और पदार्थ का द्वन्द्व झूठा है। पदार्थ के बिना आत्मा और आत्मा के बिना पदार्थ का कोई अस्तित्व नही। दोनो एक दूसरे के पूरक हैं। विचार भौतिक परिस्थितियो को प्रभावित करते हैं और भौतिक परिस्थितियाँ विचारो को। इसलिए आत्मा और पदार्थ (मानव चेतना और सामाजिक अस्तित्व) अन्योन्याश्रित हैं।

विषय और प्रवृत्ति (मार्क्स गांधी और लोहिया) —गांधी जी का मत है कि मानव की चेतना अथवा विचार बदल देने से समाज अपने आप बदल जाएगा। इसलिए गांधी जी ने ट्रस्टीशिप की कल्पना निकाली और अस्तेय अपरिग्रह सत्य अहिंसा आदि की नैतिक शिक्षा देकर पूंजीपतियों के हृदय परिवर्तन का प्रयास किया। इस प्रकार वे प्राचीन आध्यात्मिक समाजवाद के प्रतीक थे। इसके विपरीत मार्क्स का विश्वास था कि भौतिक परिस्थिति बदल देने से व्यक्तियों के विचार अपने आप बदल जाएंगे। इसलिए उसने आर्थिक स्थिति को परिवर्तित करने पर ही अपना ध्यान केंद्रित किया। इस प्रकार वह भौतिक समाजवाद का अग्रदूत बना। डा० लोहिया ने मार्क्स के आर्थिक और असंयमित समाजवाद को सर्वांगीण और संयमित किया। उन्होंने गांधी जी के आध्यात्मिक समाजवाद को भौतिक वास्तविकताओं से सम्बद्ध किया। डा० लोहिया के समाजवाद में गांधी दर्शन की चाह (व्यक्ति के अन्तराल का सुधार) एवं मार्क्सवादी उत्कंठा (बाह्य अथवा भौतिक स्थिति का सुधार) दोनों ही अपनी बुराइयों को खोकर साकार हुए हैं। उन्होंने स्वयं कहा था, हिन्दुस्तान में समाजवाद को अब आध्यात्मिक और भौतिक दोनों का वैचारिक पुट देकर खड़ा किया जाए यह नहीं कि फिर खिचड़ी पकाई जाए बल्कि एक ऐसे आधार पर खड़ा किया जाए कि जिसमें उस मनुष्य के इन दोनों तथ्यों की सहायता मिल सके।[1]

आर्थिक लक्ष्य और सामान्य लक्ष्य (मार्क्स गांधी और लोहिया) —कार्ल मार्क्स ने विषय (आर्थिक लक्ष्य) को प्रधानता दी और प्रवृत्ति (साधारण लक्ष्य) को उसका अधीनस्थ और अनुगमन करने वाला बताया। इसके विपरीत महात्मा गांधी ने प्रवृत्ति (साधारण लक्ष्य धार्मिक सामाजिक आध्यात्मिक लक्ष्य आदि) को प्रधानता दी और विषय को उसके अधीन माना। मार्क्स के अनुसार आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त कर लेने पर साधारण लक्ष्य स्वतः प्राप्त हो जाएँगे और गांधी जी के अनुसार आर्थिक लक्ष्य अपने आप साधारण लक्ष्यों से मिल जाएँगे। इस प्रकार दोनों विचारकों ने विषय और प्रवृत्ति में से एक को प्रमुख और दूसरे को गौण समझा है। डॉ० लोहिया ने विषय और प्रवृत्ति को अन्योन्याश्रित सम्बन्धों में जोड़ने का प्रयास किया।[2] उन्होंने समाजवाद को एसा शस्त्र दिया है जो दोनों को ही काट-छाँट कर सँवारता है और उन्हें वर्तमान तथा परम्परागत रूपों से निकाल कर एक दूसरे के

* * * * *

1—डॉ० लोहिया भारत में समाजवाद पृष्ठ 19

2—डॉ० लोहिया इतिहास-चक्र पृष्ठ 30

अनुरूप बनाता है। यही स्वर्णिम मध्य मार्ग हम उनके धार्मिक दृष्टिकोण में भी पाते हैं।

धर्म और राजनीति (मार्क्स, गांधी और लोहिया) —मार्क्स धर्म को 'अफीम की गोली' मानकर उसका तिरस्कार करता है। गांधी जी ने राजनीति में धर्म प्रवेशार्थ ही प्रवेश किया था। डॉ० लोहिया न तो मार्क्स के समान राजनीति को धर्म से पृथक् ही करना चाहते हैं और न गांधी जी के समान राजनीति का धर्म से संयुक्त। उनके मतानुसार धर्म जहाँ तक हिंसात्मक संघर्ष उत्पन्न करता हो अथवा सम्पत्ति, जाति प्रथा, नारी आदि की दृष्टि से यथास्थिति का समर्थन करता हो वहाँ तक वह अफीम की गोली है और जहाँ तक वह सदाचार की दृष्टि से नैतिक और सामाजिक शिक्षा दे अथवा भूतदयावाद और समाधिवत् अनुशासन सिखावे वहाँ तक उसको राजनीति से संयुक्त करना अत्यावश्यक है।[1] इस प्रकार डा० लोहिया ने धर्म और अधर्म के कल्पित विरोध को समाप्त किया। डा० लोहिया की धर्म सम्बन्धी इस संतुलित विचारधारा को हम सत्ता विकेन्द्रीकरण के सम्बन्ध में सहज ही देख सकते हैं।

केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण (मार्क्स, गांधी और लोहिया) —मार्क्स आर्थिक और राजनैतिक शक्तियों के केन्द्रीकरण का प्रतीक है। उसका सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व राज्यहीनता और वस्तुओं के प्रशासन में परिणत होता कभी भी दिखाई नहीं देता। विशाल उपकरणों पर आधारित उसका औद्योगीकरण स्वाभाविक रूप से आर्थिक शक्ति का केन्द्रीकरण करता है यह बात अलग है कि यह केन्द्रीकरण पूंजीपति में न होकर राज्य में होता है। इसके विपरीत गांधी जी की आस्था स्वायत्तशासी और स्वावलम्बी ग्रामों में है। उनके ग्राम यहाँ तक स्वतन्त्र हो जाते हैं कि वे सम्पूर्ण विश्व के विरुद्ध अपनी रक्षा करने का अधिकार रखते हैं उन्हें आवागमन और संचार के साधनों की आवश्यकता नहीं। वे एथेन्स और स्पार्टा से भी अधिक स्वतन्त्र और एकान्तप्रिय गणराज्य बन जाते हैं। इस राजनैतिक विकेन्द्रीकरण के साथ-साथ गांधी जी ने चर्खा और अन्य परम्परावादी हाथ से चलने वाले यन्त्रों के कुटीर उद्योगों पर बल देकर आर्थिक विकेन्द्रीकरण चाहा है। मार्क्स और गांधी के ये विचार अतिवादी हैं। एक में प्रगतिवाद की अति है तो दूसरे में परम्परावाद से चिपकाव। एक में केन्द्रीकरण का चरमोत्कर्ष है तो दूसरे में विकेन्द्रीकरण की विशिष्टता।

* * * * *

1 Dr Lohia—Marx Gandhi and Socialism page 375

डा० लोहिया ने केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण के मध्य का मार्ग अपनाया है। उनके चौखम्भा राज्य की योजना के अन्तर्गत ग्राम मण्डल राज्य और केन्द्र की चार सरकार होगी जिनको चारों को अपने अपने संविधान अपनी अपनी सरकारें बनाने का अधिकार होगा।[1] वे एक दूसरे से स्वतन्त्र रहती हुई इस प्रकार संयोजित होगी कि राष्ट्रीय एकता को कोई धक्का न लगे। इस राजनीतिक विकेन्द्रीकरण की तरह ही उन्होंने आर्थिक विकेन्द्रीकरण चाहा है। उन्होंने न तो मार्क्स के विशाल यन्त्रों का अपनाया और न ही गाधी जी के परम्परावादी सूत हाथ के उपकरणों को। उनकी दृष्टि में बिजली तेल पेट्रोल आदि से चलने वाले और सबको उपलब्ध हो सकने वाले छोटे यन्त्र ही वे आधार हैं जिन पर भारत की स्वावलम्बी उद्योग व्यवस्था खड़ी हो सकती है।

व्यक्तिगत सम्पत्ति (मार्क्स, गाधी और लोहिया) —गाधी जी सम्पत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार के समर्थक थे। वे सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण को उचित नहीं समझते। वे सम्पत्ति के प्रति मोह त्याग को आवश्यक मानते थे। इसके विपरीत मार्क्स ने सम्पत्ति के मोह त्याग की कोई चर्चा नहीं की। वह श्रम का शोषण करने वाले सभी उत्पादन साधनों का राष्ट्रीयकरण चाहता था। डा० लोहिया मार्क्स और गाधी से भिन्न थे। वे श्रम का शोषण करने वाले उत्पादन के साधनों का विकेन्द्रित राष्ट्रीयकरण चाहते थे। किन्तु साथ ही साथ सम्पत्ति के प्रति मोह का त्याग भी। उनका मत था कि बिना राष्ट्रीयकरण के सम्पत्ति के प्रति मोह त्याग नहीं हो सकता और बिना मोह त्याग किए सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण बन्धन विवशता और दासता है। गाधी और मार्क्स के विचारों को वे एकांगी और अपर्याप्त मानते थे। वे सम्पत्ति की संस्था और सम्पत्ति के प्रति मोह दोनों को विनष्ट करना चाहते थे। उनका साफ कहना था मुझे ऐसा लगता है कि हमको इस तरह का मन और इस तरह के कायदे क्रम बनाने पड़ेंगे कि जिसमें एक तरफ तो सम्पत्ति के मोह का नाश हो और दूसरी तरफ राष्ट्रीयकरण हो।[2]

समता का स्वरूप (मार्क्स, गाधी और लोहिया) —कार्ल मार्क्स और महात्मा गाधी ने समता का केवल भावात्मक अमूर्त और निगुणात्मक रूप ही विश्व को

* * * * *

1 Harris Wofford J R —Lohia and America Meet Front page 136

2—डॉ लोहिया भारत में समाजवाद पृष्ठ 22

दिया गांधी और मार्क्स का सिद्धान्त योग्यतानुसार करना और आवश्यकतानुसार पाना एक अनिश्चित, अस्पष्ट, अमूर्त और भ्रमात्मक सिद्धान्त है।[1] वर्तमान समाजवाद ने भी समता का कोई निश्चित अनुपात प्रस्तुत नहीं किया। डॉ० लोहिया ने ही सर्वप्रथम समता को ठोस और निश्चयात्मक रूप दिया। उन्होंने आमदनी में १ : १० का अनुपात, भू-स्वामित्व में १ : ३ का अनुपात निश्चित किया। उनका मत था कि दो फसलों के बीच वस्तुओं की कीमत में सोलह प्रतिशत से अधिक का अन्तर नहीं होना चाहिए। उनका प्रतिपादन था कि तैयार माल के विक्रय मूल्य और लागत मूल्य में ड्योढ़े से अधिक का अन्तर नहीं होना चाहिए। खर्च पर सीमा का प्रस्ताव उन्हीं ने रखा। उपर्युक्त नीतियों द्वारा उन्होंने आर्थिक समता को ठोस रूप दिया। इसी प्रकार सामाजिक और राजनैतिक समता को भी उन्होंने ठोस रूप दिया। जाति उन्मूलन, नर नारी समता, हरिजन प्रवेश, भाषा, चौखम्भा सम्बन्धी उनके सभी सिद्धान्त ठोस और निश्चित हैं। उनका स्पष्ट कहना था कि देश काल, परिस्थिति के अनुसार समता का कोई अर्थ नहीं। हम कह सकते हैं कि समाजवाद के प्रत्येक अमूर्त और अस्पष्ट सिद्धान्त को मूर्त और स्पष्ट रूप देने का श्रेय डॉ० लोहिया को ही है। हवाई और काल्पनिक समाजवाद को वास्तविकताओं में रंगने का कार्य उनकी आगमनात्मक शैली ने किया। वास्तव में डॉ० लोहिया के समग्र दर्शन का उद्भव अध्ययन के बन्द कक्षों अथवा विद्यार्थियों की संकुचित विचारों कक्षाओं से नहीं हुआ। उसका उन्नयन तो जीवन की दैनिक आवश्यकताओं संघर्षमय वास्तविकताओं और कठोर परिस्थितियों से हुआ है।

सत्याग्रह और वर्ग संघर्ष (मार्क्स, गांधी और लोहिया) —डॉ० लोहिया ने गांधी जी की शोषिता के प्रति महानुभूति को और शोषकों के प्रति रोष को गहरा किया है। उन्होंने मार्क्स की हिंसात्मक वृत्ति को फटकारा है और उसकी क्रांति सम्बन्धी धारणा को अपनाया है। इस प्रकार उन्होंने क्रांतिमय करुणा का मेल किया है। गांधी जी को वर्ग संघर्ष में नहीं अपितु सत्याग्रह में विश्वास था। इसके विपरीत मार्क्स का सत्याग्रह में नहीं अपितु वर्ग संघर्ष में विश्वास था। डॉ० लोहिया ने सत्याग्रह और वर्ग-संघर्ष के विरोध को काल्पनिक बनाया। उनका मत था कि वर्ग संघर्ष के सिद्धान्तानुसार पूंजीपति शोषक और मजदूर वर्ग शोषित है। दोनों वर्गों के हितों में टकराव ही संघर्ष का मूल है। सविनय अवज्ञा में अन्यायी अशुभ है सत्याग्रही अथवा न्यायी शुभ है। दोनों के उद्देश्यों

* * * * *

1—रामनारायण उपाध्याय गांधी-दर्शन पृष्ठ 185

म विरोध ही सघप का कारण है। वग सघप क सिद्धान्त की तरह सत्याग्रह का सिद्धात भी अशुभ की शक्ति को कम करना और शुभ की शक्ति का बढाना चाहता है। डॉ० लोहिया क शब्दों में 'A fancy oppositio1 h1s been allowed to grow between Satyagrah and class struggle There is in fact no such opposition and a genuine class struggle is civil disobedience Satyagrah and class struggle are but two names for a single exercise in power, reduction of the power of evi[1] and increase in the power of the good [1]

व्यक्ति और समाज (मार्क्स गांधी और लोहिया) –मार्क्स समाज का साध्य और व्यक्ति का साधन मानता था। इसके विपरीत गाधी जी व्यक्ति का साध्य और समाज अथवा राज्य को साधन मानते थे। डॉ० लोहिया व्यक्ति को ही साध्य और साधन दोनों मानते थे। उनका मत था कि व्यक्ति अन्याय क विरुद्ध सघप करन क अस्त्र क रूप म साधन है और चूकि वह सुधारे जान वाले समाज का एक अभि न अग है इसलिए वह साध्य है।[2] हम साराश म कह सकते हैं कि डा० लोहिया द्वन्द्व की भाषा को अपर्याप्त और एकागी मानते थे। प्रत्येक वस्तु क सम्बन्ध तीन प्रकार क हो सकते हैं—स्वतन्त्र, अधीन और अन्योन्याश्रित। मार्क्स और गाधी न हिंसा-अहिंसा, पदार्थ, आत्मा विषय प्रवृत्ति केन्द्रीकरण विकेन्द्रीकरण राजनीति धर्म समाज-व्यक्ति म स्वतन्त्र और अधीन के सम्बन्ध माने है, जब कि डा० लोहिया न इनको अन्योन्याश्रित पाया। वे स्वर्णिम मध्यम माग क अनुयायी थे। सक्षेप में, डा० लोहिया मार्क्स और गाधी का सशोधित और सतुलित रूप हैं।

सक्षप म हम कह सकते है कि डा० लोहिया का दर्शन एक ऐसा जीवन दर्शन है जिसका अन्वेषण और सृजन जीते जागते हाड मास वाले उस मानव जाति के लिए किया गया है जो स्वय ही भौतिक एव आधिभौतिक तत्वों के सम्यक सम्मिश्रण का प्रतिफल है। डॉ० लोहिया का दर्शन मार्क्स क दर्शन के समान न तो उत्तरी ध्रुव है जहाँ जीवन दूभर है न तो गाधी के दर्शन के समान दक्षिणी ध्रुव जहाँ पहुचना दु साध्य। उनका दर्शन तो वह प्रथम

* * * * *

1—Dr Lohia Marx Gandhi and Socialism, page 346
2—Dr Dohia Marx Gandhi and Socialism page 375

मध्याह्न रेखा है जो इन दोनो ध्रुवों को जोडती है और जिस पर सुखी ससार के समृद्ध जन निवास करते है। डॉ० लोहिया का दर्शन यथार्थवादी है व्याव हारिक है मनोवैज्ञानिक है और वैज्ञानिक है। यह वह त्रिवेणी का सगम है जहाँ जमुना का हरा गगा का स्वच्छ और अदृश्य सरस्वती का लाल जल अपने विभिन्न रगो को तेज कर एक नवीन रूप धारण करता है जिसमे मानव को मोक्ष देने की अमोघ शक्ति होती है।

अध्याय १०

मूल्यांकन

डा० लोहिया का जीवन नेता, मित्र, पथ प्रदर्शक तीनों का अद्भुत सम्मिश्रण था। उनके व्यक्तित्व में करुणा, प्रेम, क्रोध और घृणा के आश्चर्य रूपों का समावेश था। वे योद्धा, सेनानी, वीर विचारक, भविष्य द्रष्टा, पद-दलितों के प्रवक्ता और गरीबों के मसीहा थे। वे भारतीय राजनीति के क्रुद्ध युवक थे किन्तु उनका क्रोध कभी भी व्यक्तिगत द्वेष पर आधारित न था। अपनी निर्भीक और पवित्र राजनीति के कारण उन्हें अपने ऊपर सनकी, अशिष्ट भाषी, द्वेषी, वैयक्तिक आक्षेपकर्ता, मूर्तिभंजक आदि के आक्षेप सहन करने पड़े, किन्तु फिर भी उन्होंने सम्पूर्ण देश पर अमिट प्रभाव छोड़ा, उसे निर्देशित और आन्दोलित किया। गांधी जी के पश्चात केवल वही एक नेता थे जिन्होंने भारतीय राजनीति को जनाभिमुख बनाने और जन स्पर्शी कार्यक्रम प्रारम्भ करने की प्रक्रिया प्रारम्भ की।

मूलतः डा० लोहिया राजनीतिक विचारक, चिन्तक और स्वप्नद्रष्टा थे लेकिन उनका चिन्तन राजनीति तक कभी सीमित नहीं रहा। संस्कृति, दर्शन, साहित्य, इतिहास, भाषा आदि के सम्बन्ध में भी उनके मौलिक विचार थे। व्यापक दृष्टिकोण, दूरदर्शिता, समन्वय और सन्तुलन उनकी चिन्तनधारा की विशेषता थी। उनकी विचारधारा देश काल की परिधि से बंधी नहीं थी। विश्व की रचना और विकास के सम्बन्ध में उनकी अनोखी व अद्वितीय दृष्टि थी। वे एक नवीन सभ्यता और नवीन संस्कृति के द्रष्टा और सृष्टा थे।

डा० लोहिया के चिन्तन में अनेकता के दर्शन होते हैं। त्याग, बुद्धि और प्रतिभा के साथ सूर्य की प्रखरता है तो वहीं चन्द्रमा की शीतलता भी। शोषितों के प्रति उनमें फूल की कोमलता है तो शोषकों के प्रति उनमें वज्र की कठोरता भी है। एक ओर उनका दर्शन ध्वंसात्मक है तो दूसरी ओर रचनात्मक भी। एक ओर यदि वे गृह व्यवस्था से लेकर विश्व व्यवस्था तक के प्रति विद्रोह कर उसे ध्वस्त करते हुए प्रतीत होते हैं तो दूसरी ओर प्रत्येक स्तर की व्यवस्था का पुनर्निर्माण करने में भी नहीं चूकते। उनके दर्शन की इस ध्वंसात्मकता और रचनात्मकता की व्याख्या भिन्न चश्मा वाले व्यक्ति भिन्न ढंग से कर सकते

हैं। जो व्यक्ति लोहिया की तरह विश्व का सर्वत्र अन्याय और विषमताओं से भरा पाते हैं वे उनकी ध्वंसात्मक प्रवृत्ति का अन्यायों का सतत और सर्वत्र संघर्ष मानकर उसकी प्रशंसा कर सकते हैं और जो व्यक्ति विश्व में उतना अन्याय और अत्याचार नहीं देखते जितना लोहिया, वे लोहिया-दर्शन की ध्वंसात्मकता को अनुपस्थित शत्रु से झगड़ता हुआ मानकर उसकी आलोचना भी कर सकते हैं। लेकिन डॉ० लोहिया के दर्शन का ध्वंसात्मक पहलू उनके सृजनात्मक पहलू का एक अभिन्न अंग है। वे कुरूप त्रस्त, दलित, भूखे और नंग वर्तमान को इसलिए ध्वस्त करना चाहते हैं कि उसका स्थान एक सुन्दर सुखी और सम्पन्न भविष्य ले सके। इस सदर्भ में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उनके द्वारा प्रतिपादित राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक आदि व्यवस्थाओं के मानचित्र इसके ज्वलंत प्रमाण हैं। लेकिन उनकी कुछ आदर्श योजनाएँ कुछ लोगों को अव्यवहारिक और असम्भव सी प्रतीत हो सकती हैं जैसे विश्व सरकार, संयुक्त राष्ट्र संघ का पुनर्गठन, विश्व समाजवाद का नवदर्शन भूमि का पुनर्वितरण अन्तर्राष्ट्रीय जमींदारी उन्मूलन अन्तर्राष्ट्रीय जाति प्रथा उन्मूलन सम्बन्धी उनकी आदर्श कल्पनाएं।

उनकी कुछ विचारधाराएँ कुछ विचारकों को विरोधाभास से भी परिपूर्ण प्रतीत हो सकती हैं। क्योंकि एक ओर वे व्यक्तिगत सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण का प्रतिपादन करते हैं तो दूसरी ओर व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का भी। एक ओर व्यय पर प्रतिबन्ध लगाकर वे जीवन को सरल बनाना चाहते हैं तो दूसरी ओर वे सम्पन्नता और आनन्द को भी आवश्यक मानते हैं। एक तरफ तो वे कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन के सिद्धांत का पालन करते हैं तो दूसरी ओर अधिकार को भी बहुत महत्वपूर्ण मानते हैं। एक जगह तो उन्होंने यहाँ तक कहा है कि अधिकार की भावना के आए बिना कर्त्तव्य की भावना नहीं आ सकती। इसी प्रकार उनका मत था कि सिद्धान्त दीर्घकालीन कार्यक्रम है और कार्यक्रम अल्पकालीन सिद्धान्त, धर्म दीर्घकालीन राजनीति है और राजनीति अल्पकालीन धर्म। इसी के समान उनकी ऐसी कई उक्तियाँ विरोधाभासपूर्ण प्रतीत होती हैं। उन्हें समझने के लिए गहन दृष्टि की आवश्यकता है। डॉ० लोहिया के राजनीतिक चिंतन की यह विशेषता थी कि वे वर्तमान की राजनीति को सुदूर से और सुदूर की राजनीति को वर्तमान से जानते थे।

डॉ० लोहिया बहुमुखी क्रांतिकारी दर्शन के जनक थे। अन्याय का तीव्रतम प्रतिकार उनके कर्मों व सिद्धान्तों की बुनियाद रही है। संसदीय राजनीति

का प्रयास डा० लोहिया ने किया है। उन्होंने भाषा को पारिभाषिक, ठेठ सशक्त, सरल बोधगम्य रोचक और सटीक बनाने पर बल दिया। उनकी भाषानीति की आलोचना लोग यह कह कर कर सकते हैं कि उन्होंने भाषा के स्तर को निम्न किया है अथवा उसकी साहित्यिक गरिमा को आघात पहुँचाया है। किन्तु यह आलोचना उचित नहीं कही जा सकती क्योंकि भाषा के लिए सब प्रथम यह आवश्यक है कि वह सामान्य जन की भाषा बन। केवल तभी वह सार्वजनिक कार्यों की भाषा बन सकती है और केवल उसी हालत में वह सशक्त परिमार्जित और साहित्यिक भी बन सकती है। इसके विपरीत शुद्धता के चक्कर में पड़कर यदि भाषा को इतना अधिक जटिल बना दिया जाता है कि सामान्य जन के प्रयोग में वह न आ सके तो वह अविकसित और कमजोर भाषा बनकर रह जाती है।

डा० लोहिया के दर्शन के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि उसमें सतुलन और सम्मिलन का समावेश है। डा० लोहिया का भारतीय संस्कृति से न केवल अगाध प्रेम था, बल्कि उसकी आत्मा को उन्होंने हृदयगम किया था। उन्होंने अद्वैतवाद ब्रह्म ज्ञान की जिस तरह सही व्यवस्था की है उसी तरह राम कृष्ण और शिव की भी क्रमश सीमित उन्मुक्त और असीमित व्यक्तित्व के प्रतीक के रूप में अराधना की है। उन्होंने अपनी संस्कृति को एकता और समता का मूल बतलाया है। कोरी और हवाई आध्यात्मिकता में न भटक कर उन्होंने संस्कृति के इन मूल तत्वों को समझा है और इसीलिए राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय संस्कृति की भावना में उनको सकुचित और सीमित नहीं किया है। उन पर जर्मनी की शिक्षा का भी प्रभाव पड़ा। उन्होंने पश्चिमी समाजवाद पर भी चिन्तन कर अपनी नीर क्षीर विवेक बुद्धि का परिचय दिया। समाजवाद की यूरोपीय सीमाओं और आध्यात्मिकता की राष्ट्रीय सीमाओं को तोड़कर उन्होंने एक विश्व दृष्टि विकसित की। उनका विश्वास था कि पश्चिमी विज्ञान और भारतीय अध्यात्म का सच्चा मिलन तभी हो सकता है जब दोनों का इस प्रकार संशोधन किया जाय कि वे एक दूसरे के पूरक बनने में समर्थ हो सकें।

डा० लोहिया की विचार-पद्धति रचनात्मक है। वे जीवन पर्यन्त उग्र साधना में रत रहे जिसने अद्वैतता को इस प्रकार संशोधित किया कि वे अपर्याप्त से पर्याप्त और अपूर्ण से सम्पूर्ण हो गए। इसी रूप में उन्होंने समत्व के सिद्धान्त को केवल भौतिक समता अथवा केवल आध्यात्मिक समता की सीमाओं से मुक्त करके, जीवन के उक्त दोनों क्षेत्रों के अतिरिक्त स्थित प्रपत्ता

का भी समावेश इस सिद्धान्त में किया। वे उस समाजवाद को एकांगी और अपर्याप्त समझते थे जो अध्यात्मवाद और भौतिकवाद में से किसी एक का पुछल्ला मात्र बनकर रह जाता है। डॉ० लोहिया का दर्शन एक ऐसा समुद्र है जहाँ पश्चिम और पूर्व की धाराएँ अपने शुद्ध रूपों में आकर मिलती हैं। डॉ० लोहिया में भारत की आध्यात्मिकता और पश्चिम की कार्य क्षमता का सम्मिश्रण है। उनका विश्वास था कि 'सत्यं शिवम् सुन्दरम्' के प्राचीन आदर्श और आधुनिक विश्व के समाजवाद, स्वातंत्र्य और अहिंसा के त्रिसूत्रीय आदर्श को इस रूप में रखना होगा कि वे एक दूसरे का स्थान ले सकें। वहीं मानव जीवन का सुन्दर सत्य होगा और उस सत्य को जीवन में प्रतिष्ठित करने के लिए मर्यादा-अमर्यादा का, सीमा असीमा का बहुत ध्यान रखना होगा।

द्वन्द्व की अनुपस्थिति डॉ० लोहिया के दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता है। आज तक के अधिकांश विचारकों ने धर्म राजनीति में, आत्मा-पदार्थ में व्यक्ति समाज में विषय (आर्थिक लक्ष्य) प्रवृत्ति (साधारण लक्ष्य) में, राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता में द्वन्द्व ही द्वन्द्व देखा है। कोई धर्म और राजनीति में दामन चोली का सम्बन्ध मानता है तो कोई राजनीति को धर्म से एकदम पृथक कर देता है। गांधी के समान कोई यदि आत्मा को मानता है तो मार्क्स के समान कोई पदार्थ को मानता है। यदि कोई आर्थिक लक्ष्य की पूजा करता है तो कोई साधारण लक्ष्य की। कोई व्यक्तिवाद का भक्त है तो कोई समाजवाद का। इसी प्रकार यदि कोई राष्ट्रीयता का आदर करता है तो कोई अन्तर्राष्ट्रीयता का। अब तक एक के महत्व को स्वीकार कर दूसरे के महत्व को ठुकराया गया है। एक दूसरे को कारण और फल की शृंखला में रखने का गलत भ्रम ही शताब्दियों से दर्शनों को भ्रमित करता आया है। डा० लोहिया ने सर्वप्रथम दोनों के कल्पित संघर्ष को समाप्त किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि दोनों विरोधी समझे जाने वाले तत्व एक दूसरे के विरोधी नहीं, अपितु सहायक और पूरक हैं। वे अन्योन्याश्रित हैं।

डा० लोहिया की मान्यता है कि आत्मा पदार्थ को प्रभावित करती है और पदार्थ आत्मा को। इसी प्रकार आर्थिक लक्ष्य साधारण लक्ष्य को प्रभावित करते हैं और साधारण लक्ष्य आर्थिक लक्ष्य को। व्यक्ति समाज को प्रभावित करता है और समाज व्यक्ति को। राष्ट्रीयता अन्तर्राष्ट्रीयता को और अन्तर्राष्ट्रीयता राष्ट्रीयता को प्रभावित करता है। विरोधी समझे जाने वाले दोनों तत्वों में अधीन और स्वतंत्र का रिश्ता उचित नहीं। इस प्रकार के रिश्ता की खोज करने वाले दर्शन अपर्याप्त अव्यावहारिक और असत्य हैं। इन दोनों

तत्वों के बीच अन्यो याश्रय सम्बन्धो का निदर्शन ही यथार्थता है और यह यथार्थता डा० लोहिया के दर्शन मे हमें बडे सुन्दर और स्वाभाविक ढग से मिलती है। शताब्दियो से चले आ रहे दर्शन के इन अधीन और स्वतन्त्र रिश्तो का बहिष्कार ऊँच नीच की खाई पाटनेवाला व्यक्ति डॉ० लोहिया ही कर सका है। अन्योन्याश्रय के सर्वथा की प्रतिष्ठापना केवल उस हृदय मे हो सकती है जो सर्वत्र स्वाभाविक ढग से ममता के दर्शन कर रहा हो।

अभी तक के अधिकाश दर्शनो मे या तो निर्गुणात्मक (व्यापक निराकार) सिद्धान्तो का यशोगान किया जाता रहा है अथवा केवल सगुणात्मक (साकार अथवा ठोस) विचारो का। आदर्श और यथार्थ मे तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास नही किया गया। दर्शन का यह दोष भारतीय मस्तिष्क मे और भी अधिक रहा। वर्तमान भारत तो इसका शिकार ही प्रतीत होता है। यही कारण है कि यहाँ जीभ चर्चा चलाया करती है और हाथ वृहदाकार यन्त्रो पर आधारित उद्योगों का निर्माण करते हैं जीभ अहिंसा का गुणगान करती है और हाथ हिंसा किया करते है जीभ विकेन्द्रीकरण की प्रशसा करती है और हाथ सचिवालयो और उच्चतर प्रशासनिक अगो मे शक्ति केन्द्रित करने मे रत रहते हैं। यथार्थ से सम्पर्क टूट जाने पर उच्च सिद्धान्तो का एक पृथक कल्पना जगत बन जाता है और उनके साकार स्वरूप मस्तिष्क मे न होने पर हम उसी कल्पना जगत मे विचरण किया करते हैं। सिद्धान्त व साधारणीकृत व्यापक स्वरूप और ठोस साधक स्वरूप का परस्पर सम्बन्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण है। साकार चित्र के बिना व्यापक सिद्धान्त केवल प्रवचनो फलाते हैं। इसी प्रकार व्यापक (निराकार) सिद्धान्त से पृथक हो जाने पर उनके साकार रूप केवल जडता लाते हैं। केवल साकार चित्रो से भी काम नही चलता क्योंकि भूमिका मे तो निराकार सिद्धान्त ही रहता है किन्तु वे आवश्यक है। व्यापक सिद्धान्त तो सदा एक ही रहता है किन्तु उसके सीमित साकार रूप युग और परिस्थिति के अनुकूल परिवर्तित होते रहते हैं।

डा० लोहिया ही एक ऐसे दार्शनिक थे जिन्होने स्पष्ट किया कि निराकार और साकार का परस्पर सम्बन्ध कभी टूटना नही चाहिए। भारत की समग्र राजनीति के अन्तिम पाँच व्यापक लक्ष्यो-समता अहिंसा विकेन्द्रीकरण लोकतन्त्र और समाजवाद का साकार (ठोस) रूप प्रदान करने का श्रेय डा० लोहिया को भी है। आय का निश्चित अनुपात १ १० रख कर उन्होने समता को साकार रूप दिया। इसी प्रकार साक्षात्कार का सिद्धान्त देकर अहिंसा का छोटे यन्त्र और चौखम्भा योजना प्रस्तुत कर विकेन्द्रीकरण को ठोस रूप दिया

है। चौखम्भा राज्य, सविनय अवज्ञा, वाणी स्वतन्त्रता और कम नियन्त्रण के सिद्धान्त प्रतिपादित कर उन्होंने जन इच्छा को महत्व दिया है और लोकतन्त्र के व्यापक आदर्श को साकार रूप प्रदान किया है। वर्ण और वर्ग की व्यापक एवं यथार्थवादी व्याख्या द्वारा उन्होंने वर्णहीन और वर्गहीन समाजवादी व्यवस्था का साकार रूप प्रस्तुत किया है।

डॉ० लोहिया का दर्शन सिद्धान्त और व्यवहार की एकता पर सर्वाधिक बल देता है। उनका दर्शन उनके आचरण की अभिव्यक्ति है। अतः वे स्वयं में एक इतिहास थे और स्वयं में एक संस्था। उनका जीवन विचार प्रतिभा और कर्मठता का अद्भुत सम्मिश्रण था। उनकी राजनीति पवित्र और सिद्धान्तनिष्ठ थी। उस दर्शन का मूल्यांकन कौन कर सकता है जो एक ऐसे कर्मयोगी से निःसृत हुआ हो जिसने अपने ही दल को किसी भूल पर शासन से हटने के लिए विवश कर दिया हो। यदि सन १९५४ ई० में डा० लोहिया के कहने पर केरल के समाजवादी मन्त्रि मंडल ने त्याग पत्र दे दिया होता तो आज इस देश में समाजवादी आन्दोलन तो आदर्श बनता ही साथ ही विश्व में एक नवीन आदर्श का निर्माण हुआ होता।

डॉ० लोहिया की चिन्तन धारा देश-काल की परिधि में कभी भी नहीं बँधी। जिस कार्य को उन्होंने एक राष्ट्र में करना चाहा था वही कार्य वे सम्पूर्ण विश्व में करना चाहते थे। एक स्थान विशेष की राजनीति को वे सदैव सम्पूर्ण विश्व की राजनीति से जोड़ते थे। भारत की जाति व्यवस्था के यदि वे विरोधी थे तो वे अन्तर्राष्ट्रीय जाति प्रथा को भी विनष्ट करना चाहते थे। जमींदारी को यदि वे भारत से समाप्त करना चाहते थे तो वे विश्व से भी जमींदारी प्रथा को समाप्त करना चाहते थे। उनके विचार में यह एक अन्तर्राष्ट्रीय जमींदारी ही है जिसके अनुसार साइबेरिया या आस्ट्रेलिया या कैनडा के बहुत बड़े हिस्से में एक वर्गमील पर प्रायः एक, कैलिफोर्निया में १ वर्गमील पर ७ या ८ व्यक्ति और भारत में लगभग ३५० व्यक्ति रहते हैं। इसके लिए राष्ट्रों के बीच भूमि के पुनर्वितरण की उन्होंने चर्चा की। भले ही उनका यह विचार आज की परिस्थितियों में एक कल्पना मात्र हो किन्तु मानव को क्या ऐसे महान् आदर्श के लिए आशान्वित न होना चाहिए? उन्होंने यदि एक ओर राष्ट्र के अन्दर होने वाले वर्ग-संघर्ष को परखा था तो दूसरी ओर विश्व के रंग मंच पर हो रहे राष्ट्र संघर्ष को भी समझा था और इसलिए वे वर्ग-संघर्ष की समाप्ति के साथ राष्ट्र-संघर्ष को भी दफनाना चाहते थे।

डा० लोहिया का दर्शन विश्व शांति और वसुधैव कुटुम्बकम् का सच्चा प्रतीक है। नि शस्त्रीकरण, विश्व विकास समिति, अन्तर्राष्ट्रीयता वाद, संयुक्त राष्ट्र संघ के पुनर्गठन और विश्व-सरकार की उनकी योजनाएं उन्हें विश्व नागरिक और उनके दर्शन को विश्व दर्शन सिद्ध करती हैं। डॉ० लोहिया के मत में साम्यवाद और पूंजीवाद दोनों में राजनैतिक और आर्थिक केन्द्रीकरण है और दोनों में जनसंस्कृति स्थूल और रूढ़िग्रस्त होती जाती है। पूंजीवादी व्यवस्था संस्कृति की और साम्यवादी व्यवस्था रोटी की झूठी प्रतीक है। दुनियाँ के वास्तविक प्रश्न हल करने की शक्ति किसी में नहीं है। सारे मानवों को पेट भर अन्न, 'मन की आजादी की प्यास और युद्धचन्दा' की तीन प्रमुख समस्याओं का हल न रूसी गुट के पास है और न अमरीकी। अत पूंजीवाद और साम्यवाद दोनों एक दूसरे के विरोधी होते भी दोनों एकांगी और हेय हैं। आधुनिक प्रजातन्त्रों और साम्यवाद की इस अपर्याप्तता के कारण ही उन्होंने एक तृतीय सभ्यता की योजना प्रस्तुत की।

जिस विश्व व्यवस्था की रूप रेखा उन्होंने प्रस्तुत की है वह विश्व के लिए एक अपूर्व देन है। साम्यवाद ने निश्चय ही शोषण के अन्त द्वारा राष्ट्रों की समानता और मानव व्यक्तित्व के पूर्ण विकास पर आधारित विश्व व्यवस्था की बात की है। परन्तु ये साधारण आदर्श वैसे ही भ्रमात्मक और निरर्थक हैं जैसे इससे पूर्व पूंजीवाद के थे जिसने दोषरहित स्पर्द्धा से चलने वाली विश्व व्यवस्था की बात की थी। डा० लोहिया के अनुसार राज्यों की जनता अपने अपने राज्य में राज्य नेताओं के विरुद्ध और विश्व सरकार के पक्ष में उठ खड़ी होगी। वयस्क मताधिकार के द्वारा समानता के आधार पर विश्व-संसद का निर्माण होगा। व्यक्ति की समझ और राष्ट्रों का शारीरिक तथा सांस्कृतिक मिलन इसमें योग देगा। साक्षात्कार के सिद्धान्त पर यह विश्व-व्यवस्था निर्मित होगी।

नवीन सभ्यता सम्पूर्ण विश्व में लगभग समान उत्पादन द्वारा मानव जाति में समीपता लाएगी। यह वर्ग और वर्ण तथा क्षेत्रीय परिवर्तनों का अन्त करने का प्रयत्न करेगी। इसकी तकनीकी और प्रशासन इस आवश्यकता के अनुकूल होगा और विकेन्द्रित समुदायों की आपसी महत्व के आधार पर तथा मानवता की एक एकता द्वारा लोग अपना शासन स्वयं चला सकेंगे। श्रम शोषण पर आधारित समस्त उत्पादन के साधनों का समाजीकरण कर दिया जाएगा। राष्ट्र के अन्दर आय नीति को दृढ़ता से पालन किया जाएगा जिससे राष्ट्रों में समीपता का क्रम फैलेगा। मनुष्य समूह में और व्यक्तिगत रूप से

अन्याय के विरुद्ध सविनय अवज्ञा कर सकेगा। व्यक्तिगत स्तर पर मनुष्य कथाओं व इतिहास से स्थायित्व का प्रवाह स मिश्रण जानने का प्रयत्न करेगा। व्यक्ति सन्तुलन के साथ संघर्ष के द्वारा अपने व्यक्तित्व का विकास करने का प्रयत्न करते हुए शान्तिमय क्रियाशीलता की अपनी नवीन सभ्यता में भाग लेगा। डा० लोहिया द्वारा खींचा गया विश्व-सभ्यता का यह चित्र कितना सुखद और स्वर्गिक है। स्वप्नद्रष्टा डा० लोहिया का यह एक और स्वप्न है, किन्तु स्वप्न की महत्ता उन्होंने स्वीकारी है, हमें भी स्वीकार करनी पड़ेगी। हमारा दैनिक अनुभव बतलाता है कि हर स्वप्न झूठा नहीं होता। क्या ही अच्छा हो कि हम ऐसे स्वर्गिक स्वप्न को साकार रूप देने के लिए प्रयत्नशील हों।

डॉ० लोहिया राष्ट्रवादी थे लेकिन विश्व सरकार का सपना देखते थे, वे आधुनिकतम आधुनिक थे लेकिन आधुनिक सभ्यता को बदलने का प्रयत्न करते रहते थे, व विद्रोही तथा क्रान्तिकारी थे लेकिन शान्ति व अहिंसा के अनूठे उपासक थे। व गांधी के सत्याग्रह और अहिंसा के अखण्ड समर्थक थे। लेकिन गांधीवाद को व अधूरा और अपर्याप्त दर्शन मानते थे। वे समाजवादी थे, लेकिन मार्क्स को एकांगी मानते थे। डा० लोहिया ने मार्क्सवाद और गांधीवाद को मूल रूप में समझा और दोनों को एकांगी पाया क्योंकि इतिहास की गति ने दोनों को छोड़ दिया है, दोनों का महत्व मात्र युगीन है। मार्क्स पदार्थ में विश्वास करता है और गांधी आत्मा में लेकिन डा० लोहिया पदार्थ और आत्मा को अन्योन्याश्रित मानते हैं। मार्क्स साधारण लक्ष्य को आर्थिक लक्ष्य का परिणाम मानता है तो गांधी आर्थिक लक्ष्य को साधारण लक्ष्य का परिणाम। डॉ० लोहिया आर्थिक लक्ष्य और साधारण लक्ष्य को अन्योन्याश्रित मानते हैं। मार्क्स धर्म को अफीम की गोली बताकर उसका तिरस्कार करता है, जबकि गांधी जी राजनीति में धर्म का प्रवेश दिखाना चाहते थे। डॉ० लोहिया धर्म की अग्नि परीक्षा करते हैं और तब तपे हुए शुद्ध धर्म का राजनीति से जोड़ते हैं। मार्क्स वर्ग संघर्ष में पूर्ण आस्था रखता है जबकि गांधी जी का वर्ग संघर्ष के स्थान में सत्याग्रह पर विश्वास है। लोहिया जी सत्याग्रह और वर्ग संघर्ष के द्वन्द्व को समाप्त करके सत्याग्रह को ही वर्ग-संघर्ष में परिणत करते हैं। मार्क्स अति केन्द्रीकरण का प्रतीक है तो गांधी अत्यधिक विकेन्द्रीकरण के। लोहिया की चौखम्भा-योजना विकेन्द्रित व्यवस्था का एक मध्यम मार्ग है। मार्क्स वृहदाकार यन्त्रों पर आधारित व्यवस्था का द्योतक है तो गांधी प्राचीनकाल के हाथ वाले सुस्त उपकरणों के। लोहिया जी तेज मिजला और

पेट्रोल आदि से परिचालित छोटे और सुलभ यन्त्रों के द्योतक हैं। मार्क्स समाज को साध्य और व्यक्ति को साधन मानता था, जबकि गांधी जी व्यक्ति को साध्य और राज्य को साधन मानते थे। डा० लोहिया व्यक्ति को साध्य और साधन दोनों मानते थे। वे समाज (राज्य) और व्यक्ति में कोई द्वन्द्व नहीं देखते थे।

मार्क्स पश्चिम के और गांधी पूर्व के प्रतीक हैं जबकि डा० लोहिया पश्चिम और पूर्व दोनों के प्रतीक हैं। वे पश्चिम-पूर्व की खाई पाटना चाहते थे। मानवता के दृष्टिकोण से वे पूर्व पश्चिम काले गोरे अमीर गरीब छोटे बड़े राष्ट्रों और नर नारी के बीच की दूरी मिटाना चाहते थे। जाति-समाप्ति लोकतन्त्र के विकास और शस्त्रास्त्र-समाप्ति के लिए भी उन्होंने अद्वितीय प्रयास किए डा० लोहिया ने एक साथ सात क्रान्तियों का आह्वान किया है। इस प्रकार कर्म के क्षेत्र में अखण्ड प्रयोग और वैचारिक क्षेत्र में निरन्तर संशोधन द्वारा नव निर्माण के लिए सतत प्रयत्नशील था डा० लोहिया का एक रूप है। जीवन का कोई भी पहलू शायद बचा हो जिसे डा० लोहिया ने अपनी मौलिक प्रतिभा से स्पर्श न किया हो। मानव विकास के प्रत्येक क्षेत्र में उनकी विचारधारा सबसे भिन्न और मौलिक रही है।

विश्व के समाजवादी विचारकों में डा० लोहिया का नाम एक नवीन समाजवादी विश्व सभ्यता के सृष्टा एकांगी सभ्यताओं के पूर्तिकर्ता गांधीवाद मार्क्सवाद के संशोधक और सर्वाधिक मौलिक विचारक के रूप में स्मरणीय रहेगा। उन क्रान्तिकारियों में उनका प्रथम स्थान होगा जिन्होंने विश्व की हर सम्भव विषमता को ढूंढा हो और उसे जड़ मूल से विनष्ट करने के लिए सतत संघर्ष किया हो। वे एक ऐसे प्रतिभा सम्पन्न कर्मठ और आदर्श समाजवादी विचारक के रूप में जाने जाएंगे जिन्होंने पश्चिम-पूर्व की खाइयों को पाटा हो कल्पित द्वन्द्वों को दूर किया हो व्यापक और साकार सिद्धान्तों की विवेचना की हो और समाजवाद को एक ठोस रूप प्रदान किया हो।

कर्म के क्षेत्र में अखण्ड प्रयोग और वैचारिक क्षेत्र में निरन्तर संशोधन द्वारा नव निर्माण के लिए सतत प्रयत्नशील व्यक्तित्व और इतिहास के मौलिक व्याख्याकार के रूप में डा० लोहिया कभी भी भुलाए न जा सकेंगे। वे वड्सवर्थ के द्वारा वर्णित स्काइलार्क (दार्शनिक) के रूप में प्रख्यात होंगे जो आकाश में उड़ते भी अपनी दृष्टि यथार्थ की ओर रखता हो। वे राष्ट्रवादी होते हुए भी अन्तर्राष्ट्रीयता के पुजारी थे विद्रोही तथा क्रान्तिकारी होते हुए भी शांति के

अहिंसा व उपासक थे और आधुनिक होते हुए भी आधुनिक सभ्यता का पुन निर्माण चाहते थ। पवित्र और निष्पक्ष राजनीति के द्योतक गरीबो क मसीहा डा० लोहिया को मानवजाति एक सतुलन और सम्मिलन के समाजवादी दर्शन के स्रष्टा और मानवतावादी चिन्तक क रूप मे अपने हृदय मे प्रतिष्ठित करेगी।

डा० लोहिया के विचारो को हम पर्याप्त रूप मे अवतरित होते देख रहे हैं। भले ही इस अवतरण की पृष्ठ भूमि म गाधीवाद सविधान और सामाजिक चेतना की शक्ति हो, किन्तु इस तथ्य स इकार नही किया जा सकता कि डा० लोहिया क लडाकू समाजवादी आन्दोलन न जन मानस पर गहरा प्रभाव डाला है। शन शन जाति प्रथा समाप्त हो रही है। अस्पृश्यता की कलकमयी भावना तो समाप्तप्राय हो गई है। जिस अधिकार चेतना और आत्म-स्वाभिमान की भावना को डॉ० लोहिया आदिवासी नारी, नीची जातियो और अस्पृश्यो म भरना चाहते थे वह इन वर्गों के कृत्यो और आन्दोलनो मे स्पष्टत द्रष्टव्य है। खेल स लेकर राजनैतिक स्तर तक धार्मिक कट्टरता और रग भेद नीति का होम होता जा रहा है। शरणार्थियो का आवागमन और बँगला देश का अभ्युदय तो उनकी दूर दृष्टि का स्पष्ट प्रमाण है। सविद सरकारो का अभ्युदय और पतन भी डा० लोहिया की यादगार है।

लोहिया नीतियो की विरोधी सत्ताधारी कांग्रेस भी अब उनकी नीतियो की ओर बढ रही है यद्यपि आशिक ढग से। राष्ट्रीयकरण क क्रम म तीव्रता, शहरी सम्पत्ति की सामाकन योजना मूल्य स्थिर करन के कुछ प्रयास, विदेशी सहायता से बचन और आत्म निर्भरता के प्रयास राजाओ की थली और विशेषाधिकारो की समाप्ति इस सत्य क स्पष्ट प्रमाण है। लोहिया-नीति के अनुसार अब भारत की तटस्थ नीति न कभी रूस और कभी अमरीका की सेवा करना भी त्याग दिया है। सन् १९७१ ई० का भारत पाक सघर्ष उनकी नीति क ही अनुसार था। बँगला देश की सहायता कर भारत न उनके सपन को साकार किया है, यद्यपि तत्कालीन शासन की मनोवृत्ति देख उन्होन भारतीय शासन स ऐसी आशा नही की थी। इस कार्य म भारतीय जनता क सहयोग का उन्होन सन् १९६० ई० म हो भविष्यवाणी की थी। आशा है भविष्य म भारत समता और स्वाभिमान क आधार पर राष्ट्रो स ठोस मत्री कर इनकी विदेश-नीति को वास्तविकता प्रदान करगा।

कुछ राज्यो न उनकी नीति क अनुसार अंग्रेजी को अनिवार्य विषय के रूप म समाप्त करने और हिन्दी भाषा म काम-काज करन का निर्णय लिया है।

...ान पर अंग्रेजी भाषा के नाम पटों का हटते और हिन्दी भाषा के ...का स्थापित होते देख डा० लोहिया की याद आना स्वाभाविक हो ... राज्यों में अपनी मातृ भाषा की प्रतिष्ठा के प्रति जागरण लोहिया की ...दगार है। लोहिया नीति के अनुसार मध्यप्रदेश में १ जुलाई सन ...० से सम्पूर्ण लगान-समाप्ति की घोषणा २४ जुलाई सन १९६८ ई० ...अध्यादेश द्वारा की गई। उत्तर प्रदेश में संविद शासन ने सवा छ ...ड़ की जोतों पर से भू राजस्व समाप्त किया। यहाँ वृत्ति-कर समाप्ति (लखनऊ २१ दिसम्बर १९७० ई०) विधान सभा ने पारित किया। इस ... प्रयास अधिकांश राज्यों में किए जा चुके हैं और भविष्य में भी ... है। सत्ताधारी दलों की उलट फेर के साथ डा० लोहिया की इन ...का कार्यान्वयन भी उलटता पलटता रहता है। ...नकी नीतियाँ संघर्षों ... करती हुई निरन्तर प्रगति के पथ पर हैं।

...० लोहिया से विचार और व्यवहार की एक परम्परा समाजवादी ...न को मिली है। किन्तु कोई परम्परा नित नूतन परिवर्तन और प्रयोग ...त और जाग्रत रहती है। नदी की शक्ति वह जल नहीं है जो पहले बह ... बल्कि वह जल है जो आज बह रहा है और उसके पीछे भविष्य में ...ाला है। इस दृष्टि से संयुक्त समाजवादी दल के समाजवादी नेता डा० ...ा के विचारों का अनुगमन कर रहे हैं। वे उनकी नीतियों को कार्य रूप ... लिए कृतसंकल्प हैं—स्थान स्थान पर डा० लोहिया के द्वारा प्रारंभ ...ए घेरा डालो और भूमिहीनों को भूमि दो' आंदोलन अभी सन ...-७१ ई० में भी चलाए गए। सन् १९६९ ई० में गांधी जी के जन्म ... अक्टूबर से लोहिया के निधन दिवस १२ अक्टूबर तक ससोपा ने चम्पा...गर मजुरवा तथा परती जमीन का भूमिहीनों के बीच बाँटने का सशक्त ...ल आन्दोलन चलाकर जन मानस मे एक नवीन आशा का संचार ... है। बिहार में श्री कर्पूरी ठाकुर के नेतृत्व में शासन ने लोहिया की ... भूमि भू-राजस्व सम्बन्धी-नीतियों को कार्यान्वित करने का प्रयास ...है।

...डा० लोहिया के प्रमुख अनुयायियों मे सर्वश्री मधु लिमये, राजनारायण ...कर्पूरी ठाकुर केशव गोरे जगदीश चन्द्र जोशी लाडली मोहन निगम ...अध्यात्म त्रिपाठी हैं। इनके अतिरिक्त गोपाल नारायण सक्सेना, बालेश्वर ..., बाबू शंकर सिंह महादेव आर० एस० मानकलाथ, विजय राज विपिन

पाल दास, कमलनाथ झा, सी० जी० के० रेड्डी, ऐन्टोनी पिल्ले वी० पी० सिंहा, इन्दुमति केलकर आसार शरद, भूपेन्द्रनारायण मंडल हेक्टर अभव पटवर्धन, रविराय, हीरालाल जैन, विनायक कुलकर्णी, स्वामी भगवान कुमारी अलमेलु अम्मल, रामचन्द्र शुक्ल, ज्योतिश जोरदार रंगनाथ, रिशागर्केशिंग दल श्रृंगार दुबे, राजेन्द्र सच्चर, वाइ० सूर्यनारायणराव, गोपाल गौड़, सुरेन्द्र सक्सेना, एल० नारायण उपेन्द्रनाथ वर्मा, जी० मुरहरि बृजमोहन तूफान और पी० डी० मेला बदरीविशाल पित्ती आदि भी ऐसे अनुयायी हैं जो उनके विचारों और नीतियों के प्रति आस्था रखते हैं तथा भारतीय समाज में उन्हें प्रतिष्ठित करने के लिए निरन्तर संघर्षरत है।

९ अगस्त सन १९७१ ई० को संयुक्त समाजवादी दल और प्रजा समाजवादी दल का विलयन एक समाजवादी दल के रूप में हुआ। इस विलयन से लोहिया के लड़ाकू समाजवाद में आस्था रखने वाले कुछ विचारकों और प्रचारकों को निराशा हुई है। उनके मत में यह विलयन की नीति उन समाजवादी नेताओं द्वारा चलाई गई है जो डा० लोहिया द्वारा संचालित निरंतर संघर्ष की नीति से ऊब चुके हैं और अब कुछ आराम करना चाहते हैं। वे संघर्ष के स्थान पर अब प्रस्ताव द्वारा क्रान्ति लाने की दिशा में बढ़ना चाहते हैं संसद के बाहर की राजनीति को तीव्र करने के स्थान में संसदीय राजनीति को ही दृष्टि में रख कर सम्पूर्ण आन्दोलन को नया परिवेश देना चाहते है। संसद और राज्य सभा के अपने सदस्यों की गणना के चक्कर में वर्तमान समाजवादी दल निश्चय ही क्रान्ति के मार्ग से हट गया है और प्रकारान्तर में वह यथास्थितिवाद का समर्थक-सा लगता है।

मेरी दृष्टि में समाजवादी आन्दोलन यदि एकता के सूत्र में बंध कर परिस्थितियों के अनुकूल डॉ० लोहिया के समाजवादी विचारों को कार्य रूप देने के लिए निस्वार्थ भाव से सतत संघर्ष करे तो उनके द्वारा बढ़ाई गई क्रान्ति की धारा को तीव्रतर बनाया जा सकता है किन्तु एकता केवल एकता के मन्त्र जाप से नहीं आती है। यह तो काम के बीच उपजती है। यदि समाजवादी आन्दोलन थोड़े से अधिकारयुक्त व्यक्तियों के हितों और स्वार्थों की रक्षा में सहायक बने और दलित व्यक्तियों के प्रति मात्र मौखिक सहानुभूति व्यक्त कर अपने स्वरूप और उद्देश्य के सम्बन्ध में सन्देह उत्पन्न करे तो वह समाजवादी आन्दोलन नहीं। उसे अपने को अनिवार्यतः शोषित और पीड़ित लोगों के साथ जोड़ना चाहिए। उसे ठोस सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक नीतियों

परिशिष्ट

सदर्भ-ग्रन्थ

लोहिया द्वारा रचित ग्र न्थ—हि दी

१—अन्न-समस्या	प्रथम मस्करण १९६३	नवहि द प्रकाशन हैदराबाद
२—आजाद हि दुस्तान मे नए रुझान	प्रथम सस्करण १९६८	नवहि द प्रकाशन, हैदराबाद
३—इतिहास चक्र (अनुवादक आकार शरद)	द्वितीय सस्करण, १९६८	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
४—उत्तर प्रदश और विहार के एक दौरे के कुछ अनुभव	प्रथम सस्करण १९६२	नवहि द प्रकाशन हैदराबाद
५—कांचन मुक्ति	प्रथम सस्करण, १९५६	नवहि द प्रकाशन, हैदराबाद
६—क्रांति के लिए सगठन (भाग १)	प्रथम सस्करण १९६३	नवहिन्द प्रकाशन हैदराबाद
७—कृष्ण	प्रथम सस्करण १९६०	राममनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास प्रकाशन हैदराबाद १२
८—खर्च पर सीमा (प्रस्ताव और बहस)		विजय ठाकुरिया कलकत्ता ७
९—गोआ वर्णमाला विषमता एकता	१९६०	समाजवादी प्रकाशन हैदराबाद
१०—जर्मन सोशलिस्ट पार्टी	प्रथम सस्करण १९६२	नवहिन्द प्रकाशन हैदराबाद

११–जाति प्रथा	प्रथम संस्करण	१९६४	नवहिन्द प्रकाशन हैदराबाद
१२–देश विदेश नीति कुछ पहलू		१९७०	राममनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास प्रकाशन हैदराबाद-१२
१३–देश गरमाओ		१९७०	राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास प्रकाशन हैदराबाद १२
१४–धर्म पर एक दृष्टि	प्रथम संस्करण	१९६६	नवहिन्द प्रकाशन हैदराबाद
१५–नया समाज नया मन		१९५९	नवहिन्द प्रकाशन हैदराबाद
१६–नरम और गरम पंथ		१९६९	राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास प्रकाशन हैदराबाद-१२
१७–निजी और सार्वजनिक क्षेत्र	प्रथम संस्करण	१९६६	नवहिन्द प्रकाशन हैदराबाद
१८–निराशा के कर्तव्य	प्रथम संस्करण	१९६६	नवहिन्द प्रकाशन हैदराबाद
१९–पाकिस्तान में पलटनी शासन	प्रथम संस्करण	१९६३	नवहिन्द प्रकाशन हैदराबाद
२०–भारत चीन और उत्तरी सीमाएँ	प्रथम संस्करण	१९६३	नवहिन्द प्रकाशन हैदराबाद
२१–भारत में समाजवाद	प्रथम संस्करण	१९६८	नवहिन्द प्रकाशन हैदराबाद
२२–भाषा	प्रथम संस्करण	१९६५	नवहिन्द प्रकाशन हैदराबाद
२३–मर्यादित उन्मुक्त और असीमित व्यक्तित्व और रामायण मेला	प्रथम संस्करण	१९६२	नवहिन्द प्रकाशन हैदराबाद

२४–राजस्थान और गुजरात के दौरे के कुछ अनुभव	प्रथम सस्करण	१९६२	नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद
२५–राम कृष्ण और शिव	द्वितीय सस्करण	१९६६	राममनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास प्रकाशन हैदराबाद १२
२६–वशिष्ठ और वाल्मीकि		१९५८	समाजवादी प्रकाशन हैदराबाद
२७–सगुण और निर्गुण		१९६९	राममनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास प्रकाशन, हैदराबाद १२
२८–सच कर्म प्रतिकार और चरित्र निर्माण आह्वान			समाजवादी प्रकाशन हैदराबाद
२९–सम दृष्टि		१९७०	राममनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास प्रकाशन, हैदराबाद १२
३०–सम लक्ष्य सम बोध		१९६९	राममनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास प्रकाशन हैदराबाद १२
३१–समाजवाद की अर्थ नीति	प्रथम सस्करण	१९६८	नवहिन्द प्रकाशन हैदराबाद
३२–समाजवाद की राज नीति	प्रथम सस्करण	१९६८	नवहिन्द प्रकाशन हैदराबाद
३३–समाजवाद के आर्थिक आधार		१९५२	नवभारत प्रकाशन गृह लहरिया सराय
३४–समाजवादी आन्दोलन का इतिहास	प्रथम सस्करण	१९६९	राममनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास प्रकाशन, हैदराबाद १२
३५–समाजवादी एकता			समाजवादी प्रकाशन हैदराबाद

३६–समाजवादी चिंतन		१९५६	नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद
३७–सरकार से सहयोग और समाजवादी एकता	प्रथम सस्करण	१९६२	नवहिन्द प्रकाशन हैदराबाद
३८–सरकारी मठी और कुजात गांधीवादी		१९६९	राममनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास प्रकाशन हैदराबाद १२
३९–सात क्रांतियाँ	प्रथम सस्करण	१९६६	नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद
४०–सिविल नाफरमानी की व्यापकता			समाजवादी प्रकाशन हैदराबाद
४१–सिविल नाफरमानी सिद्धान्त और अमल		१९६०	समाजवादी प्रकाशन ६ ३ १९ हिमायत नगर हैदराबाद
४२–सुधरो अथवा टटो		१९७१	राममनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास प्रकाशन हैदराबाद १२
४३–हिन्दू और मुसलमान		१९६९	राममनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास प्रकाशन हैदराबाद १२
४४–हिन्दू पाक युद्ध और एका		१९७०	राममनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास प्रकाशन हैदराबाद-१२

लोहिया द्वारा रचित ग्रन्थ–अंग्रेजी

1 Guilty Men of India's Partition	1970	Ram Manohar Lohia Samata Nyas Vidyalaya Hyderabad 12

2. Interval during First Edition 1965 Navahind Prakashan
Politics Hyderabad

3 Marx Gandhi and First Edition 1963 Navahind Prakashan
Socialism Hyderabad

4 Rs 25 000/– A Day 1963 Navahind Prakashan
Hyderabad

5 Will to power and 1956 Navahind Prakashan
other writings Hyderabad

लोहिया सम्बन्धी ग्रन्थ

१–ओंकार शरद लोहिया तृतीय संस्करण १९६७ राजरजना प्रकाशन
इलाहाबाद ३

२—ओंकार शरद प्रथम संस्करण १९६६ लोकभारती प्रकाशन
(सम्पादक) इलाहाबाद
लोहिया के विचार,

३—इन्दुमति केलकर १९६३ नवहिन्द प्रकाशन
लोहिया सिद्धान्त हैदराबाद
और कर्म

४—जगदीश जोशी प्रथम संस्करण स० सो० पार्टी प्र० वि०,
समाजवाद नए भोपाल
प्रयोग—नए चरण

५—रजनीकान्त वर्मा १९७० रजना प्रकाशन
गैर-कांग्रेसवाद इलाहाबाद
और लोहियावाद

६—रजनीकान्त वर्मा १९७० रजना प्रकाशन,
लोहिया और जाति इलाहाबाद
प्रथा

वर्मा प्रथम सस्करण १६६६ लोहिया वादी साहित्य
र औरत विमाग, श्री विष्णु आट प्रेस,
इलाहाबाद
ाधी, १६५६ ३-६-१६ शो० पा के
सिन्हा कार्या० हैदराबाद
विनय

चिनपुरिया स० सो० पा०, म० प्र०,
लगान की भोपाल

Vofford J R 1961 Snehalata Rama
nd America Reddy, 8 Valmik
Road, Madras-27

अन्य ग्रन्थ-सस्कृत

ाय पत्रकार (टीकाकार) हिन्दी पुस्तकालय, मथुरा

(भाष्यकार) सम्वत् २०१० गीता प्रेस, गोरखपुर
निषद्
(भाष्यकार) सम्वत् २०२४ गीता प्रेस, गोरखपुर
द्गीता
र तिलक नवम स० १६५०
द्गीता रहस्य श्री जयन्त श्रीधर तिलक पर (गायकवाड वाडा)
पुणे-३
(भाष्यकार) सस्करण २०१० गीता प्रेस गोरखपुर

ाष्यकार सन् १६३७ निर्णय सागर प्रेस
ानन्दीमायगम्

अन्य ग्रन्थ-हिन्दी

अघराम तृतीय सस्करण १६४७, विनोद पुस्तकालय मन्दिर,
का स्मरेगा आगरा

२—आचाय नरेन्द्रदव राष्ट्रीयता और समाजवाद — प्रथम सस्करण २००६ — ज्ञान मदिर लि०, बनारस

३—आचाय नरेन्द्रदेव समाजवाद—लक्ष्य तथा साधन — सस्करण २००२ — ज्ञान मदिर लि०, बनारस

४—आचाय नरेन्द्रदव समाजवाद और राष्ट्रीय क्रान्ति — सन १९४१ — शिवलाल अग्रवाल एण्ड क० लि०, आगरा

५—आनद हिंगोरानी (सम्पादक प्रकाशक) बापू के आशीर्वाद (रोज क विचार) — प्रथम सस्करण १९४८ — गाँधी सीरीज, ७ एडमास्टन रोड, इलाहाबाद

६—कृष्णदास एम०ए० गाधीवाद मार्क्सवाद, — प्रथम सस्करण १९४९ — अमर भारती प्रकाशन, काशी

७—कार्ल मार्क्स फ्रेडरिक एंगेल्स सकलित रचनाएँ (चार भागो म) — भाग–१ स ४ तक — प्रगति प्रकाशन, मास्को

८—किशोरलाल घ० मशरूवाला गाधी विचार दोहन — सातवा सस्करण १९५ — मार्तण्ड उपाध्याय मत्री, सस्ता साहित्य मडल नई दिल्ली

९—किशोरलाल घ० मशरूवाला बुद्ध और महावीर — प्रथम सस्करण १९६४ — नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद

१०—किशोरलाल घ० मशरूवाला गाधी और साम्यवाद — द्वितीय सस्करण १९५४ — नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद

११—गणेश मत्रा (स०) शिक्षा बनाम छात्र — १९६६ — नरेन्द्र वास्ते, केन्द्रीय काया० समाजवादी युवजन सभा, २४ गुरुद्वारा रकाबगज रोड, नई दिल्ली

१२—जय प्रकाश नारायण समाजवाद की ओर	प्रथम सस्करण	१६४८	शिवलाल अग्रवाल एण्ड क० लि०, आगरा
१३—जवाहर लाल नेहरू विश्व इतिहास की झलक	द्वितीय सस्करण	१६५९	सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली
१४—बाबू मक्खनलाल पंजाबी(टाकाकार) सुख सागर	४८वाँ सस्करण	१६६५	तेजकुमार बुक डिपो लखनऊ
१५—डॉ० पट्टाभि सीतारमय्या महात्मा गाधी का समाजवाद		१६५६	राष्ट्र भाषा मन्दिर इलाहाबाद
१६—मो० क०गाधी वर्ण व्यवस्था	प्रथम सस्करण	१६६८	नवजीवन प्रकाशन अहमदाबाद
१७—मो० क०गाधी हरिजन समस्या		१६६८	राष्ट्रीय प्रकाशन मन्दिर लखनऊ
१८—मो० क० गाधी (सम्पादक भारतन कुमारप्पा) अस्पृश्यता		१६५६	नवजीवन प्रकाशन मन्दिर अहमदाबाद
१९—मो० क० गाधी विवाह समस्या		१६६८	राष्ट्रीय प्रकाशन मन्दिर लखनऊ
२०—यू०एस० (सकलन कर्ता और सपादक) मा०टनगाव महात्मा गाँधी का सन्देश		१६६६	सूचना और प्रसारण मन्त्रालय भारत सर० नई दिल्ली
२१—राजेन्द्र प्रसाद (प्रस्तावना लेखक) गाधीवाद समाजवाद	पाँचवा सस्करण	१६५३	हिन्दी प्रकाशन मन्दिर इलाहाबाद
२२—राजेन्द्र प्रसाद (लेखक) गाधी जी की देन	द्वितीय सस्करण	१६५६	मार्तण्ड उपाध्याय मन्त्री सस्ता साहित्य मडल, नई दिल्ली
२३—श्री च०राजगोपालाचार्य, जे० सी० कुमारप्पा राष्ट्र वाणी	द्वितीय सस्करण	१६४८	मार्तण्ड उपाध्याय मन्त्री, सस्ता साहित्य मडल नई दिल्ली

२४–रामनारायण उपाध्याय (सकलन और सम्पादक वर्ता) गाधी-दर्शन (भाग १-२) — तृतीय सस्करण १९७१ — सरला प्रकाशन, नई दिल्ली

२५–राहुल सास्कृत्यायन साम्यवाद ही क्यो ? — चतुर्थ सस्करण १९४८ — किताब महल, इलाहाबाद

२६–व्ला० ई० लेनिन सकलित रचनाएँ तीन खडो मे (खड १ भाग १) — १९६० — विदेशी भाषा प्रकाशन गृह मास्को

२७–व्ला०ई० लेनिन सकलित रचनाएँ तीन खडो मे (खड ३ भाग १) — १९६६ — प्रगति प्रकाशन मास्को

२८–सी० एल० वेपर (अनु वादक राधेलाल वार्ष्णेय) राजदर्शन का स्वाध्ययन — प्रथम सस्करण १९६३ — किताब महल, इलाहाबाद

२९–सम्पूर्णानन्द समाजवाद — चतुर्थ सस्करण स० २००२ — प्रकाशन विभाग काशी विद्यापीठ, वाराणसी

३०–हरिभाऊ उपाध्याय स्वतन्त्रता की ओर — तृतीय स० स० १९७३ — सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

अन्य ग्रन्थ अंग्रेजी

1 A C Pigou Essays in Economics 1952 Macmillan & Co Ltd , London

2 C E M Joad Modern Political Theory, 1953 Oxford University Press, Amen House London E C 4

3 F W Coker Recent Political Thought, First Ed 1657 The World Press Pvt Ltd Calcutta 12

4 Gopinath Dhawan The Political Philosophy of Mahatma Gandhi Third Ed 1957 Navajiwan Publishing House, Ahmedabad

5 G B Shaw Sidney etc Fabian Essays in Socialism, 1920, London

6 G D H Cole Some Relations between Political and Economic Theory 1935 Macmillan & Co Ltd St Martins Street, London

7 G D H Cole Self Government in Industry, 1917 London

8 G D H Cole Guild Socialism Restated 1920, London

9 H J Laski Communist Manifesto Socialist Landmark Third Ed 1954 George Allen & Unwin Ltd, London

10 H J Laski A Grammer of Politics, Fourth Ed 1955 George Allen & Unwin Ltd, London,

11 J C Kumarappa Gandhian Economic Thought First Ed 1962 A B Sarva Seva Sangh Prakashan, Rajghat Varanasi

12 Levine Loius Syndicalism in France Second Ed 1914, New York

13 M Spahr (Editor) Readings in Recent Political Philosophy 9th Ed 1935 Macmillan Co New York,

14 Pease Edward R History of Fabian Society 1925 London

15 P A Kropotkin The Conquest of Bread 1907, New York and London

16 Plato The Republic (Translated in to English By B Jowett) Random House, New York

17 R C Gupta Socialism Democracy and India, 1965 Ram Prasad & Sons, Agra

18 R V Rao Current Economic Problems, 1949, Kitab Mahal, Allahabad

19 T H Green Lectures on the Principles of Political Obligation, 1955 Longmans Grreen & Company, London

20 Dr V P Verma, The Political Philosophy of Mahatma Gandhi and Sarvodaya, 1969, Lakshmi Narain Agrawal Educational Publishers Agra

विश्व-कोश हिन्दी और अंग्रेजी

१—रामप्रसाद त्रिपाठी (प्रधान सम्पादक) हिन्दी विश्व-कोश, खण्ड १० संस्करण २०२५ (नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी)

2 Edvin R A Seligman (Editor in-chief) Encyclopaedia of Social Sciences (Vol 5 6, 13 14) Fifteenth Ed, 1963, The Macmillan Company New York

3 E F Bozman (Editor) Every Man s Encyclopaedia Vol 3 Fourth Ed 1958, J M Dents & Sons Ltd, London

4 W E Preece (Editor) Encyclopaedia Britannica, Vol 20 1963, William Benton, Chicago

पत्र-पत्रिकाएँ हिन्दी और अंग्रेजी

१—दिनमान १५ अक्टूबर १९६७ — टाइम्स आफ इण्डिया प्रकाशन, दिल्ली ६

२—दिनमान २२ अक्टूबर १९६७ — टाइम्स आफ इण्डिया प्रकाशन, दिल्ली ६

३—दिनमान १ दिसम्बर १९६८ — टाइम्स आफ इण्डिया प्रकाशन, दिल्ली ६

४—दिनमान ५ जनवरी १९६९ — टाइम्स आफ इण्डिया प्रकाशन, दिल्ली ६

५—दिनमान १२ अक्टूबर १९६९ — टाइम्स आफ इण्डिया प्रकाशन, दिल्ली ६

६—दिनमान ९ नवम्बर १९६९ — टाइम्स आफ इण्डिया प्रकाशन, दिल्ली ६

७—दिनमान ४ जनवरी १९७० — टाइम्स आफ इण्डिया प्रकाशन, दिल्ली ६

८—दिनमान ६ जून १९७१ टाइम्स आफ इण्डिया प्रकाशन दिल्ली ६

९—दिनमान १० अक्टूबर १९७१ एवं अन्य अंक टाइम्स आफ इण्डिया प्रकाशन दिल्ली ६

१०—धर्मयुग २४ मार्च १९६८ टाइम्स आफ इण्डिया प्रकाशन दिल्ली ६

११ जन० दिसम्बर १९६७ प्रकाशक गौर मुराहरि, नई दिल्ली

१२ जन० मार्च १९६८ प्रकाशक गौर मुराहरि नई दिल्ली

१ – जन० मई १९६८ प्रकाशक गौर मुराहरि नई दिल्ली

१४—स्मरणिका अखिल भारतीय चतुर्थ अधि० सं०सो० पा० राजाराम मोहनराय बम्बई ४

१५—स्मारिका चौथा राज्य सम्मेलन सं० पार्टी दिसम्बर ८० म० प्र० रीवा

१६—सम्पदा समाजवाद अंक दिसम्बर १९७० अशोक प्रकाशन मन्दिर दिल्ली ७

१७—समाजवादी समाज १९५६ नवहिन्द प्रकाशन हैदराबाद

१८—सोशलिस्ट पार्टी सिद्धान्त और कर्म १९५६ सोशलिस्ट पार्टी केन्द्रीय कार्यालय हैदराबाद

१९—कांग्रेसी राज्य में न्याय १९५८ और मजिस्टरी समाजवादी प्रकाशन, हैदराबाद

20 The Indian Journal of Political Science March 1970 Editor J S Bains Published by the Indian Political Science Association

21 Socialism Forum of Free Enterprise Sohrab House 236 Dr D N Road Bombay 1